निवेदन

आजकल कोई विचारशील व्यक्ति अपने सम्बन्ध की ही बातों से संतुष्ट नहीं रह सकता। नागरिकों के लिए यह जानना आवश्यक हो गया है कि हमारा समाज से क्या सम्बन्ध है; समाज के प्रति हमें क्या-क्या कर्तव्य पालन करने चाहिएँ, और उसमें हमारे क्या अधिकार हैं। युवकों और युवतियों अर्थात् भावी नागरिकों को बचपन में अपने माता पिता द्वारा, और पीछे स्कूलों और कालेजों में अपने अध्यापकों द्वारा नागरिकता की शिक्षा मिलनी चाहिए। उन्हे मिल-जुल कर रहने और दूसरों के साथ विविध क्षेत्रों में काम करने का अभ्यास होना चाहिए। उन्हे अपने देश की शासन-पद्धति जानना भी ज़रूरी है, जिससे वे उसकी भावी उन्नति में यथेष्ट भाग ले सकें, और संसार मे भारतवर्ष को उचित स्थान दिला सकें।

यह वैज्ञानिक युग है। विज्ञान के अध्ययन का इस समय बड़ा महत्त्व है। यद्यपि यह एक महान् और गम्भीर विषय है, इसकी कितनी ही बातों का तो हमारे नित्य-प्रति के जीवन से सम्बन्ध है। इन बातों का भी साधारण ज्ञान नागरिकों को होना ही चाहिए।

हमारा वर्तमान काल भूतकाल की सन्तान है। इसे अच्छी तरह जानने, और संसार की आधुनिक परिस्थिति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस बात का विचार करें कि मनुष्य जाति ने अपने आदिकाल से सभ्यता में क्या-क्या प्रगति की है, उसने सामाजिक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में क्या-क्या अनुभव किया है, संसार के विविध देशों में समय-समय पर कैसे-कैसे आंदोलन हुए, कैसी-कैसी विचार-धाराएँ पैदा हुईं; उनका परिणाम क्या हुआ; विविध संघर्षों को पार करके हम अब कहाँ आ पहुँचे हैं; संसार में युद्ध क्यों होते रहे हैं, उनका स्वरूप कैसा रहा है; अब हमारे सामने कैसी-कैसी समस्याएँ हैं, और उन्हें हल करने के लिए क्या किया जाना चाहिए।

इन सब विषयों पर प्रकाश डालने का एक विनम्र प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है। ये विषय इतने व्यापक हैं कि इनके लिए कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की आवश्यकता है।

लेकिन पाठकों की सुविधा का विचार करके, एक ही पुस्तक में, यथासम्भव संक्षेप में लिखा गया है। आशा है, इससे उनकी इन विषयों मे रुचि बढ़ेगी और वे इस तरह का दूसरा साहित्य देखेंगे, तथा स्वयं भी इन विषयों पर विचार करने लगेंगे। इस पुस्तक के अन्तिम दो खंडों के विषय में हमें विद्वद्वर श्री शंकरदयालु जी श्रीवास्तव एम० ए० सहायक सम्पादक 'भारत' (प्रयाग) का बहुमूल्य सहयोग मिला है। इसके लिए हम आपके बहुत ही कृतज्ञ हैं। विज्ञान सम्बन्धी खंड मे श्री० ओमप्रकाश केला बी० ए० साहित्यरत्न ने हमें बहुत सहायता दी है। इन दोनों सज्जनों की सहायता बिना यह काम समय पर इतना अच्छा होना कठिन था।

इस पुस्तक की रचना में हमारा उद्देश्य यही है कि पाठकों में नागरिकता की भावना उत्तरोत्तर बढ़े, वे अपने नगर और प्रान्त के ही नहीं, भारतवर्ष के सुयोग्य नागरिक बने, और संसार को अधिक सुन्दर और सुखी बनाने और मनुष्य जाति को एक बड़ा परिवार मान कर विश्व-शान्ति बढ़ाने में समुचित भाग लें। इस समय संसार की रचना इस प्रकार की हो गई है, और होती जा रही है कि अगर कोई आदमी केवल अपना ही सुख चाहे तो उसे बहुत सफलता नहीं मिल सकती। हमारे गाँव या नगर में बीमारी

फैलती है, तो उसका प्रभाव हम पर पड़े बिना नहीं रह सकता। इसलिए हमें अपने गाँव और नगर की भी भलाई का ध्यान रखना चाहिए। फिर, अगर देश में अकाल या महँगाई आदि हो तो हमारा गाँव या नगर ही कैसे संपन्न रह सकता है! यही नहीं, अगर दूसरे देशों में महायुद्ध होता है तो भी हम शान्ति का जीवन नहीं बिता सकते। इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हम अभी हाल में कर चुके हैं। इन बातों से हमें शिक्षा लेनी चाहिए। केवल अपने स्वार्थ की बातों में न लगे रहकर हमें अपने गाँव और नगर की, अपने देश की, तथा यथासम्भव संसार के कल्याण की बातें सोचने, और उन्हें अमल में लाने का यत्न करते रहना चाहिए। यही हमारी नागरिकता की कसौटी है।

आशा है, पाठक इस पुस्तक से यथेष्ट लाभ उठायंगे। जो सज्जन इसके सम्बन्ध में कुछ रचनात्मक आलोचनाएँ हमारे पास भेजने की कृपा करेंगे, उनके हम बहुत आभारी होंगे, और अगले संस्करण में उनके विचारों से हम भरसक लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे।

प्रयाग

भगवानदास केला

विषय-सूची

पहला भाग—नागरिकता

दूसरा भाग—भारतीय शासन-पद्धति

तीसरा भाग—शिक्षा

चौथा भाग—वैज्ञानिक प्रगति

पाँचवाँ भाग—सामाजिक प्रवृत्तियाँ

छठा भाग—आन्दोलन तथा संघर्ष

पहला अध्याय

राज्य और नागरिक

सुख की खोज—

हर एक आदमी सुख चाहता है। पुरुष हो या स्त्री, जवान हो या बूढ़ा, सब की यह इच्छा रहती है कि हमारे जीवन में कोई तकलीफ न हो, हमारी कठिनाइयाँ दूर हों, हमें सुख मिले। आदमी के हरेक काम करने का उद्देश्य यही होता है कि उसका जीवन सुखी हो। किसी २ काम से उसे दुख भी मिलता है, पर इस काम को करते समय भी उसने सुख ही पाने की इच्छा की थी। बात यह है कि आदमी का ज्ञान अपूर्ण है। वह भूल या अज्ञान से कुछ ऐसे काम कर बैठता है, जिस से उसे सुख न मिल कर दुख मिलता है, या जिस से पहले तो सुख मिलता हुआ मालूम होता है, पर थोड़ी ही देर के बाद उसे ज्ञात हो जाता है कि उस काम से सुख पाने की आशा करना ठीक न था, वह काम तो दुख ही देने वाला है। निदान, आदमी को अपने कामों से सुख मिले या न मिले, इसमें कोई संदेह नहीं कि हरेक काम करने मे उसका उद्देश्य यही रहता है कि उसे सुख मिले, और अधिक सुख मिले।

कुछ प्रयत्नों के उदाहरण—

मनुष्य जाति का इतिहास इस बात के प्रमाणों से भरा पड़ा है कि आदमी सदैव सुख की खोज मे लगा रहा है। यहाँ मिसाल के तौर पर दो एक मोटी मोटी बातों का उल्लेख किया जाता है। आदमी पहले जंगलों में रहता था। जंगली जानवरों से कमज़ोर होने के कारण वह उनसे बहुत डरता था। रीछ, शेर, चीते आदि बड़े २ शिकारी जानवर तो उसे अपना शिकार बना ही लेते थे। जंगली गाय, भैंस और घोड़ा आदि भी उसे अनेक बार मार डालते थे। इनके डर से आदमी गुफाओं में घुस जाता था या पेड़ों पर चढ़ जाता था। अपनी रक्षा करने की चिन्ता उसे हर दम सताती रहती थी।

आदमी ने अपनी बुद्धि का उपयोग किया, और अपनी रक्षा के लिए तरह तरह के औज़ारों का आविष्कार किया। धीरे २ उसने पशुओं पर विजय पाने मे सफलता प्राप्त की। वह न केवल बड़े २ जानवरों का शिकार करने लग गया, बल्कि उन्हें पाल कर उनसे अपनी सवारी या बोझा ढोने आदि के भी काम लेने लगा।

आदमी को पहले सर्दी, गर्मी, धूप, वर्षा, या ओलों से बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था। उसे पहनने के लिए वृक्षों की छाल या पत्तों के सिवाय कोई चीज़ नहीं मिलती थी। उसे घर बनाना नहीं आता था, वह किसी पेड़ के नीचे, या गुफा आदि में जाकर ही धूप, वर्षा या ओलों से अपनी थोडी-बहुत रक्षा कर पाता था। पीछे उसने सोचते-सोचते अनेक प्रयोग करके कपड़ा तैयार करना सीखा, और मकान बनाना मालूम किया। इस तरह वह सर्दी गर्मी के कष्ट से मुक्त हुआ।

शुरू में आदमी ऐसे कन्द, मूल, फल आदि से अपना निर्वाह करता था, जो अपने आप ही कुदरती तौर से ज़मीन में पैदा होते थे। ये चीज़ें हर समय या हर जगह नहीं मिलतीं, और जहाँ मिलती हैं, वहाँ भी थोड़े दिन खर्च होने के बाद समाप्त हो जाती हैं। इस दशा में आदमी को यह भरोसा नहीं रहता था कि उसे कब तक भोजन मिलता रहेगा। उसे अनेक बार भूखा ही रहना पड़ता था। पीछे आदमी ने धीरे २ फलों वाले पेड़ पौधे लगाने तथा खेती करने आदि की विधि मालूम की और उसने भूख से होने वाले अपने कष्ट को दूर किया।

मानव प्रगति का आधार; सामाजिक जीवन--

इस तरह के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। आदमी अपने कष्ट दूर करने और सुख के साधन बढ़ाने में लगा रहा है। पर वह इस काम में इसी लिये सफल हो सका है कि वह सामाजिक प्राणी है। उसे समाज में, दूसरे आदमियों के साथ मिल कर रहना पसंद है। जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने के लिये, आदमी के वास्ते यह ज़रूरी था कि वह समूह, टोली या मंडली बना कर रहे। भोजन-वस्त्र आदि का सामान तैयार करना भी अकेले दुकेले आदमी के वश की बात नहीं। इसके लिए कई आदमियों के एक-साथ मिलकर काम करने की ज़रूरत होती है। इस तरह आदमी एक दूसरे के विचार जानते हैं, इससे हरेक को अपनी विचार-धारा आगे बढ़ाने मे सहायता मिलती है; एक आदमी किसी विषय में जो आविष्कार करता है, दूसरा उसमें और सुधार करता है। लड़के अपने माता पिता आदि गुरुजनों के अनुभव से, और हरेक पीढ़ी के आदमी अपने पूर्वजों की

मेहनत से लाभ उठाते हैं, और उन्नति के क्रम को आगे बढ़ाते हैं। सारांश यह कि मनुष्य जाति की सारी प्रगति ही आदमी के सामाजिक जीवन पर निर्भर है।

सामाजिक नियम--

जब मनुष्य सामाजिक जीवन बिताता है, तो उसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह कुछ नियमों का पालन करे, जिससे सब के हित और सुविधाओं की व्यवस्था रहे। अगर कोई आदमी अकेला रहता हो तो वह चाहे जिस तरह रह सकता है, दूसरों का उससे कुछ सम्बन्ध नहीं होता। लेकिन समाज में रहते हुए तो हम मनमाना व्यवहार नहीं कर सकते, हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारे किसी काम से दूसरों को हानि या कष्ट न पहुँचे। अगर हम इस तरह के नियमों में रहना नहीं चाहते तो दूसरे भी इस तरह के बन्धन को क्यों स्वीकार करेंगे, और जब हरेक आदमी दूसरों के हित या सुविधाओं का विचार न करके स्वच्छंदता का व्यवहार करेगा तो समाज का कार्य कैसे चलेगा, उसके संगठन का उपयोग ही क्या रहेगा। इस लिए सामाजिक जीवन के साथ नियम-पूर्वक व्यवहार का अनिवार्य सम्बन्ध है।

ऊपर हमने समाज शब्द का प्रयोग किया है, उसको थोड़ा स्पष्ट करने की आवश्यकता है। हम प्राय: आर्य समाज, ब्रह्मसमाज आदि शब्दों से परिचित हैं; हिन्दू समाज या मुसलिम समाज या ईसाई समाज आदि शब्द भी सुनने में आते हैं। इन सब समाजों के अपने २ नियम होते हैं, और सब सदस्यों को अपनी समाज के नियमों का पालन करना होता है।

राज्य और नागरिक—

अब हम मनुष्यों के एक ऐसे संगठन का विचार करते हैं, जिसमे आर्य समाज, ब्रह्म समाज, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैनी या पारसी आदि का भेद भाव नहीं होता, बल्कि इन सब का ही समावेश होता है। मनुष्यों का यह संगठन राज्य है। राज्य उस जन-समूह को कहा जाता है, जो एक निर्धारित भूमि पर रहता हो, जिसका राजनैतिक संगठन हो, अर्थात् जहाँ पर सब आदमियो से नियम पालन कराने के लिए एक सर्वोच्च संस्था हो। इस संस्था को सरकार कहते है। जो आदमी राज्य के नियमों को भंग करते हैं, उन्हे दंड दिया जाता है।

सिद्धान्त की बात तो यह है कि राज्य को अपने क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होना चाहिए, वह किसी अन्य सत्ता के अधीन न हो। इस विचार से देखा जाय तो भारतवर्ष अब स्वतन्त्र हो गया है। अब अंग्रेजों की प्रभुता नही रही इसलिए भारतवर्ष को स्वतन्त्र राज्य कह दिया जाताहै, यहाँ तक कि देशी रियासतों के लिए भी 'राज्य' शब्द काप्रयोग किया जाता है।

राज्य के सब व्यक्ति उस राज्य के 'नागरिक' कहलाते हैं। इस प्रकार भारतवर्ष मे रहने वाले सब आदमी—पुरुष तथा स्त्रियाँ, नौजवान तथा बूढे सब यहाँ के नागरिक हैं। इसमे ऊँच-नीच, जात-पांत, श्रेणी, पेशे या धर्म आदि का भेद-भाव नहीं माना जाता। प्रत्येक भारतवासी, चाहे उसकी जाति, धर्म या पेशा आदि कुछ ही क्यों न हो, भारतीय नागरिक है।

'नागरिक' शब्द का साधारण अर्थ 'नगर-निवासी' है। आम बोलचाल में गाँव वालों को 'नागरिक' नहीं कहा जाता। परन्तु राजनैतिक भाषा में गाँव वालों और नगर वाले आदमियों में भेद न कर सभी को नागरिक कहा जाता है। हरेक आदमी अपने राज्य का नागरिक होता है। राज्य मे, बाहर से आकर बसने वाले आदमियों को भी, कुछ नियमों का पालन करने पर, नागरिक अधिकार मिल जाते हैं। इस दशा मे ये भी वहां के नागरिक माने जाते हैं।

नागरिक अपने राज्य में सभा या सम्मेलन करके विचार-विनिमय कर सकता है, भाषण दे सकता है, लेख लिख सकता है। निर्धारित आयु तथा योग्यता होने पर नागरिक अपने यहाँ की व्यवस्थापक सभाओं के चुनाव मे मत दे सकता है और विविध सरकारी पद प्राप्त कर सकता है। उसे स्वदेश मे अपनी दशा तथा उन्नति के साधन प्राप्त होते हैं, विदेशों मे उसकी जान-माल की रक्षा का उत्तरदायित्व उसके राज्य की सरकार पर होता है। इन अधिकारों के साथ, नागरिकों के अपने राज्य के प्रति कुछ कर्तव्य भी रहते हैं। उसे वहाँ के कानूनों का पालन करना होता है और सरकारी कर (टेक्स) देने होते हैं। आवश्यकता होने पर उसे देश-रक्षा में भी भाग लेना होता है। जब कोई नागरिक अपने राज्य के प्रचलित कानूनों को भंग करता है तो वह अपने कुछ अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है। इस प्रकार नागरिक को अपने राज्य में विविध अधिकार और कर्तव्य होते हैं। कर्तव्यों के विषय में कुछ खुलासा आगे लिखा जायगा।

पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता—

यहाँ एक बात पर खास ध्यान देना है। ऊपर बताया जा चुका है कि सामाजिक जीवन का आधार पारस्परिक सहयोग अर्थात् एक दूसरे की सहायता करना या मिल कर काम करना है। नागरिक जीवन सामाजिक जीवन का ही एक अंग है। इस लिए नागरिकों के लिए भी सहयोग, सहकारिता, सहानुभूति आदि का भाव आवश्यक है। पहले कह आये है कि आपसी मेल-जोल के बिना आदमी अपने भोजन वस्त्रादि की साधारण जरूरतें भी पूरी नहीं कर सकता। फिर, आजकल तो हमारी जरूरते भी बहुत बढ़ गई है, और बढ़ती जा रही हैं, इन्हे पूरा करने के लिए पारस्परिक सहयोग और अधिक आवश्यक हो गया है। हम कई कई तरह के अन्न खाते हैं, तो हमें इन अन्नो को पैदा करने वाले किसानों का सहयोग चाहिए, हम कपड़ा पहनते है, उसे सिलाना चाहते है, और समय समय धुलवाना भी, तो हमें जुलाहे, दर्जी और धोबी का सहयोग चाहिए। इस तरह हम अपने नित्य-प्रति के जीवन से अनेक उदाहरण ले सकते हैं। भौतिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त हमारी मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएँ भी हैं। विविध विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे उन-उन विषयों के जानकारों का सहयोग चाहिए। हमे दूसरे देशों के आदमियों से भी बहुत काम पड़ता है। इस तरह हमें न सिर्फ अपने देश वालों के ही, बल्कि दूसरे देश वालों के भी सहयोग की आवश्यकता है। अगले अध्यायों में इस बात का विचार किया जायगा कि हमें अपने परिवार में, स्कूल में, ग्राम और नगर में और देश तथा विदेश वालों से किस प्रकार सहयोग का भाव रखना चाहिए।

दूसरा अध्याय

पारिवारिक कर्त्तव्य

पिछले अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि नागरिकों के विविध कर्त्तव्य होते हैं। यहाँ हम उन कर्त्तव्यों का कुछ विशेष रूप से विचार करते हैं जो आदमियों को अपने परिवार वालों के प्रति पालन करने चाहिएँ। हमारे सामाजिक जीवन का प्रारम्भ परिवार से ही होता है। आवश्यकता है कि हम यहाँ से ही अपने कर्त्तव्यों को पालन करना सीखें, जिससे हमें कर्त्तव्य-पालन की आदत ही पड़ जाय, हम दूसरों के सुख और सुविधा का यथेष्ट ध्यान रखने लगें, जो नागरिकता का मूल विषय है।

माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य—

माता-पिता ने हमारे लिए कितना कष्ट उठाया है, हमारे पालन-पोषण के वास्ते उन्हे अपना सुख और आराम कहाँ तक छोड़ना पड़ा है, इसका पूरा ज्ञान तो हमे बड़े होने पर ही होगा, जब हम गृहस्थ-जीवन बितायेंगे, तो भी हम इसका बहुत कुछ अनुमान पहले भी कर सकते हैं। कोई नागरिक अपने माता-पिता से, और खास कर माता से उऋण नहीं हो सकता। हमें चाहिए

कि माता-पिता की भरसक सेवा करें, उनकी आज्ञाओं का पालन करें, और उन्हे सुखी करने की यथेष्ट व्यवस्था करें। जहाँ तक हमारा वश चले, उन्हे किसी तरह का कष्ट न होने देना चाहिए। उनकी बीमारी और बुढ़ापे मे तो हमे उनका ख़ास तौर से ध्यान रखना चाहिए।

हमने माता-पिता की आज्ञाओं का पालन करने की बात कही है, उसमे एक अपवाद है। जब हम सयाने या समझदार हो जायँ और स्वतन्त्र विचार कर सके, उस समय यदि उनकी कोई आज्ञा ऐसी हो, जिसे हमारा अन्तःकरण अनुचित समझे, या जो नीति-विरुद्ध हो तो हमे वैसी आज्ञा का पालन न करना चाहिए। परन्तु ऐसी दशा मे भी हमारा उनके प्रति आदर-भाव बना रहना चाहिए। हमारे शिष्टाचार, नम्रता और विनय में कोई कमी न होनी चाहिए।

स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति कर्तव्य—

भारतीय शास्त्रकारों ने स्त्री को पुरुष की अर्धाङ्गिनी कहा है। आदमी का कर्तव्य है कि वह स्त्री की उन्नति और विकास तथा सुख और सुविधाओं का ऐसा ध्यान रखे, जैसा कि वह स्वयं अपना ध्यान रखता है। वह उस पर अपने विचार जबरदस्ती न लादे, बल्कि धीरे धीरे समझा कर उसे अपने विचारों से परिचित करे, यही नहीं, जो गुण स्त्री में अधिक हो, उन्हे उस से लेने मे सकोच न करे। स्त्री को भी चाहिए कि वह पति के सुख दुख में पूरा साथ देने वाली हो, घर का कामकाज ऐसी चतुराई और किफ़ायत से करे कि पति को उसकी विशेष चिन्ता न करनी पड़े। वह सहनशील, उदारप्रकृति वाली, मीठा बोलने वाली हो, जिससे

घर में हर समय शांति, संतोष और सुख का वातावरण बना रहे। जब स्त्री पुरुष एक-दूसरे की रुचि और प्रकृति का यथेष्ट लिहाज रखते हुए अपने-अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक पालन करते हैं तो परिवार एक आनन्द-निकेतन बन जाता है। और, सुखी परिवारों पर ही समाज और दे ा की उन्नति निर्भर होती है।

सन्तान के प्रति कर्तव्य—

अपनी अपनी सुविधा और सामर्थ्य के अनुसार सभी माता-पिता अपनी संतान का लाड़-चाव से पालन करते हैं। उनमें संतान के प्रति प्यार होना स्वाभाविक ही है। इसलिए वे यथा-सम्भव उसकी शारीरिक और मानसिक उन्नति की ओर ध्यान देते हैं। तो भी आम तौर से यह देखने में आता है कि बच्चों के प्रति बहुत कम माता-पिता अपने यथेष्ट कर्तव्य का पालन करते हैं। प्राय: घरों में उनका उचित आदर मान नहीं होता। उन्हे पुकारने मे अशिष्ट या लघुतासूचक नाम का उपयोग होता है, उनके प्रति शिष्टाचार के व्यवहार की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। उनसे जरा सी भूल हो जाती है, या कोई चीज टूट-फूट जाती है तो उन्हे बहुत अपशब्द कहे जाते हैं, और बात-बात मे मारा-पीटा जाता है। अगर कभी कोई मकान बनवाना होता है, या घर के लिए जरूरी सामान खरीदना होता है तो बड़ी उम्र वालों की जरूरतों का तो भरसक ध्यान रखा जाता है, बच्चों की रुचि, और आवश्यकताओं का कोई विचार नहीं किया जाता। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी शक्तियों का यथेष्ट विकास नहीं हो पाता, वे हर दम डरे हुए से रहते हैं और उनके मन मे बुरे संस्कार घर कर जाते है, जिनका परिचय वे बड़े होकर देते है।

हमें याद रखना चाहिए कि आज के बच्चे ही देश के भावी कर्ण-धार हैं, इस दृष्टि से उनके प्रति बहुत सोच समझ कर, उदारता-पूर्वक व्यवहार होना आवश्यक है। यह बात खास कर लड़कियों को लक्ष्य में रखकर कही जा सकती है, कारण, प्रायः घरों में उनके प्रति बहुत अवहेलना की जाती है। माता-पिता को अपनी संतान की उन्नति और विकास के प्रयत्नों में लड़के लड़की का भेद-भाव रखना बहुत ही अनुचित है। आशा है विशेषतया स्त्रियों मे शिक्षा का प्रचार अधिक होने पर इसमे क्रमशः सुधार होगा।

अन्य व्यक्तियों के प्रति कर्त्तव्य—

परिवार मे भाई बहिन तथा और भी कई रिश्तेदार होते हैं। खासकर संयुक्त परिवार की दशा मे परिवार के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक हो सकती है। उदाहरण के तौर पर किसी घर में एक व्यक्ति के चाचा-चाची, ताऊ-ताई, भौजाई (भावी) या भतीजा आदि हो सकता है। ऐसी हालत में इस बात की संभावना अधिक होती है कि परिवार के आदमियों की रुचि या प्रकृति एक दूसरे से बहुत भिन्न हो। एक आदमी को एक तरह का भोजन पसंद हो, दूसरे को दूसरी तरह का, और तीसरे को एक तीसरी ही तरह का; इसी तरह एक आदमी को एकांत मे शान्ति से रहना रुचिकर हो, दूसरे को शोरगुल या हल्लागुल्ला मचाने का अभ्यास हो। ऐसे परिवार में सुखमय जीवन कैसे हो? इसका उपाय यही है कि हरेक आदमी अपनी रुचि या प्रकृति के अनु-सार ही काम करने का आग्रह न करे, वह दूसरों के स्वभाव का भी विचार करे। जब सब आदमी इस तरह का विचार करेंगे और कुछ-कुछ त्याग-भाव का परिचय देंगे तो हरेक बात में एक बीच

सी सूरत निकल आएगी, जिसमें किसी को पूर्ण संतोष भले ही न हो पर किसी को बहुत अधिक शिकायत का अवसर भी न मिलेगा। नागरिकों के लिए ऐसा रहन-सहन रखने का अभ्यास करना बहुत आवश्यक है। ऐसे नागरिक समाज में सब के साथ हिल-मिलकर रह सकते हैं।

संयुक्त परिवार में जीवन अच्छी तरह व्यतीत होने के लिए यह भी आवश्यक है कि हरेक आदमी जो कुछ कमा सकता है, अवश्य कमाये, ऐसा न हो कि कोई आदमी परिवार के प्रधान व्यक्ति की कमाई के आश्रित रहे। असल में हरेक नागरिक को स्वावलम्बी बनना चाहिए, दूसरों पर भार बनना, बिना मेहनत किये मुफ्त का खाना सर्वथा अनुचित है। हाँ, जो व्यक्ति बीमारी आदि के कारण कुछ उत्पादक (धन कमाने का) कार्य नहीं कर सकता उस के निर्वाह तथा सुविधाओं की व्यवस्था, परिवार की ओर से की जानी चाहिए।

नौकरों के प्रति कर्तव्य—

कुछ घरों में एक या अधिक नौकर घरू काम के लिए रहते हैं। इनके प्रति बहुत कम नागरिक अपने कर्तव्यों का पूरे तौर से पालन करते हैं। कहीं-कहीं तो नौकरों का वेतन महीना पूरा होने के कई-कई दिन बाद दिया जाता है, जिससे वह एक-दम नौकरी छोड़ कर न चला जाय। प्राय: नौकरों को काम इतना अधिक करना होता है कि मालिक को यह शंका बनी रहती है कि कहीं यह नौकर किसी दूसरी जगह न चला जाय, जहाँ काम कुछ हलका हो, या वेतन अधिक हो। नागरिकों को चाहिए कि वे नौकर को इतना वेतन और ऐसा काम दें, जिससे उसे दूसरी जगह जाने का प्रलोभन ही न रहे। फिर उसका कुछ दिन

का वेतन दबा कर रखने का प्रश्न ही न रहेगा। परन्तु, केवल यही काफी नहीं है कि नौकरों को उचित वेतन मिले, वह समय पर मिले, और उनका कार्य-भार बहुत अधिक न हो। आवश्यकता इस बात की भी है कि उनकी शिक्षा, सुख और सुविधा का समुचित ध्यान रखा जाय; उनसे बात-व्यवहार अच्छी तरह हो। उन्हें कभी-कभी रविवार या त्यौहार आदि की छुट्टी दी जाय। ऐसा करने से मालिक के घर वालों को कुछ असुविधा होना स्वाभाविक है, पर नौकर के आराम या सुख के लिए कभी-कभी उन्हें थोड़ा कष्ट उठाने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। यदि नौकर बीमार पड़े या उस के घर वालों को तकलीफ हो तो मालिक का कर्तव्य है कि उसके लिए उचित व्यवस्था करे। जहाँ तक हो सके नौकर से ऐसा वर्ताव किया जाना चाहिए कि उसे यही प्रतीत हो कि मैं भी मालिक के ही घर का आदमी हूँ और तन-मन से इनकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

निदान नागरिक का कर्तव्य है कि परिवार मे अपने से बड़ों का आदर मान करे, उनकी आज्ञाएँ माने और उनकी सेवा शुश्रूषा करे। उसे अपने से छोटों से प्रेमपूर्वक व्यवहार करना और अपने आश्रित नौकरों के भोजन वस्त्र और शिक्षा आदि की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

तीसरा अध्याय

स्कूल में

पिछले अध्याय में हम इस बात का विचार कर चुके हैं कि पारिवारिक जीवन में आदमी के क्या कर्त्तव्य होते हैं, उस में उसे किस प्रकार दूसरों के साथ सहयोग और सहानुभूति का भाव रखना चाहिए। समाज में, परिवार हमारे सब से निकट होता है। उसके व्यक्तियों से हमारा रक्त-सम्बन्ध होता है। सब हमारे रिश्तेदार होते हैं। सब की एक जाति, एक धर्म, एक रंग और बहुत-कुछ एक ही रुचि या प्रकृति होती है। उनके साथ मेल-जोल से रहना विशेष कठिन नहीं होता। सब एक दूसरे के सुख दुख को अपना सुख दुख मानते हैं, और सब मिल कर परिवार की उन्नति करने के अभिलाषी होते हैं। क्या ही अच्छा हो, अगर हम सारे संसार को अपना परिवार मानें, और दुनियाँ भर के सब आदमियो मे आपसी मेल-जोल और भाईचारा हो। नागरिक भावना हमें धीरे-धीरे इस दिशा मे आगे बढ़ने की प्रेरणा करती है। अस्तु, परिवार के बाद हमारा सम्बन्ध स्कूल रूपी समाज से होता है। इस समाज के प्रति हमारे क्या क्या कर्तव्य हैं, इसका ही यहाँ विचार करना है।

नियम-पालन—

हरेक स्कूल के खुलने और बंद होने का एक खास समय निश्चित होता है। विद्यार्थी को चाहिए कि ठीक समय पर स्कूल में पहुँचे और छुट्टी होने तक वहाँ रहे। इस बीच में जहाँ उसकी क्लास के बैठने का स्थान नियत हो वहाँ दूसरे विद्यार्थियों के साथ रहे। यदि कभी पानी पीने या पेशाब करने आदि, किसी खास काम से, क्लास से बाहर आने की जरूरत हो तो मास्टर से छुट्टी लेकर आवे। अपनी क्लास में विद्यार्थी, जिस समय जो विषय पढ़ना हो, उस समय उसी विषय को पढ़े। इस तरह विद्यार्थी को स्कूल में मनमानी कार्रवाई न कर वहाँ के नियमों के अनुसार चलना चाहिए। विद्यार्थी-जीवन की एक शिक्षा यही है कि हमें समाज में, समाज के नियमों का पालन करना चाहिए।

समानता का व्यवहार—

स्कूल में सब विद्यार्थी एक ही जाति, या एक ही धर्म के नहीं होते। कोई हिन्दू होता है, कोई मुसलमान, कोई ईसाई या पारसी आदि। हिन्दुओं में कोई ब्राह्मण होता है, कोई कोई क्षत्रिय या वैश्य और अब बहुत से स्कूलों में शूद्र या हरिजन विद्यार्थी भी रहते हैं। विद्यार्थियों का यह कर्तव्य है कि सब एक दूसरे से समानता का व्यवहार करें, कोई किसी को नीच या ओछी जाति का न समझे। ऊँच-नीच का भेद-भाव मानना अनुचित है। इसी तरह स्कूल में कोई विद्यार्थी बहुत धनवान् घर का होता है, कोई गरीब घर का। पर स्कूल में सब के साथ एक-सा व्यवहार होता है—अमीर लड़कों से कोई रियायत नहीं की जाती और गरीब पर कोई सख्ती नहीं होती। स्कूल के नियम सबको समान

रूप से पालन करने होते हैं। प्रायः विद्यार्थी ऊँच-नीच, छोटे-बड़े या धनी-निर्धन आदि का भेद नहीं मानते। विद्यार्थी-जीवन में सीखी हुई यह बात नागरिकों के भावी जीवन के लिये बहुत उपयोगी होती है, जब उन्हें बड़े समाज में अर्थात् व्यापक क्षेत्र में काम करना होता है।

सहयोग की भावना—

जब किसी विद्यार्थी को कुछ चोट लग जाती है या वह बीमार हो जाता है तो दूसरे मित्र उसकी भरसक शुश्रूषा करते हैं। प्रायः बोर्डिंग हाउस (छात्रावास) में रहने वाले विद्यार्थियों में ऐसा प्रेम-भाव होता है कि एक के कष्ट को सब अपना कष्ट समझते हैं, और उसके निवारण का प्रयत्न करते हैं। अगर कभी किसी के पास पेन्सल, कलम या किताब नहीं होती तो उसके जो साथी उसकी सहायता कर सकते हैं, अवश्य सहायता करते हैं। अगर कभी कोई दुष्ट आदमी किसी विद्यार्थी को मारने-पीटने लगता है, तो उसके साथी मिलकर उस विद्यार्थी की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं, और कभी-कभी स्वयं कष्ट उठाकर भी उसे बचाते हैं, बोर्डिंग हाउस में बहुधा विद्यार्थियों को जब अपने कमरे आदि की सफाई करनी होती है, तो सब मिलकर आसानी से और जल्दी ही कर डालते हैं। सहयोग की यह भावना नागरिक जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, यह पहले कहा जा चुका है।

दूसरों की सुविधाओं का ध्यान रखना—

स्कूल में विद्यार्थी अपनी क्लास में इस तरह बैठते हैं कि दूसरों को असुविधा न हो। अगर कोई विद्यार्थी अपनी पुस्तकें आदि बहुत फैलाकर रक्खे तो दूसरों को बैठने और अपना

सामान रखने के लिए काफी जगह न रहे। इसलिए हर एक विद्यार्थी का कर्तव्य है कि वह अपनी चीजें इधर-उधर न फैलाए और उन्हें ढंग से, थोड़ी सी जगह में रखे। इसी तरह जब विद्यार्थियों को अपना पाठ याद करना हो तो उसेधीरे-धीरे,मन में ही पढ़ें। अगर कुछ विद्यार्थी ज़ोर से अर्थात् ऊंची आवाज़ से पढ़ेंगे तो उनके दूसरे साथियों का ध्यान बट जायगा। और वे अपना काम अच्छी तरह न कर सकेंगे। इसके अलावा एक क्लास में शोरगुल होनेसे,उसके पास की दूसरी क्लास की पढ़ाई में भी बहुत हर्ज होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि स्कूल में विद्यार्थी धीमी आवाज़ से पढ़ें, और शोरगुल न करें। छात्रालय में रहने वालों को इस ओर और भी ध्यान देने की आवश्यकता है। सम्भव है कि यदि वहाँ कोई विद्यार्थी ज़ोर-ज़ोर से पढ़े तो कोई उसे न रोके। लेकिन विद्यार्थी को स्वयं ही सोचना चाहिए कि मेरे ज़ोर से पढ़ने से दूसरों को असुविधा होगी, और मुझे ऐसा काम न करना चाहिए, जिससे दूसरों को असुविधा हो। हमें तो ऐसा व्यवहार करना है जो दूसरों के लिए यथासम्भव हितकर हो, और असुविधाजनक तो किसी भी दशा में न हो। विद्यार्थी-जीवन में मिलने वाली इस शिक्षा का पीछे सार्वजनिक जीवन में उपयोग होने से समाज की उन्नति में बड़ी सहायता मिलती है।

अपना काम अच्छी तरह करना—

विद्यार्थी जीवन में, लड़के और लड़कियों को एक बात यह सीखनी होती है कि अपना काम अच्छी तरह करें। अध्यापक ने जो पाठ याद करने को दिया है, या लिखने का जो काम

बताया है, उसे समय पर और अच्छी तरह किया जाना चाहिए। कुछ विद्यार्थी अपना समय अनावश्यक और व्यर्थ की बातों में, गपशप मे, बिता देते है, और पढ़ने-लिखने की ओर काफी ध्यान नहीं देते, और मास्टर के सामने, काम न कर सकने के झूठे बहाने बनाया करते हैं। यह बहुत अनुचित है। इससे कोई उनका विश्वास नहीं करता, मास्टर उन्हे बुरा-भला कहता है, और उनका अपने साथियो में कुछ आदर-मान नही रहता। ये विद्यार्थी जब अपनी वार्षिक परीक्षा मे फेल हो जाते हैं, तो उनके घर वाले भी बहुत नाराज़ होते हैं। इस तरह चारों ओर से निरादर और अप्रसन्नता प्राप्त करने पर ऐसे विद्यार्थी बहुत निराश, हतोत्साह और दुखी रहने लगते हैं। ये अपने भावी जीवन में उन्नति नही कर पाते, और इनके जन्म भर दुखी होने की सम्भावना होती है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि विद्यार्थी पढ़ने-लिखने मे ख़ूब मन लगावें, और अपना काम अच्छी तरह करें। यह ठीक है कि उनके लिये खेल कूद, व्यायाम और मनोरंजन भी जरूरी है जिससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहे। लेकिन उन्हे याद रखना चाहिए कि हरेक काम अपने समय पर करना ठीक रहता है। खेल के समय खेल और पढ़ने के समय पढ़ना—यह बहुत अच्छा और उपयोगी नियम है, जो विद्यार्थियों को सदैव पालन करना चाहिए। हाँ, उन्हें देश की परिस्थिति का भी अध्ययन करते रहना है, और यह याद रखना है कि उन्हें एक सुयोग्य नागरिक बनना है।

खेद है कि बहुत से विद्यार्थी पढ़ने से मन चुराया करते हैं, उनकी इच्छा रहती है कि स्कूल में छुट्टियॉ अधिक से अधिक हों। ओछी मनोवृत्ति वाले या खेल-कूद मे लगे रहने वाले बहुत

से विद्यार्थी अक्सर यही सोचा करते हैं कि अच्छा हो कि आज स्कूल मे छुट्टी हो जाय, या हमारी क्लास को पढ़ाने वाले मास्टर को घर पर जरूरी काम लग जाय, या वे बीमार पड़ जायँ, जिससे हमें पढ़ना न पड़े, हम आनन्द से छुट्टी मनाव। विशेष दुःख का विषय तो यह है कि ऊंची श्रेणियों मे पढ़ने वाले विद्यार्थियों में भी ऐसे कुविचार पाये जाते हैं। हालाँकि हाई स्कूलों में छुट्टियाँ काफ़ी रहती है, फिर भी विद्यार्थी और अधिक छुट्टियाँ चाहते रहते है, और अवसर पाते ही क्लास रूम से ग़ायब होने या छुट्टी लेने की सोचा करते हैं। वे किताबा का उतना अंश या सारांश अथवा 'नोट्स' आदि पढ़ना चाहते हैं, जिससे वे परीक्षा में पास हो जायं। वास्तव मे बात यह है कि वे किसी तरह पास होकर सर्टिफिकेट प्राप्त करने के इच्छुक होते है। वे ज्ञान के अभिलाषी नहीं होते। इसीलिए कितने ही विद्यार्थी साल के केवल अंतिम दिनों मे कुछ काम करते हैं। परीक्षा देने के बाद वे अधिकांश बातें भूल जायें तो उन्हें कोई चिंता नहीं होती। यह बहुत चिन्तनीय है, विद्यार्थियों को यथानाम विद्यार्थी होना चाहिए और अपना काम अच्छी तरह करना चाहिए।

चौथा अध्याय

गाँव, पंचायत और सहकारी समितियाँ

हम पहले इस बात का विचार कर चुके हैं कि परिवार के सदस्यों के प्रति नागरिक के क्या कर्तव्य है। परिवार के आदमियों का आपस मे रक्त-सम्बन्ध या नजदीकी रिश्तेदारी होती है। वे स्वभाव से ही एक दूसरे के लिए कष्ट सहते और स्वार्थ-त्याग करते हैं। नागरिक जीवन में परिवार से अगली जिस संस्था से हमारा सम्बन्ध होता है, वह गॉव है। उसे हमारा 'राजनैतिक घर' कहा जाता है। बात यह है कि राजनैतिक संगठन की पहली सीढ़ी गॉव है। इसके बाद की सीढ़ियां तहसील, जिला, प्रान्त और देश हैं, और अन्तिम सीढ़ी विश्व या संसार है। इस अध्याय में हमें यह विचार करना है कि गाँव की जनता के प्रति हमारे क्या कर्तव्य हैं।

भारतवर्ष में गाँवों का महत्त्व—

भारतवर्ष को प्रायः गाँवों का देश कहा जाता है। यह ठीक ही है। यहाँ गॉवों की संख्या सात लाख है, जबकि कस्बे या शहर तीन हजार से भी कम है। इसी से यह स्पष्ट है कि यहाँ

ग्रामीण या देहाती जनता की प्रधानता है। पिछली मनुष्य-गणना के अनुसार इस देश की नब्बे फीसदी आबादी गाँवों में रहने वाली है। यह बात बड़े महत्त्व की है। हरेक देश-हितैषी को इसका ध्यान रखना चाहिए। भारतवर्ष का उत्थान तभी होगा, जब यहां की ग्रामीण जनता का उत्थान होगा। गाँवों की अव-हेलना करने वाला कोई आन्दोलन देशव्यापी होने का दावा नहीं कर सकता।

गाँवों के भेद—

भारतवर्ष में गाँवों के मुख्य भेद तीन हैं—(१) जमींदारी (२) रैयतवारी और (३) महालवारी। जमींदारी गाँव में एक या अधिक जमींदार होते हैं। कोई कोई जमींदार कई कई गाँवों का भी मालिक होता है। जमींदार अपने हिस्से की जमीन के सब किसानों से लगान वसूल करके सरकार को मालगुजारी देता है। मालगुजारी चुकाने की जिम्मेवारी उसी पर होती है। सरकार का जुदा-जुदा किसानों से सम्बन्ध नहीं होता। उसके और किसानों के बीच में जमींदार मध्यस्थ होता है। उसे मालगुजारी चुका कर लगान की शेष आय अपने पास रखने का अधिकार है। कुछ जमींदार किसानों से कई प्रकार की अनियमित आय वसूल करते रहते हैं। गाँव की पर्ती भूमि और जंगल आदि पर जमींदार का अधिकार माना जाता है। जमींदार का गाँव के आदमियों पर बड़ा प्रभाव रहता है। जमींदारी गाँव में अधिकतर उत्तर भारत में है। बंगाल प्रान्त और बिहार आसाम और संयुक्त प्रान्त के कुछ हिस्सों में स्थायी बन्दोबस्त है; दूसरे जमींदारी क्षेत्र में नया बन्दोबस्त हर बीस तीस साल के बाद होता रहता है।

रैयतवारी गाँव बम्बई, सिंध, और मदरास में, तथा आसाम और बिहार के कुछ हिस्सों मे है। इन स्थानों में सरकार का सीधे काश्तकारों से सम्बन्ध होता है। हरेक किसान या रैयत अपने-अपने खेत की मालगुजारी सीधे सरकार को ही चुकाता है। गाँव मे जो जमीन पर्ती, जंगल या ऊसर होती है, वह सरकारी समझी जाती है। गाँव वाले सामूहिक रूपमें उसका उपयोग करते है। बन्दोबस्त तीस साल या इससे कम समय के लिए होता है।

महालवारी गाँव खासकर मध्यप्रान्त में हैं। इन गाँवों में मालगुजारी बीस या तीस वर्ष के लिये निश्चित कर दी जाती है, और गाँव वाले उसे मिलकर चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। ऐसा गाँव वहां के सब निवासियों की सम्मिलित सम्पत्ति माना जाता है। रैयतवारी और महालवारी प्रथा में यही अन्तर है कि महालवारी में गाँव का मालगुजार मालगुजारी चुकाने का जिम्मेवार होता है।

रैयतवारी और महालवारी गाँव में तथा कुछ जमींदारी गाँवों में भी अस्थायी बन्दोबस्त होता है। मालगुजारी बीस, पच्चीस या तीस साल के लिए निश्चित की जाती है। इसके बाद फिर जमीन की पैदावार की जांच करके नया बन्दोबस्त किया जाता है। आम तौर से हर नये बन्दोबस्त में मालगुजारी का परिमाण बढ़ता रहता है।

ग्राम्य समुदाय—

भारतवर्ष के गाँवों के सम्बन्ध में अन्य बातों का विचार करने से पहिले हमें ग्राम्य समुदाय या गाँव की जनता की स्पष्ट कल्पना कर लेनी चाहिए। ग्राम्य समुदाय का अर्थ किसानों को

समूह ही नहीं है। इसमें वे सब आदमी होते है, जो किसानों की कृषि सम्बन्धी तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। प्राचीन काल में भारतवर्ष के प्रत्येक गाँव के आदमी प्रायः स्वावलम्बी होते थे, वे अपनी ज़रूरत की चीजे ख़ुद ही पैदा करते थे, वे उनके लिए बाहर के आदमियों पर निर्भर नहीं रहते थे। इस प्रकार हर एक गाँव में विविध प्रकार के काम करने वाले पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहते चले जाते थे—जैसे पंडित, पुजारी, पहरेदार, महाजन, सुनार, तेली, नाई, बढ़ई, लुहार, धोबी, जुलाहा, चमार, कुम्हार, भंगी और बहुधा भिखारी आदि भी। ऐसी चीज़ें इनी-गिनी ही होती थीं, जिनकी गाँव वालों को जरूरत भी हो और जो वहाँ बन भी न सकें। ऐसी चीज़ें बाज़ार-हाट लगने के समय ले ली जाती थीं; हाट प्रायः सप्ताह मे एक या दो बार कई गाँवों के किसी बीच के स्थान में लगती थी फिर, तीर्थ-स्थानों में साल में एक दो बार मेले या उत्सव आदि होते थे। जहाँ दूर-दूर के व्यवसायी तथा व्यापारी इकट्ठे होकर क्रय-विक्रय (खरीद-फ़रोख्त) करते थे। अठारहवीं सदी तक भी भारतीय ग्राम्य समुदाय बहुत कुछ स्वावलम्बी रहे। पीछे उसका यह गुण क्रमशः क्षीण होता गया। न सिर्फ़ गाँव अपने पास वाले शहरों पर अधिकाधिक आश्रित होने लगे, वरन् विदेशी माल भी ज्यादह-ज्यादह परिमाण में लेने लगे। अब तो हालत यह है कि लोगों की नित्यप्रति की कई ज़रूरतें ऐसी हैं जो विदेशी माल के बिना पूरी नहीं हो पातीं। गाँवों में विविध पेशों वाले कुछ कुछ आदमी अब भी रहते हैं, और वे किसानों की कुछ ज़रूरतें पूरी करते हैं, पर उन्हें पहले की तरह न काम मिलता है, और न आमदनी ही होती है।

मुख्य लक्षण—

ग्राम्य समुदाय का प्रमुख लक्षण यह है कि आदमी प्रायः पुराने विचारों वाले, कुछ रूढ़ियों को मानने वाले और विविध रीति-रस्मों को बिना विचारे पालने वाले होते है। उनके जीवन में रिवाज और परम्पराओं का बड़ा भाग होता है। वे सहसा नई बातों को नहीं अपनाते। भारतवर्ष का पश्चिमी देशों से सम्बन्ध बढ़ने के कारण, शहरों और कस्बों में आदमियों के रहन-सहन मे परिवर्तन हो रहा है, और उसका कुछ प्रभाव गाँव वालों पर भी पड़ रहा है, पर वह बहुत कम ही है। उनमें प्राचीन भारत की ही झलक अधिक मिलती है। प्रायः आदमी सरल स्वभाव के होते है; वे छल-कपट, झूठ, बेईमानी या दगाबाजी से परहेज़ करते है, सिवाय जब कि वे भूख और गरीबी से तंग आजाते है। वे एक दूसरे का विश्वास करते हैं, अपनी बात के सच्चे होते हैं। अपनी शक्ति भर दान-पुण्य और अतिथि-सत्कार करते हैं; मेहनती और संयमी होते हैं। वे धर्म-भीरू होते हैं। ये बातें पहले से अब कम होने पर भी शहर वालों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं।

हमने ऊपर कहा है कि ग्राम्य-समुदाय अब पहले की तरह स्वावलम्बी नहीं रहे हैं। भारतवर्ष का इंगलैंड आदि पश्चिमी देशों से सम्बंध होने, पिछली शताब्दि से कल कारखानों की वृद्धि होने, और यातायात के साधनों की उन्नति होने के कारण यहाँ विदेशी माल अधिकाधिक आने से यहां के गाँवों के स्वावलम्बन का ह्रास होना स्वाभाविक ही था। हाँ, अभी हमारे गाँवों में कल-कारखानों की पहुँच कम ही हुई है। यद्यपि कहीं-कहीं आटा पीसने की चक्की या इस तरह की दूसरी छोटी-छोटी मशीनें

पहुँच गई हैं, अधिकतर गाँवों में मशीनों का शोरगुल या धुआँ नहीं है; जीवन शांतिमय है।

प्राचीन काल में गाँवों के आदमी, बहुत कुछ सामूहिक जीवन बिताते थे; एक-दूसरे के सुख-दुख, तथा नित्यप्रति के कामों में साथ देते थे; किसी के कष्ट को दूर करना अपना कर्तव्य समझते थे, और पंचायतों के नियंत्रण में रहते हुए अपने शासन-प्रबंध के सम्बन्ध में भी स्वावलम्बी होते थे। अब वह सामूहिक भावना हटती जा रही है। पञ्चायतों के बारे में आगे लिखा जायगा।

ग्रामीण जनता की दशा--

पहले कहा गया है कि गाँवों में कुछ आदमी तरह तरह के व्यवसाय करने वाले भी रहते हैं; तथापि वहाँ अधिकतर जनता खेती के आश्रित रहती है। खेती से निर्वाह करने वालों के कई भेद हैं। सब से नीचे के दर्जे के आदमी कृषि-श्रमजीवी या मजदूर किसान हैं। इन के पास अपनी ज़मीन प्रायः कुछ नहीं होती, यहां तक कि ये अपना घर या झोंपड़ी भी उसी दशा में बना सकते हैं, जब ज़मींदार अपनी जमीन पर बनाने की इन्हें इजाज़त दे दे। ऐसी दशा में ज़मींदार जब चाहे, इनसे अपनी जमीन खाली करा सकता है और उन्हें अपने घर का मलवा-मसाला उठाकर उस ज़मीन को छोड़ देना होता है। ये लोग मजदूरी की तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। इनकी औरतें और बड़ी उम्र के बालक भी आजीविका की चिन्ता में रहते हैं। प्रायः फसल के दिनों में भी इनकी इतनी आय नहीं होती कि परिवार का कुछ अच्छी तरह गुज़ारा हो जाय। फिर, साल के चार पाँच महीनों में जब कि खेतों में काम नहीं होता इनकी दुर्दशा का क्या ठिकाना! ये घटिया अन्न और शाक-भाजी खाकर रहते हैं; और

अनेक बार इन्हें वह भी काफ़ी नहीं मिल पाता और इन्हे आधे-पेट रह कर जिन्दगी के दिन काटने होते हैं। इनमें हरिजन या अछूत जातियों के आदमी खास संख्या में होते हैं।

इनसे कुछ अच्छी हालत मे वे लोग हैं, जिन्हें पंजाब में 'मुज़ारे' कहते हैं। इनके पास प्रायः अपनी कुछ जमीन होती तो है, पर वह इतनी कम होती है कि उससे इनका निर्वाह नहीं हो सकता। ये बटाई पर दूसरों की ज़मीन ले लेते हैं, उसके साथ ही अपनी जमीन पर खेती कर लेते है। इनका निर्वाह मुश्किल से ही हो पाता है। प्रायः इन पर कर्ज़ का भार लदा रहता है, और ये कर्ज़ चुकाने के लिए अपनी ज़मीन बेच देते हैं। इन में बहुत से आदमी मज़दूर किसानों की श्रेणी मे आगये हैं, और आ रहे है।

इनसे ऊपर मौरूसी किसानों का दर्जा है। जबतक ये लोग ज़मीन का निर्धारित लगान चुकाते रहते है, इन्हें खेती करने का अधिकार है; ये बेदखल नहीं किये जा सकते। इन से ऊपर की श्रेणी मे वे लोग हैं जो अपनी ज़मीन के मालिक हैं। ये ज़मींदार कहलाते हैं। अधिकतर ज़मींदार बहुत छोटे-छोटे ही ज़मींदार है पंजाब में लगभग साठ फी सैकड़ा ज़मीदारों के पास चार-चार पांच-पांच एकड़ से अधिक ज़मीन नहीं है।

ग्राम्य जीवन में परिवर्तन—

पहले बताया गया है कि भारतीय जनता और खासकर गाँवों में रहने वाले अधिकतर पुराने विचारों के हैं। तो भी कुछ परिवर्तन तो हो ही रहा है। प्राचीन काल मे हर एक गाँव स्वावलम्बी थी, उसे दूसरे गाँवों या शहरों से बहुत कम काम पड़ता था। अब तो गाँव अधिकाधिक शहरों पर निर्भर होते जाते हैं।

ये अपने खर्च के लिए बहुत से पदार्थ क़स्बों या शहरों से मंगाते हैं; और अपनी पैदावार शहरों में जाकर बेच देते हैं। हमारा बहुत सा अन्न, कपास और दूसरे कच्चे पदार्थ हर साल विदेशों को जाते हैं। इस प्रकार गाँव का किसान केवल अपने गाँव या अपने देश के लिए ही पैदा नहीं करता; उसकी बहुत सी पैदावार का उपयोग दूसरे देश वाले करते हैं। गाँवो की पुरानी रीति-रस्मे धीरे-धीरे बदलती जा रही है। कल-कारखानों मे बने माल का उपयोग बढ़ने से, कितने ही व्यवसायी बेकार हो गये हैं। गाँवों के बहुत से आदमी अब शहरों में जाकर बसने लग गये है। इस प्रकार देश में ग्रामों की जनसंख्या का अनुपात घट रहा है, और शहरी जनता का अनुपात बढ़ रहा है। जो आदमी गाँव मे रहते हैं उनका भी शहरों में आना-जाना बढ़ रहा है। कुछ युवक शिक्षा पाने के लिए शहरों में जाते है। कितने ही आदमी आजीविका की तलाश में रहते हैं, जब फसल के दिन नहीं होते और गाँव में खेती का काम नहीं रहता, वे शहरों में जाकर कल-कारखानों आदि मे मजदूरी का काम करते हैं, और पीछे फ़सल के दिनों में अपने गाँव मे लौट आते हैं। ये लोग अपने साथ शहरी वातावरण की कितनी ही बातें ले आते हैं, जिनका धीरे-धीरे दूसरे आदमियों पर भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार विविध कारणों से ग्राम्य जीवन में थोड़ा-बहुत परिवर्तन होता जा रहा है।

ग्राम सुधार की आवश्यकता—

हमारे गाँवों की दशा बहुत शोचनीय है। शिक्षा की बात लीजिए; भारतवर्ष में कुल मिला कर फ़ी सैकड़ा केवल बारह तेरह आदमी ही ऐसे हैं, जो कुछ पढ़ना-लिखना जानते हैं, इनमें

भी शहरों में शिक्षितों का अनुपात अधिक है, गाँवों मे बहुत कम अनेक गॉवों मे दूर-दूर तक कोई प्राइमरी या प्रारम्भिक पाठशाला तक नहीं है। ऐसी दशा में गॉव वाले देश विदेश की विविध समस्याओं पर क्या विचार कर सकते हैं। फिर बहुत से आदमी ऐसी गरीबी का जीवन बिता रहे हैं कि उनके लिए प्रमुख समस्या यही रहती है कि किस प्रकार अपना निर्वाह कर सकें। उन्हें पेट-भर भोजन, तथा सर्दी-गर्मी से बचने के लिए आवश्यक कपड़ा जुटाने के लिए ही दिन-रात मेहनत करनी पड़ती है और इस पर भी अनेक दशाओं मे वे इसमें सफल नहीं हो पाते। ऐसी गरीबी में उनका अस्वस्थ या बीमार रहना, और थोड़ी उम्र में मर जाना स्वाभाविक ही है। ये बेचारे अपने जन्म-भर और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मुसीबते उठाते हुए इतने निराश हो गये हैं कि इन्हें यह कल्पना ही नहीं होती कि कभी इनके दिन फिरेंगे, और इनकी दशा में कुछ सुधार होगा। गाँवों के बहुत से आदमी जन्म भर कर्ज़दार रहते हैं, और मरते समय अपनी संतान के लिए कर्ज़ की विरासत छोड़ जाते हैं। कितने ही आदमियों के पास अपनी इतनी भी ज़मीन नहीं होती कि उस पर मामूली सा घर या झोंपड़ी बना कर रह सकें। ऐसी हीन दशा में रहने वाले आदमियों से नागरिक जीवन के विविध प्रश्नों पर गम्भीर विचार करने की क्या आशा की जाय।

अगर भारतवर्ष की आर्थिक और राजनैतिक उन्नति करना है तो गॉवों की दशा में भारी परिवर्तन और बड़े सुधार होने की आवश्यकता है। भारतवर्षने स्वराज्य प्राप्त कर लिया किंतु संसार में अपना यथेष्टस्थान अभीप्राप्त करना है, गाँवोंकी जनताका उत्थान हुए बिना यह कार्य नहीं हो सकता। हमें ग्राम-सुधार की अति-

वार्य आवश्यकता है। ग्राम-सुधार मे शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य-रक्षा, हरेक नागरिक के लिए रोटी कपड़े और मकान की व्यवस्था, रोगियों के लिए चिकित्सा का प्रवन्ध, कर्जदारी से छुटकारा, स्वाभिमानपूर्वक स्वावलम्वी जीवन व्यतीत करना, आदि सभी बातें शामिल हैं, जिनसे आदमी अपनी विविध शक्तियों का योग्य विकास कर सकें, और अपने देश-बन्धुओं तथा मानव जाति की प्रगति में सहायक हो सकें।

ग्राम-सुधार में भाग लेना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है—

जिस गाँव मे आदमी का जन्म होता है, और बचपन गुजरता है, उससे उसका सहज ही प्रेम हो जाता है। वहाँ के खेत, नदी-नालों, जंगल, चरागाह या रास्तों से उसकी अच्छी तरह जानकारी हो जाती है। वहां के आदमियों से उसका घनिष्ट सम्बन्ध होता है, कुछ तो उसके मित्र या पड़ौसी ही होते हैं, दूसरे भी बहुत से आदमी ऐसे होते है, जिनसे उसे समय-समय पर काम पड़ा था, कुछ ने उसे बचपन में खिलाया और प्यार किया था। इन सब आदमियों के सुख-दुःख की बातें जानना और उनके हित या भलाई की बाते सोचना मनुष्य के लिए स्वाभाविक ही है।

इसके अलावा, अपने परिवार के हित की दृष्टि से भी हमें गाँव के हित की बात सोचनी और करनी होती है। कल्पना करो, गाँव में प्लेग या हैजा आदि कोई बीमारी फैली, तो वह सहज ही हमारे यहाँ आ सकती है। इसलिए अगर हम ऐसी बीमारी से बचे रहना चाहते हैं, तो यह जरूरी है कि हम गाँव की सफाई और स्वास्थ्य आदि की ओर ध्यान दें। इसी तरह

गाँव में शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है, बालक दिन-भर आवारा फिरते और अपशब्द कहते रहते हैं, अथवा आपस में लड़ते झगड़ते रहते हैं, तो उनकी संगति में रहकर हमारे बालकों की भी वैसी ही खराब आदतें पड़ जाने की संभावना है। इस वास्ते गाँव वालों की शिक्षा की ओर ध्यान देना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। इसी प्रकार ग्रामोन्नति या सुधार की अन्य बातों का विचार किया जा सकता है।

ग्राम-प्रबन्ध और पंचायतें—

गाँव की उन्नति या सुधार करने या उसमे भाग लेने के लिए यह जरूरी है कि हम यह जान लें कि गाँवों का प्रबन्ध किस तरह होता है। कारण कि ग्राम सम्बन्धी सब बातों पर ग्राम-प्रबन्ध का बड़ा असर पड़ता है। प्राचीनकाल मे गाँवों का सारा शासन-प्रबन्ध पञ्चायतों द्वारा होता था। वे स्थानीय रक्षा-कार्य के लिए पुलिस रखतीं, भूमि-कर वसूल करके उसे सरकारी कोष में भेजतीं और छोटे-मोटे दीवानी और फौजदारीके झगड़ों का निपटारा करती थीं। पञ्चायतों का यहाँ इतना विश्वास और आदर था कि अब तक 'पञ्च परमेश्वर' की कहावत चली आती है। परन्तु अङ्गरेजों की अमलदारी में इन संस्थाओं की आय तथा इनके अधिकार प्रान्तीय सरकारों ने ले लिये। सरकार की ओर से ही पुलिस रखी जाने लगी, और दीवानी और फौजदारी की अदालतें स्थापित कर दी गईं। इससे पंचायतों का महत्त्व जाता रहा। अब कुछ जातियों मे सामाजिक विषयों का निपटारा करने के लिए जातीय पंचायतें हैं, जो पंचायती मंदिर या धर्मशाला आदि भी बनवाती हैं, पर यह पुरानी प्रभावशाली पंचायतों की यादगार मात्र हैं।

वर्तमान पञ्चायतें—

धीरे-धीरे अङ्गरेज अधिकारियों को मालूम हुआ कि ग्राम-प्रबन्ध का कुछ काम पंचायतों को दिया जाना अच्छा है, और जरूरी भी। अब कुछ वर्षों से सरकार द्वारा नये रूप मे पंचायतें स्थापित की जा रही हैं। इनके अधिकार पहली पंचायतों से बहुत कम हैं। इनका काम सरकारी कर्मचारियों की सहायता से और उनके ही निरीक्षण में होता है। प्रान्तों में पञ्चायत कानून (पञ्चायत एक्ट) बना हुआ है। प्रत्येक प्रांत के पञ्चायत-कानून के अनुसार उस प्रान्त की पञ्चायतों के अधिकार और संगठन-सम्बन्धी नियम निर्धारित हैं। बहुत से स्थानों मे पञ्चायतें खुल गई हैं, और खुलती जा रही हैं। सब प्रान्तों में पञ्चायत सम्बन्धी मुख्य-मुख्य नियम एक ही तरह के हैं; कहीं-कहीं कुछ भिन्नता है।

पंजाब की पञ्चायतें—

पंजाब प्रान्त मे जो पंचायतें है, वे सब सन् १९३१ के पञ्चायत एक्ट के अनुसार हैं। पहले वहां सन् १९२२ का एक्ट अमल मे आ रहा था। नये एक्ट के अनुसार पञ्चायत के तीन से सात तक सदस्य होते हैं, इन्हें प्रायः गाँव के चौकीदारी टैक्स देने वाले आदमी चुनते हैं। पञ्चायत अपने सदस्यों में से एक को सरपञ्च और एक को नायब सरपञ्च चुनती है। सरपञ्च पञ्चायत का सभापति और प्रधान अधिकारी होता है। उसकी अनुपस्थिति में उसका काम नायब सरपञ्च करता है। इन दोनों अधिकारियों का चुनाव साल भर के लिए होता है। पञ्चायतों को दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के साधारण मामलों को निपटाने के कुछ अधिकार होते हैं। इसके अलावा इन्हें गाँव की सफाई और उन्नति के भी कुछ अधिकार रहते हैं—जैसे कूड़ा फिकवाना,

नालियाँ बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना, गलियाँ और नालियाँ साफ़ कराना, कुएँ जोहड़ और तालाब खुदवाना और इनकी मरम्मत और सफाई कराना, शमशान या कबरिस्तान का प्रबन्ध करना। गाँव में पहरे का इन्तजाम करना, अपराधों की रोक-थाम करना, और अपराधियों की खोज में पुलिस की सहायता करना भी पञ्चायतों का आवश्यक कार्य है।

इन कामों के अलावा पंचायतें गाँव वालों के लिए कुछ दूसरे कार्य भी कर सकती हैं। जैसे गलियों या रास्ते में रोशनी का इन्तजाम करना, सड़क पर पेड़ लगाना, घरों की बनावट में सुधार करना, गरीबों और बीमारों को सहायता पहुँचाना। धार्मिक त्यौहारों को छोड़कर दूसरे सार्वजनिक त्यौहार या मेलों का प्रबन्ध करना, खेती या घरू काममें आने वाले पशुओं और घोड़ों की नसल सुधारना, चौक, (खुली जगह) खेलने के मैदान और सार्वजनिक बगीचों की व्यवस्था करना, पुस्तकालय खोलना और चलाना, खेती तथा ग्रामोद्योग-धन्धों की उन्नति करना, अनाज का भण्डार रखकर किसानों को बोने के लिए बीज देना आदि। अगर कोई आदमी ऐसा काम करे जिससे गाँव की सफ़ाई या स्वास्थ्य आदि में बाधा पहुँचे—घरों के पास कूड़ा कचरा फैलावे, ऐसे तालाबों में पशुओं को नहलावे जिनका पानी लोगों के पीने के काम में आता हो, बस्ती के पास गोबर और मैला फैंके—तो पञ्चायत उसे रोक सकती है। जो आदमी इस विषय में पंचायत की आज्ञा न माने उसे पंचायत दण्ड दे सकती है; उस पर कुछ जुर्माना कर सकती है।

पंचायतों को अपने लिए जिला-बोर्डों तथा सरकार से कुछ रकम मिलती है। उन्हें गाँव के आदमियों पर कुछ कर लगाने का

अधिकार है, पर वे यह कर कम ही लगाती हैं, वैसे भी जनता पर करों का भार इतना है कि और कर लगाना प्रायः ठीक नहीं मालूम होता। अस्तु, वर्तमान अवस्था में पञ्चायतों की आय और अधिकार बहुत कम हैं। आशा है भविष्य में ये बढ़ाये जायँगे।

पंचायतों की उन्नति—

पंचायतों की उन्नति की गति बहुत धीम है। बहुत से गाँवों में उनकी स्थापना ही नहीं हुई है। पंजाब में ऐसे हज़ारों गाँव है, जिनमें शीघ्र ही पंचायते स्थापित की जानी चाहिएँ। कुछ गाँव ऐसे भी है, जिनमे एक एक पंचायत स्वतंत्र रूप से कायम नहीं हो सकती। ऐसे दो-दो तीन-तीन गाँवों के समूह में एक यूनियन बोर्ड की स्थापना की जा सकती है। कुछ गाँवों मे ऐसा किया गया है। यूनियन बोर्ड के कार्य, अधिकार और आय के साधन पंचायतो जैसे ही होते हैं।

नागरिकों के सहयोग की आवश्यकता—

नागरिकों को चाहिए कि पंचायतों के काम में खूब दिलचस्पी लें, और उन्हे अधिकाधिक उपयोगी बनावें। पंचों के चुनाव के बारे में आदर्श तो यह है कि गाँव के सभी बालिग़ व्यक्तियों को उस में मत देने का अधिकार हो। पर अभी यह व्यवस्था नही हुई है। इसलिए जितने भी आदमियों को मताधिकार हों, वे उसे खूब सोच समझ कर काम में लावें। अच्छे, योग्य, ईमानदार और अनुभवी तथा निष्पक्ष आदमियों को ही पंच बनाया जाना चाहिए, अपने सम्प्रदाय या जाति आदि के अयोग्य आदमी के बारे में मत देकर उसके पंच बनाने में मदद देना बहुत अनुचित है। बहुत से मतदाता दूसरों के लिहाज़, या धौंस में आकर या किसी लोभ में फंसकर अपने

कर्तव्य की अवहेलना कर बैठते हैं। इससे अयोग्य आदमी पंच बन जाते हैं। और गाँव के प्रबन्ध में तरह तरह की खराबियां आ जाती हैं। सब गाँव वालों को हानि पहुँचती है। प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति पर ऐसा प्रसङ्ग न आने दे। हमे गाँव की उन्नति और सुधार का प्रयत्न करना है तो पंचायतों का संगठन अच्छे से अच्छा करना चाहिए, और उस के लिए मुख्य आवश्यकता यह है कि मतदाता अपने मत का बहुत सावधानी और विवेक से उपयोग करें। नगरों या शहरों के रहने वालों को भी इस बात का काफी ध्यान रखना चाहिए, जिससे म्युनिसपैलटियों का संगठन ठीक हो, और नगरों के सुधार, और उन्नति आदि के काम में खूब प्रगति होती रहे।

पंचों को भी अपने कर्तव्य का अच्छी तरह पालन करना चाहिए। जब कोई नागरिक पंच बनता है, तो उसे समझना चाहिए कि मुझे अपने गाँव की उन्नति या सुधार करने का अवसर मिला है। जो विषय उसके सामने आवे, उस पर निष्पक्ष हो कर विचार करे, ऐसा न हो कि अपनी जाति, बिरादरी या धर्म वालों के साथ पक्षपात करे, या किसी लोभ या भय मे आकर अनुचित निर्णय दे। जब हरेक पंच अपने सामने सेवा-भाव रखेगा और अपने पद का दुरुपयोग न करेगा, तो ग्राम की उन्नति मे अच्छा सहयोग प्रदान होगा। इससे पंचायत की भी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, और दूसरे नागरिकों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

सहकारी समितियां—

सामाजिक जीवन मे सहयोग या सहकारिता कितनी आवश्यक और उपयोगी है, यह पहले अध्याय में बताया जा

चुका है। सहकारिता के भाव से जो समितियाँ बनाई जाती है, उन्हें सहकारी समितियां कहते हैं। विविध पदार्थ पैदा करने या बनाने वालों की समितियां उत्पादक समितियां कही जाती हैं। और चीजें खर्च या उपयोग करने वालों की समितियाँ, उपभोक्ता समितियां कहलाती हैं। उत्पादक सहकारी समिति का उद्देश्य यह होता है कि माल पैदा या तैयार करने में खर्च कम-से-कम हो। उसमें हर तरह किफ़ायत की जाय, जिससे वह सस्ती पड़े। उपभोक्ता सहकारी समिति यह कोशिश करती है कि वस्तुओं को ऐसी जगह से, और इतने अधिक परिमाण में खरीदें कि वे कम-से-कम मूल्य में मिले और उसके सदस्यों को किफायत से दी जा सकें। ये दोनों प्रकार की समितियां, बीच के दलालों को हटा देना चाहती हैं। इन समितियों के अन्तर्गत कई तरह की समितियां होती हैं— जैसे कृषि सहकारी समितियां, दूध सहकारी समितियां, गृह-निर्माण सहकारी समितियां, सिंचाई सहकारी समितियां, आदि। शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई, ग्राम-सुधार आदि चाहे जिस कार्य के लिए सहकारी समिति बनाई जा सकती है। यहाँ साख की सहकारी समितियों के बारे में कुछ विशेष बातें बताई जाती हैं। इनका जन-साधारण से घनिष्ट सम्बन्ध है।

साख की सहकारी समितियां—

भारतवर्ष में अधिकतर जनता किसानों की है, और किसान बहुत गरीब हैं। इन्हें खेती आदि के लिए रुपये की बड़ी ज़रूरत रहती है, और इनकी साख कम होने से इन्हें महाजन बहुत अधिक सूद पर उधार देते हैं। जब कुछ आदमियों की समिति बन जाती है तो उसकी साख पर रुपया कम ब्याज पर, और आसानी से मिल सकता है। भारतवर्ष में इन समितियों का कानून बना हुआ है। किसी गाँव (या शहर)

के एक ही जाति या पेशे के, अठारह साल से अधिक आयुवाले, कम-से-कम दस ऐसे आदमी मिलकर सहकारी साख समिति बना सकते हैं जो एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हों। समिति का कार्य अपने सदस्यों की अमानत जमा करना, दूसरे आदमियों और संस्थाओं से रुपया उधार लेकर अपने सदस्यों को आवश्यकतानुसार रुपया. उधार देना, है। हरेक सदस्य समिति का पूरा कर्ज़ चुकाने का जिम्मेवार होता है। समितियों की देखभाल करने तथा इनके काम को बढाने के लिए हरेक प्रान्त मे एक प्रधान अधिकारी रहता है, जिसे रजिष्ट्रार कहते है।

इन समितियों से सर्वसाधारण को बहुत लाभ होता है। लोगों को आपस मे मिलकर काम करने की आदत पड़ती है। उनमें प्रेम और एकता बढती है। सभासदों को मितव्ययिता या किफायतशारी का अभ्यास होता है। इससे उनकी आर्थिक दशा सुधरती है। इन समितियों के लिए जो बैंक खोले जाते हैं, उन्हे सहकारी बैंक कहते है। इन बैंकों के दो भेद है— प्रान्तीय और सेन्ट्रल। प्रान्तीय बैंक एक प्रान्त के सेन्ट्रल बैंक की सहायता तथा उनकी देख-भाल करता है। सेन्ट्रल बैंक एक जिले की, या उसके किसी हिस्से की, सहकारी समितियों की सहायता करते है। सहकारी बैंकों का प्रबन्ध प्रायः स्थानीय कर्मचारी ही करते हैं।

वहु-उद्देश्य सहकारी समितियां—

आजकल वहु-उद्देश्य सहकारी समितियों के पक्ष मे लोकमत वढ़ता जा रहा है। बहुत से विचारशील सज्जनों तथा भारतवर्ष के रिजर्व वैक का मत है कि ऐसी समिति अपने सदस्यों को खेती या अन्य धन्धे के लिए साख दे, उनकी पैदावार को अच्छे दामों से वेचे, उनके लिए वढ़िया बीज खरीदे, और

उन्हे उनकी ज़रूरत की हरेक वस्तु किफ़ायत से दिलाये; मुकद्मेबाज़ी का खर्च कम करने के लिए पंचायत की स्थापना करे, ज़मीन की चकबन्दी करके तथा अच्छे बीज और औज़ारों का प्रचार करके खेती की पैदावार बढ़ावे, खेतो के काम से बचने वाले समय मे दूसरे सहायक धन्धों के द्वारा उनकी आय को बढ़ाने की कोशिश करे, और उनके जीवन-सुधार के लिए सफ़ाई-स्वास्थ्य और औषधि-वितरण की व्यवस्था करे और सामाजिक कार्यों मे अधिक धन व्यय न होने देने का प्रबन्ध करे। मतलब यह है कि समिति गॉव की सभी मुख्य समस्याओ को हल करके गॉव वालों को सुखी और खुशहाल बनाने की कोशिश करे। हमे याद रखना चाहिए कि गॉव की सब समस्याओं का एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है, और सब एक साथ हल करने से गाँव की सर्वांगीण उन्नति हो सकती है।

इसलिए ज़रूरी है कि हरेक गॉव मे [या छोटे गॉव के एक समूह मे] एक बहु-उद्देश्य सहकारी समिति की स्थापना की जाय। यह समिति गॉव वालों की सभी ज़रूरतों को पूरा करे। इस समिति का प्रबन्ध गाँव के ही आदमियों के हाथ में रहे, बाहर वालों के हाथ मे नहीं। हरेक घर का बड़ा आदमी या औरत इसकी सदस्य हो। इस समिति के कई विभाग हों, हरेक विभाग को एक खास काम सौंपा जाय। उदाहरण के तौर पर एक विभाग सफ़ाई और स्वास्थ्य का काम देखे, दूसरा विभाग मनोरंजन का और तीसरा शिक्षा आदि का प्रबन्ध करे। हर महीने मे एक या दो बार पूरी समिति की मीटिंग हो, जिसमे सब विभागों के कार्य और नीति पर विचार किया जाय। गॉवों के आदमियों को चाहिए कि इस प्रकार की समिति के काम में उत्साहपूर्वक भाग लें और गॉव की उत्तरोत्तर उन्नति करे।

पाँचवाँ अध्याय

प्रान्त और देश में

पिछले अध्याय में यह बताया गया है कि नागरिकों का अपने गाँव वाले भाइयों के प्रति क्या कर्तव्य है, उन्हें पंचायतों और सहकारी समितियों में कैसा भाग लेना चाहिए। भारतवर्ष खास कर गाँवों का देश है, इस लिए यहाँ ग्राम-सुधार की आवश्यकता और उपयोगिता स्पष्ट है। हमें अपने गाँव को आदर्श गाँव बनाने के लिए भरसक उद्योग करना चाहिए। प्रायः देखने में आता है कि जो आदमी कुछ शिक्षित या पैसे वाले हो जाते हैं, उनका गाँव मे मन नहीं लगता, वे अपने तरह तरह के शौक पूरे करने के लिये शहरों में आजाते हैं। इससे गाँवों में बुद्धि और धन दोनों का दिवाला निकला रहता है। देश-प्रेमी नागरिकों को चाहिए कि अगर उन्हे कुछ खास कारणों से शहर में रहना पड़ता है तो भी गाँव से सम्बन्ध बनाये रखें, समय-समय पर वहाँ जायँ, कुछ समय वहाँ ठहरें, वहाँ के आदमियों से हिल-मिल कर रहें, और ग्राम-सुधार के कार्य में समुचित योग दें। एक जिले के गाँवों की सफाई, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि की देख-भाल के लिए जिला-बोर्ड होता है। नागरिकों को उसके कार्य में भी इसी तरह सहायक होना चाहिए।

नगर-सुधार—

भारतवर्ष की लगभग दस फ़ी सदी जनता कस्बों या नगरों में रहती है, और यह धीरे-धीरे बढ़ रही है। साधारण तौर से देखने वालों को, ख़ास कर गाँव वालों को, नगरों का बाहरी रूप बड़ा मनोहर मालूम होता है। लेकिन असल में यहाँ भी कई खराबियाँ है, जिनके सुधार की आवश्यकता है। बड़े बड़े बाज़ारों और सार्वजनिक सड़कों को छोड़कर, नगरों के भीतर सफ़ाई की काफी व्यवस्था नहीं है। बहुत से स्थानों मे गन्दे पानी के बहने के लिए नालियाँ नहीं हैं। कितनी ही जगह पीने के पानी के नलों की कमी है। खाने पीने की चीज़ों में मिलावट होना तो मामूली बात हो गई है। बाज़ार से आई चीज़ों की शुद्धता का प्रायः विश्वास नहीं रहा है। ये सब बातें हमारे नागरिक जीवन के दूषित होने का प्रमाण है। किसी-किसी शहर में शिक्षा के लिए कई-कई हाई स्कूल और कालिज हैं, परन्तु उनमें पढ़ने की उम्र-वाले सब लड़के लड़कियों के लिए जगह नहीं होती, और कितने ही विद्यार्थी अपनी गरीबी के कारण ऊंचे दर्जे की शिक्षा की बात तो दूर, माध्यमिक या हाई स्कूल की भी शिक्षा से वंचित रहते हैं। इसी तरह कुछ शहरों के बड़े-बड़े अस्पतालों की इमारतें देखकर यह समझना भूल है कि यहाँ चिकित्सा की यथेष्ट व्य-वस्था है। हमारे नगरों में मकानों की तंगी होने से लोगों को साफ़ ताज़ी हवा मिलना भीं बहुत कठिन रहता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और चिकित्सा के बारे में विस्तार से आगे लिखा जायगा। यहां सिर्फ यह वर्णन करना है कि नगरों में इन सब बातों के सुधार की ज़रूरत है। इस के लिए नागरिकों को चाहिए कि म्युनिसपैलटियों के चुनाव में दिलचस्पी लें और उनके, संगठन

को सुधार कर उन्हे अधिकाधिक उपयोगी बनावें। म्युनिसपैल-टियाँ नगर निवासियों के स्वास्थ्य, सफाई, प्रारम्भिक शिक्षा और सार्वजनिक सुविधाओं की व्यवस्था के लिए वैसी ही संस्थाएं हैं, जैसी गाँव वालों के लिए पंचायतें और ज़िला-बोर्ड हैं।

इस तरह हमें अपने गाँव, नगर और जिले की उन्नति का ध्यान रखना चाहिए, हमें उनका अभिमान करना चाहिए, अपने कार्यों और व्यवहारों से दूसरों के वास्ते आदर्श उपस्थित करते रहना चाहिए।

प्रान्त के प्रति कर्तव्य—

गाँव, नगर और जिले के बारे मे कह चुकने पर अब हम प्रान्त की बात लेते है। हरेक प्रान्त बहुत से ग्रामों तथा नगरों का समूह है। यदि हम गाँवों और नगरों के सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान दे तो प्रान्त की उन्नति में कोई सन्देह ही नहीं है। पर कुछ बाते और भी विचार करने की हैं। गाँवों और नगरों की संस्थाएँ पंचायते, जिला-बोर्ड, और म्युनिसपैलटियाँ—उतने ही अधिकारों का उपयोग करती हैं, और उतना ही रुपया खर्च करती हैं जितना प्रान्तीय सरकार स्वीकार करती है। उनके लिए कानून बनाने का काम प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाएं करती हैं। गाँवों और नगरों के लिए बहुत से काम ऐसे करने होते हैं, जिन में प्रान्तीय सरकार की सहायता की आवश्यकता होती है। हमें जानना चाहिए कि प्रान्त की सरकार तथा व्यवस्थापक सभा का संगठन किस प्रकार का है। इस विषय पर विस्तारपूर्वक आगे, इस पुस्तक के दूसरे भाग मे लिखा गया है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के सदस्यों के चुनाव के लिए, सिद्धान्त से हरेक बालिग़ व्यक्ति को मताधिकार होना चाहिए।

भारतवर्ष में अभी यह बात नहीं है, इसके लिए आन्दोलन हो रहा है; आशा है कुछ समय में वह हो जायगा। वर्तमान अवस्था में जिन जिन आदमियों को मताधिकार हैं, उन्हें उसका उपयोग खूब सोच समझ कर निष्पक्ष भाव से करना चाहिए। किसी के भय या प्रलोभन में आकर, अयोग्य उम्मेदवार के लिये मत देने से प्रान्त को बहुत हानि होती है; इस लिए नागरिकों को सदैव सतर्क रह कर अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

सम्भव है हम में से कुछ व्यक्तियों को कोई सरकारी नौकरी या पद लेकर प्रान्त की सेवा करने का अवसर आवे। ऐसी दशा में हमें अपना वह कर्तव्य बहुत अच्छी तरह पालन करना चाहिए। हम अपने काम को ईमानदारी और परिश्रम से करें, अपने स्वार्थ या आरामतलबी के कारण काम को खराब न होने दें। जब सरकारी कर्मचारी अपना काम अच्छी तरह नहीं करते तो जनता को बड़ी असुविधा हो जाती है। उन्हें तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर सन् १९४३ के बंगाल के अकाल में (इस के बारे में खुलासा आगे लिखा गया है) लाखों आदमी भूख से मर गये, और लाखों ही आदमी ख़राब या घटिया पदार्थ खाने के कारण पीछे विविध बीमारियों के शिकार हुए। इस की बहुत कुछ जिम्मेवारी उन सरकारी अधिकारियों पर ही है, जो अपने स्वार्थ के कारण मुनाफ़ेख़ोरी और रिश्वतख़ोरी तथा चोर-बाज़ारों का नियंत्रण न कर सके। इसलिए प्रत्येक नागरिक को जो सरकारी कर्मचारी हो, इस विषय में ध्यान रहना चाहिए—वह जनता का सेवक है, और उसे सेवा-भाव से अपना कार्य करना चाहिए। दूसरे आदमी भी प्रान्त की सेवा और उन्नति में अपनी २ परिस्थिति के

अनुसार भाग ले सकते हैं। उदाहरण के तौर पर सभी प्रान्तों में थोड़ी बहुत हिन्दू-मुस्लिम समस्या उपस्थित है। इसके बारे में विस्तार से आगे लिखा गया है। यदि नागरिक उदारता और विवेक से विचार तथा व्यवहार करें तो प्रान्त में इस के हल होने में बहुत सुविधा हो। हमें ऐसा लोकमत तैयार करना चाहिए कि पारस्परिक द्वेष-भाव बढ़ाने वाली बातों का प्रचार न हो, जनता में एकता, प्रेम और भाईचारे की वृद्धि हो, और हम सब मिल कर अपने प्रान्त की उन्नति में भाग लें।

प्रान्तीयता संकीर्ण नहीं होनी चाहिए--

हरेक नागरिक का कर्तव्य है कि अपने प्रान्त को उन्नत और समृद्धिशाली बनाने का भरसक प्रयत्न करे। लेकिन एक बात का ध्यान रखना जरूरी है। हमारा अपने प्रान्त से प्रेम संकुचित या संकीर्ण न होना चाहिए। खेद है कि बहुत से शिक्षित और विद्वान कहे और समझे जाने वाले भी संकीर्ण प्रान्तीयता के भावों में फंसे पाये जाते हैं। आजकल आमदरफ्त और याता-यात की सुविधाएं होने के कारण हरेक प्रान्त में विविध जातियों या धर्मों के आदमी रहते हैं। यही नहीं, बहुत से आदमी दूसरे प्रान्तों में भी आए हुए होते हैं। कोई नौकरी करता है, कोई व्यापार या दूसरा स्वतंत्र धंधा करता है। ऐसी दशा में, संकीर्ण भावों के होने से भारतवर्ष में कहीं बंगाली-बिहारी समस्या है, कहीं बंगाली-मारवाड़ी, कहीं महाराष्ट्री-हिन्दुस्तानी, और कहीं तामिल तेलगू, आदि। यह बहुत अनुचित और हानिकारक है। हमें उदार और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। जो आदमी अपने प्रान्त से भिन्न किसी दूसरे प्रान्त में रहते हों उन्हें चाहिए कि वे उस

प्रान्त की भाषा सीखें, वहाँ की संस्कृति और संस्थाओं का आदर करें और वहाँ के आदमियों से मिल-जुल कर रहें, तथा उस प्रान्त के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक हित के कार्यों में योग दें। उस प्रान्त के निवासियों का भी कर्तव्य है कि दूसरे प्रान्त से वहाँ आकर बसे हुए आदमियों से किसी तरह का द्वेष भाव न रखें। वह इस बात को याद रखें कि दूसरे प्रान्त वाले उसी भारतीय राष्ट्र के हैं, जो हम सब का है, और जिसके हित के लिए हम सबको प्रयत्न करना चाहिए।

अन्तर्प्रान्तीय सहयोग की आवश्यकता—

वर्तमान अवस्था में एक प्रान्त के आदमी दूसरे प्रान्त के आदमियों के गुणों का यथेष्ट आदर नहीं करते, वरन् दोष निकालते रहते हैं। यह ठीक नहीं। आवश्यकता है कि हम दूसरे प्रान्त वालों की भाषा, भावों और विचारों को समझने की कोशिश करें और ऐसे खान-पान और रहन-सहन का अभ्यास करें कि जब हम दूसरे प्रान्तों में जावें तो हमें कुछ असुविधा या अनोखापन न मालूम हो। इसके लिए, जिन लोगों को सुविधा हो, दूसरे प्रान्तों में समय-समय पर घूमने का आयोजन करना चाहिए। प्राचीन काल में आदमी पैदल तीर्थयात्रा करते थे तो उन्हें रास्ते के स्थानों में ठहरते हुए वहाँ के आदमियों का रहन-सहन, भाषा, संस्कृति आदि जानने का अच्छा अवसर मिलता था। अब तीर्थयात्रा प्रायः रेलों से होने लगी है, सैकड़ों मील की यात्रा कुछ घंटों में तय हो जाती है, और रास्ते की जगहों के आदमियों के बारे में कुछ अनुभव नहीं होता। यही कारण है कि खासकर उत्तर भारत वालों का दक्षिण भारत वालों से बहुत कम हेलमेल है। अच्छा हो, हरेक प्रान्त के

कुछ-कुछ आदमी दूसरे प्रान्तों का परिचय प्राप्त करने के लिए एक दल या मंडली बनाकर यात्रा किया करें। इन यात्रियों को राष्ट्रभाषा हिंदी बोलने का अभ्यास होना चाहिए। इनके द्वारा अन्तर्प्रान्तीय सहयोग बढ़ने मे बहुत मदद मिलेगी।

देश-प्रेम--

अपने देश के प्रति प्रेम और अनुराग की भावना हरेक नागरिक में होनी ही चाहिए। जिस भूमि मे हमारे पूर्वज पैदा हुए, और तरह तरह के काम कर गये, जिसमें हमारा जन्म हुआ, जहाॅ के अन्न पानी से हमारा निर्वाह होता है, जो हमारी सन्तान की जन्म-भूमि और कर्म-भूमि होंगी, उसके प्रति आदर-सम्मान और भक्ति-भाव न रखना मनुष्यता से गिर जाना है। उसकी उन्नति के लिए हमे तन मन से लगे रहना चाहिए।

देशोन्नति--

स्वदेशोन्नति कई प्रकार से हो सकती है, अथवा यों भी कह सकते है कि इसके कई अंग हैं, जैसे शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय करना, उद्योग-धन्धों की उन्नति, साहित्य-वृद्धि, समाज-सुधार, वैज्ञानिक आविष्कार, राजनैतिक जागृति आदि। हरेक नागरिक को चाहिए कि जिस विषय मे उसकी रुचि और योग्यता हो, उसमें योग दे, तथा दूसरे उपयोगी विषयों से सहानुभूति रखे। देश काल की परिस्थिति के अनुसार इन विषयों का महत्व एक दूसरे से कुछ कम ज्यादा हो सकता है। पराधीन देशों मे तो नागरिकों का प्रमुख कर्त्तव्य अपने देश को स्वाधीन करने के लिए जुट जाना है, क्योंकि पराधीनता की दशा मे सभी विषयों की उन्नति रुकी रहती है, और जनता को अपनी शक्तियों के विकास का यथेष्ट अवसर नहीं मिलता।

स्वाधीनता—

हमे अपने सामने अब स्वाधीन भारत का चित्र रखना है। स्वाधीन भारत का आशय क्या है ? जैसा कि पंडित जवाहर लाल जी नेहरू ने कहा है, वह एक ऐसे देश का चित्र है, जिसमें समस्त जनता को अपना विकास करने का समान रूप से अवसर मिलेगा, जिसमें उनकी प्रगति के विरुद्ध कृत्रिम वाधाएँ उपस्थित न की जायँगी। जिसमे साम्प्रदायिक भेद भाव का नामोनिशान तक न होगा, जिसमें न तो हिन्दू राज कायम होगा और न मुस्लिम राज ; जिसमे प्रत्येक सम्प्रदाय, सभ्यता, संस्कृति, और भाषा को संरक्षण प्राप्त होगा, और जिसमें हरेक को जीविका, भोजन, मकान, शिक्षा, और डाक्टरी सहायता प्राप्त होगी। भारतवर्ष को ऐसा देश बनाने में सब भारतीय नागरिकों को लगन और ईमानदारी से सहयोग देना चाहिए। इसी तरह अन्य पराधीन देशों की जनता को अपने-अपने देश की स्वाधीनता के लिए उद्योग करना चाहिये।

राज्य के नियमों का पालन—

पहले कहा जा चुका है कि नागरिकों को अपने राज्य के नियमों का पालन करना चाहिए, और उसके निर्धारित टेक्स देने चाहिएँ; केवल इसलिए नहीं कि ऐसा न करने से उन्हें दंड मिलेगा, बल्कि इस वास्ते कि ऐसा करना उनका कर्त्तव्य ही है। हाँ, साथ में यह भी आवश्यक है कि राज्य में नागरिकों के मत के विरुद्ध न तो कोई नियम या कानून बनना चाहिए और न किसी प्रकार का कोई टेक्स ही लगना चाहिए। जिस विषय में नागरिकों में मत-भेद हो, उसमें लोकतंत्र के आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार बहुमत से काम

होना चाहिए। जिन नागरिकों के मत के विरुद्ध निर्णय होता है, उन्हें भी उन नियमों का पालन करना आवश्यक है। हाँ, इसमें यह शर्त जरुर है कि कोई नियम उनके विवेक, अन्तःकरण या आत्मा के विरुद्ध न हो। और नागरिकों को यह अधिकार तो रहता ही है कि वे किसी अहितकर नियम या कानून का संशोधन या सुधार करने का उद्योग करें

शासन-पद्धति का ज्ञान—

राज्य के नियमों का पालन तभी हो सकता है, जब नागरिकों को उन नियमों का अच्छी तरह ज्ञान हो। नागरिकों को चाहिए कि अपने राज्य की शासन-पद्धति आदि को भलीभाँति जानें, और समय-समय पर यह भी सोचते रहे कि इसमें क्या सुधार या संशोधन होना चाहिए; दूसरे राज्यों मे किस स्थितिमें कैसी शासन-पद्धति प्रचलित की गई थी, पीछे उससे क्या हानि या लाभ हुआ, यदि हमारे देश में अमुक नियम प्रचलित किया जायगा तो उसका कैसा प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। इस प्रकार राजनैतिक विषयों के अध्ययन और मनन की बहुत आवश्यकता है। पराधीन देशों के आदमियों को तो इस ओर खास तौर से ध्यान देना चाहिए। भारतवर्ष की शासन-पद्धति इसी पुस्तक के दूसरे भाग में बताई गई है।

छठा अध्याय

विश्व-नागरिकता की ओर

नागरिकता सदैव किसी राज्य की होती है। राज्य बहुत छोटा, मामूली नगर सरीखा, भी हो सकता है, और बहुत बड़ा भी हो सकता है, उसका क्षेत्रफल लाखों वर्ग मील हो सकता है, और अब तो यह भी विचार हो रहा है कि सारे संसार भर में एक राज्य हो। यह बात अभी दूर की मालूम होती है। पर इसमें सन्देह नहीं कि राज्य का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है और कोई आश्चर्य नहीं कि किसी समय वह बढ़ते-बढ़ते सकल संसार तक बढ़ जाय।

नागरिकता का क्षेत्र; नगर-राज्य—

ज्यों-ज्यों राज्य का क्षेत्र बढ़ता है, त्यों-त्यों नागरिकता का भी क्षेत्र बढ़ता जाता है। अब हम इस बात का विचार करते हैं कि राज्य का क्षेत्र प्राचीन काल में कितना होता था, और वह किस प्रकार क्रमशः बढ़ा है। इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में राज्य बहुत छोटे-छोटे होते थे। यूनान के राजनीतिज्ञ अरस्तू (एरिस्टोटल) का विचार था कि राज्य का क्षेत्र इतना होना चाहिए कि अगर कोई आदमी बीच चौक में खड़ा होकर जोर से बोले तो उस राज्य के सब आदमी उसकी आवाज़ सुन सकें।

इससे स्पष्ट है कि उसके समय मे, आज कल के नगरों से भी छोटे क्षेत्रफल में एक राज्य माना जाता था। प्राचीन भारत में भी बहुधा एक-एक नगर, या कुछ गाँवों के समूह का एक राज्य होता था। बात यह है कि प्राचीन काल मे आदमी का जीवन या रहन-सहन सादा था, जहाँ वह रहता था, वहाँ से पाँच दस मील इधर-उधर तक में उसकी ज़रूरतें पूरी हो जाती थीं, और बहुत ज्यादह दूर जाने के लिए उसके पास न साधन थे, न सुविधा। और, आदमी अपनी ज़रूरत और सुविधा के अनुसार ही अपनी संस्थाएँ बनाता है। इस लिए उस समय छोटे-छोटे नगर-राज्यों से ही काम चल जाता था।

देश-राज्य—

धीरे-धीरे मनुष्यों की जरूरते बढ़ीं और उन्हे पूरा करने के लिए दूर दूर तक आने जाने के साधनों की खोज और उन्नति हुई। इस तरह दूर-दूर तक आदमियों मे आपसी व्यवहार और मेल-जोल बढ़ा। ज्यों ज्यों यात्रा, आमदरफ्त या यातायात के साधनों की उन्नति और वृद्धि होती गई, दूर-दूर के आदमियों का सगठन करना सुगम होता गया। नगर-राज्यों का अन्त हुआ। कई-कई नगर-राज्यों का मिलकर एक संघ बना। राज्य का क्षेत्रफल धीरे-धीरे हजारों वर्गमील हुआ और पीछे बढ़ते-बढ़ते कितने ही राज्य लाखों वर्गमील में फैल गये। विज्ञान की उन्नति ने हज़ारों मील की कठिन और करीब-करीब असम्भव यात्रा को भी आसान बना दिया। अब बड़े-बड़े राज्यों का संगठन और सुप्रबन्ध होने का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस प्रकार यद्यपि कहीं-कहीं कुछ छोटे-छोटे राज्य भी बने हुए है, तथापि वे अधिकांश में

कुछ विशेष कारणों से ही परिमित क्षेत्र में हैं। नहीं तो आत्म-रक्षा और आर्थिक व्यवहार के विचार से राज्यों की प्रवृत्ति अपना क्षेत्रफल बढ़ाने की ओर ही है।

संघ-राज्य—

कभी-कभी कुछ निकटवर्ती राज्यों को इस बात पर विचार करना होता है कि वे आपस में मिलकर रहे, लड़ाई झगड़ा न करें, और अगर कोई बाहरी राज्य उन पर धावा करे तो वे अपनी संचित शक्ति से उसका मुकाबला करे। इसी तरह उन्हे एक दूसरे का माल लेने और देने की जरूरत होती है और वे अपना आर्थिक सम्बन्ध दृढ़ और स्थायी करना चाहते है। इन कारणों से जैसे प्राचीन काल मे नगर-राज्यों के संघ बने, वैसे ही पीछे जाकर बड़े राज्यों के भी संघ बने है। उदाहरण के तौर पर संयुक्त-राज्य अमरीका के संघ-राज्य मे अब ४८ राज्य शामिल है। इसी तरह रूस भी कई राज्यों का एक संघ-राज्य है।

जब कोई राज्य सघ-राज्य में सम्मिलित हो जाता है तो वहाँ के निवासी अपने राज्य के नागरिक होने के साथ संघ के भी नागरिक होते हैं, उन्हे दोनों के नियम पालन करने होते हैं। उनकी नागरिकता का क्षेत्र संघ-राज्य तक हो जाता है।

साम्राज्य—

बहुत समय से कुछ राजा अपने-अपने राज्य से संतुष्ट न होकर दूसरे देशों पर अधिकार जमाते रहे हैं। पहले राजा प्रायः अपनी धौंस जमाने के वास्ते, अपने प्रभुत्व का विस्तार करने के लिए या अपने नागरिकों को दूसरे देश वालों से

सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक दृष्टि से मिलाने के लिए, दूसरे देशों को जीतते और अपना साम्राज्य स्थापित करते थे। पिछली सदी में मशीनों और कल-कारखानों से माल बहुत अधिक और तरह-तरह का तैयार होने लगा, किंतु वह अपने देश में न खप सका। कल-कारखाने वाले औद्योगिक राज्यों ने अपना तैयार माल खपाने के लिए कमजोर देशों पर अधिकार जमा कर अपना साम्राज्य बढ़ाया। इससे बड़े युद्ध हुए, और साम्राज्यवादी राज्यों में आपस मे ही खूब संघर्ष हुआ। इस संघर्ष के बारे में विस्तार से आगे लिखा जायगा। यहाँ कहना यही है कि इस समय संसार में कई साम्राज्य हैं।

नागरिकता के अधिकारों की दृष्टि से साम्राज्य भर की जनता बराबर नहीं होती। हर एक साम्राज्य के अन्तर्गत कुछ देश स्वाधीन, कुछ अर्द्ध-स्वाधीन और कुछ पराधीन होते हैं। साम्राज्य के स्वाधीन भागों के नागरिकों के जो अधिकार होते हैं, उनसे कम उसके अर्द्ध-स्वाधीन भागों के नागरिकों के, और उनसे भी कम पराधीन भागों के नागरिकों के होते है। यहाँ तक कि किसी-किसी पराधीन देश वालों के नागरिक अधिकार नहीं के बराबर कहे जा सकते है। इस प्रकार साम्राज्य की नागरिकता का अर्थ आदमियों के लिए अपने-अपने देश की स्वाधीनता या पराधीनता के परिमाण के अनुसार जुदा-जुदा होता है। 'साम्राज्यों' के इस भेद-भाव और अनुदारता के कारण अब 'साम्राज्य' शब्द अप्रिय या घृणास्पद हो गया है। प्रायः साम्राज्यवादी राजनीतिज्ञ अपने साम्राज्य के लिए साम्राज्य ['एम्पायर' शब्द का प्रयोग न कर जनपद, राष्ट्र-समूह या राष्ट्र-मंडल [कामनवेल्थ ऑफ-नेशन्स] शब्द का प्रयोग करने

लगे हैं, परन्तु केवल नाम-परिवर्तन से काम नहीं चल सकता, आवश्यकता है व्यवहार, नीति, और आदर्श में यथेष्ट उदारता और समानता के उपयोग की।

विश्व-राज्य—

मनुष्य जाति प्रगति कर रही है। राज्य का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। नगर-राज्य हुए, उनके संघ बने, देश-राज्य हुए, उनके संघ बने; कई संघ-राज्य इस समय मौजूद हैं। कितने ही साम्राज्य भी बने हुए हैं। इस प्रकार ऐसे राज्य बनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, जिनमे ज्यादह ज्यादह भूमि हो, और अधिक से अधिक जनता का राजनैतिक और आर्थिक संगठन हो। विचार-शील सज्जन चाहते हैं कि सारी मानव-जाति का एक राज्य हो, जिसका हरेक भाग अपने अपने कार्य का संचालन करने में स्वतंत्र हो,और सब एक-दूसरे की यथाशक्ति सहायता करते रहे। यह राज्य विश्व-राज्य हो। मनुष्य जाति की राजनैतिक प्रगति का लक्ष्य विश्व-संघ बनाना है। इस विषय पर हमारी पुस्तक 'विश्व-संघ की ओर' मे विस्तारपूर्वक विचार किया गया है।

विश्व–नागरिकता–

विश्व-राज्य की स्थापना और उसका अच्छी तरह संचालन तभी सम्भव होगा जब नागरिकों में एक दूसरे के प्रति यथेष्ट प्रेम और सद्भावना होगी; जाति, धर्म, रंग या देश की कृत्रिम दीवारें टूट जायँगी, सब आदमी एक मनुष्य जाति के अंग होने के आधार पर एक दूसरे को भाई-भाई समझें, एक का सुख दूसरे का सुख हो, और एक के कष्ट या असुविधा से दूसरों को भी दुख का अनुभव हो, और वे उसे दूर करने के लिए जी-जान से प्रयत्न करें। मनुष्य ने शिक्षा, साहित्य,

विज्ञान, कृषि, उद्योग आदि विविध क्षेत्रों में जो उन्नति की है, वह किसी देश विशेष या किसी खास राज्य-समूह में सीमित न रहे, सब उससे लाभ उठा सके। संसार भर के सब आदमी मानों एक संयुक्त परिवार के सदस्य हों। ऐसा होगा हमारा विश्वराज्य, और ऐसे होंगे हमारे विश्व-नागरिक।

क्या यह कल्पना व्यावहारिक नहीं है? क्या यह आदर्श बहुत ऊंचा है? यह ठीक है कि वर्तमान दशा मे कितने ही मनुष्यों को अपने-अपने राज्य के हित का ध्यान रखना भी कुछ ऊंचा ही आदर्श मालूम होता है, वे राज्य सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करते हुए अपने नगर, अपने प्रान्त, अपनी जाति या सम्प्रदाय आदि के हित को प्रधानता दे देते है। पर हमे मनुष्य जाति के भविष्य के विषय मे बहुत आशा है। धीरे धीरे आदमियों मे उदारता बढ़ेगी और जो 'विश्व-राज्य' आज कल्पना मे है, वह कार्य-रूप मे परिणत होगा। सब के सुख मे हमारा सुख, और सब के हित मे हमारा हित होगा। हम विश्व-नागरिकता के अधिकारी बनेंगे। हरेक नागरिक को इस दिशा मे आगे बढ़ते रहने का सच्चे दिल से प्रयत्न करना चाहिए।

सातवाँ अध्याय

विषय-प्रवेश

शासन सम्बन्धी ज्ञान की आवश्यकता—

हरेक देश में मनुष्य तरह तरह के काम करते हैं। कोई खेती करता है। कोई कला-कौशल या दस्तकारी का काम करता है। कोई पढ़ाने का काम करता है और कोई व्यापार आदि करता है। इन सब आदमियों को अपने-अपने विषय के ज्ञान की आवश्यकता होती है, दूसरे के काम की विशेष जानकारी की जरूरत नहीं होती। लेकिन एक विषय ऐसा है जिस के सम्बन्ध में सभी को ज्ञान होना चाहिए, वह विषय है, अपने देश की शासन-पद्धति। बात यह है कि कोई मनुष्य चाहे वह किसान हो या कारीगर, अध्यापक हो या व्यापारी, उसे राज्य के नियमों और कानूनों से अवश्य काम पड़ता है। यदि वह किसी कानून की अवहेलना करता है तो उसे उसका दण्ड भोगना होता है। वह यह कह कर अपनी जिम्मेवारी से मुक्त नहीं हो सकता कि मुझे वह मालूम न था। हरेक नागरिक से यह आशा की जाती है कि उसे राज्य के नियमों का ज्ञान हो। इसलिए सबको ये नियम जानने चाहिएँ। फिर परिस्थिति बदलने पर राज्यके नियमों में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। यदि नागरिक

यह जानते है कि उनके राज्य की शासन-पद्धति कैसी है, नियम कौन बनाता है, और उन्हे किस प्रकार बनाया जाता या बदला जा सकता है तो वे व्यवस्थापक सभा के सदस्य बन कर या दूसरे योग्य व्यक्तियों को सदस्य बनाकर राज्य के नियमों के निर्माण या संशोधन मे अच्छी तरह भाग ले सकते हैं। यहाँ तक कि शासन-पद्धति मे ही आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं। इस से स्पष्ट है कि नागरिकों को शासन सम्बन्धी ज्ञान की बहुत आवश्यकता है।

सरकार और शासन पद्धति—

हरेक सभ्य या उन्नत देश मे एक ऐसी संस्था होती है, जो वहाँ के आदमियों के आपसी व्यवहार के लिए आवश्यक नियम बनाती है, और लोगों से उन नियमों का पालन कराती है, देश के भीतर शान्ति रखती है, और विदेशियों के आक्रमण से जनता की रक्षा करती है। यह संस्था सरकार (गवर्नमेंट) कहलाती है। सरकार कुछ दूसरे ऐसे कार्य भी करती है, जिन्हें आदमियों को अलग-अलग करने की सुविधा नहीं होती। सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों के बारे मे विशेष विचार आगे किया जायगा। इन कार्यों को करने के लिए तीन तरह के अधिकारियों की जरूरत होती है—(१) कानून बनाने वाले, (२) कानून पर अच्छी तरह अमल कराने-वाले या शासक, और (३) लोगों के कानूनी अधिकारों की रक्षा करने वाले, कानून भंग करने वालों को दंड देने या सुधारने वाले अर्थात् न्यायाधीश। कहीं-कहीं तो ये तीन प्रकार के अधिकारी एक-दूसरे से जुदा जुदा होते है, और कहीं एक ही प्रकार के अधिकारी दो या तीनों प्रकार के अधि-

कारियों का काम करते हैं। अस्तु, इन अधिकारियों के संगठन और कार्य-पद्धति के नियम-संग्रह को शासन-पद्धति कहते हैं।

सरकार का कार्य (१) कानून बनाना—

किसी राज्य में तो केन्द्रीय सरकार ही सब प्रबन्ध करती है, और किसी में ऐसा होता है कि केन्द्रीय सरकार तो सारे राज्य सम्बंधी प्रबन्ध करती है, और उसके अधीन कई प्रान्तीय सरकारें होती है, जो अपने २ प्रान्त सम्बन्धी कार्य करती है। इस दशा में केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा (या मंडल) ऐसे विषयों का कानून बनाती है, जिनका सम्बन्ध सारे राज्य से या कई प्रान्तों से हो, और हरेक प्रान्त की व्यवस्थापक सभा (या मंडल) अपने प्रान्त से सम्बन्ध रखने वाले कानून बनाती है। अगर कानून बनाने वाली सभा एक ही होती है तो उसे व्यवस्थापक सभा कहते है, और अगर सभाएँ दो हों, तो उन्हे संयुक्त रूप में व्यवस्थापक मंडल कहा जाता है। दो सभाओं मे से जिसमें जन-साधारण या आम जनता के आदमी होते है, उसे छोटी सभा या निचली सभा (लोअर हाउस) कहते हैं। दूसरी सभा को, जिसमे धनी-मानी या प्रतिष्ठित सदस्य होते है उसे बड़ी सभा या ऊपरली सभा (अपर हाउस) कहते हैं। वैसे सदस्यों की संख्या निचली सभा मे अधिक होती है, और इस सभा के अधिकार भी ऊपरली सभा की अपेक्षा अधिक होते हैं।

(२) शासन—

व्यवस्थापक सभा या मंडल केवल कानून बनाने का काम करता है। उस कानून को अमल में लाने, और शान्ति, सुव्यवस्था रखने का कार्य शासक या प्रबन्धक करते हैं। सबसे बड़ा शासक कहीं-कहीं तो व्यवस्थापक मंडल द्वारा या मतदा-

ताओं द्वारा चुना जाता है, और कहीं वह पुश्तैनी होता है अर्थात् पिता के बाद उसका बड़ा पुत्र अधिकारी हो जाता है। पहली दशा में सर्वोच्च शासक को प्रेज़ीडेन्ट या राष्ट्रपति कहते हैं, और दूसरी हालत में वह राजा या बादशाह कहलाता है। उसकी सहायता के लिए, तथा उसे सलाह-मशविरा देने के लिए प्रबन्धकारिणी सभा या मंत्रिमण्डल होता है। यह सभा राज्य के विविध कर्मचारियों को नियुक्त करती है। इसके ही अधीन सेना या पुलिस रहती है। यही सभा राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों के वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा या 'बजट' बना कर उसे व्यवस्थापक सभा में उपस्थित करती है, और उसकी स्वीकृति के अनुसार जनता से विविध कर या टैक्सों द्वारा आय प्राप्त करती है, और उस आय को आवश्यक कार्यों में खर्च करती है। प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों की संख्या और उन सदस्यों के सुपुर्द विभाग सुविधानुसार बदलते रहते हैं।

जो राज्य कुछ प्रन्तों मे बँटा होता है, वहाँ जिले के शासक प्रन्तीय सरकार के अधीन, और प्रान्तीय शासकं केन्द्रीय सरकार के अधीन होते हैं। जिस राज्य का प्रान्तों में बंटवारा नहीं होता, वहाँ जिले के अधिकारी सीधे केन्द्रीय सरकार के ही अधीन होते हैं।

(३) न्याय—

कानून बनाने की बात ऊपर कही जा चुकी है। कानून जैसे नागरिकों के लिए होता है वैसे ही शासकों या सरकारी कर्मचारियों के लिए भी होता है। अपनी रक्षा और सामूहिक उन्नति के लिए नागरिक अपने कुछ अधिकार शासकों को दे देते हैं, तो भी उन्हे बहुत से अधिकार रहते हैं। अगर किसी

समय नागरिकों और शासकों में किसी विषय पर मतभेद हो तो उसका निपटारा कराने का काम जज, मुन्सिफ़ या न्यायाधीशों का होता है। न्यायाधीश यह भी निर्णय करते हैं कि अगर दो या अधिक नागरिकों का आपस मे कोई झगड़ा है तो कानून की दृष्टि से किस नागरिक का पक्ष उचित है, और किसका अनुचित। इस निर्णय को 'न्याय' कहते हैं।

न्याय का उद्देश्य तभी सफल हो सकता है, जब वह सस्ता और निष्पक्ष हो तथा ग़रीब आदमी को भी अपने मुकदमे की पैरवी करने की पूरी सुविधाएँ हों। मुकदमे सम्बन्धी कोई ख़र्च ऐसा न होना चाहिए, जिसे ग़रीब आदमी सहन न कर सके। इसके अलावा न्यायाधीश को इस बात का विचार नहीं करना चाहिए कि मुकदमा लड़ने वालों में से कौन किस जाति या रंग का है अथवा कौन राज-कर्मचारी, या बहुत प्रतिष्ठावाला है, और कौन मामूली हैसियत का।

ख़ासकर फ़ौजदारी मामलों में यह सम्भावना रहती है कि एक न्यायाधीश अभियोग या मुकदमे की सब बातों को अच्छी तरह न समझ सके। इसलिए उन्नत राज्यों में अभियुक्त की जाति या उसके स्थान के कुछ योग्य सज्जनों की 'ज्यूरी' यह विचार करती है कि अभियोग सम्बन्धी असली घटनाएँ क्या हैं। ज्यूरी के विचार के आधार पर जज उस विषय का कानूनी निर्णय सुनाता है।

सरकार के तीन अंग, और उनका पारस्परिक सम्बन्ध—

इस तरह सरकार के तीन कार्य होते हैं—कानून-निर्माण, शासन और न्याय। इन कार्यों को करने वाले उसके विभाग

क्रमशः व्यवस्थापक मंडल, शासक, और न्याय-विभाग होते है। ये सरकार के तीन अङ्ग है। इनअङ्गों का अपना २ कार्य है। फिर भी इनका आपसमे बहुत सम्बन्ध है। कोई त्रिभाग पूरे तौर से जुदा नहीं है। व्यवस्थापक मण्डल कानून बनाता है तो उन कानूनों पर अमल शासक-मण्डल करवाता है, और उन कानूनों को भङ्ग करने वालों को दण्ड देने का निर्णय न्याय-विभाग करता है। कानून वनने का महत्व तभी है, जब जनता उसका पालन करे। और बहुत से मामूली आदमी कानून का पालन तभी करते है, जब उन्हे यह अच्छी तरह निश्चय हो कि ऐसा न करने पर उन्हें दंड दिया जायगा। दण्ड देने का निर्णय न्याय-विभाग करता है; पर दण्ड दिया जाता है जेल विभाग के अधिकारियो द्वारा, जो कि शासक-मण्डल के अधीन होते हैं। यदि शासक-मण्डल दंड दिलाने की ठीक व्यवस्था न करे तो न्याय-विभाग के कार्य का कुछ महत्व नही रहता। इसी तरह यदि न्याय-विभाग काम न करे तो व्यवस्थापक मण्डल के कानूनों का ठीक अर्थ लगाना, नागरिकों और नागरिको के तथा नागरिकों और शासकों के झगड़े या मतभेद का निर्णय या निपटारा होना कठिन है। इससे स्पष्ट है कि न्याय-विभाग के कार्य व्यवस्थापक मण्डल के लिए बहुत सहायक है।

सरकार के तीनों अङ्गों का अपना-अपना महत्व है। जब हरेक अंग अपना-अपना कार्य अच्छी तरह पूरा करता है, तभी राज्य की या सब नागरिकों की उन्नति होती है।

भारतवर्ष के राजनैतिक भाग—

राजप्रवन्ध की दृष्टि से भारतवर्ष के छः भाग है—

(१) स्वाधीन राज्य। नेपाल पहले से ही स्वाधीन

राज्य है। यह इस देश के उत्तर मे है। इसका क्षेत्रफल चव्वन हजार वर्गमील, और आबादी लगभग साठ लाख है।

(२) फ्रॉसीसी और पुर्तगीज राज्य। फ्रॉस के अधीन पॉच नगर है—यनाम, माही, कारीकल, पांडेचरी और चन्द्र-नगर। इन सब का क्षेत्रफल २०३ वर्गमील और जनसंख्या पौने तीन लाख के लगभग है। पुर्तगाल के अधीन तीन स्थान है—गोआ, डामन, ड्यू। इन तीनों का क्षेत्रफल चौदह सौ वर्गमील और जनसंख्या लगभग छः लाख है। इन स्थानो को क्रमशः फ्रॉसीसी और पुर्तगीज अधीनता से मुक्त करने का विचार हो रहा है।

(३) बर्मा। यहाँ की जनसंख्या डेढ करोड़ और क्षेत्रफल ३३ हजार वर्गमील है। सन् १९३५ के विधान से यह ब्रिटिश भारत से अलग किया गया योरुपीय महायुद्ध (१९३९-४५) के बीच मे इसे सन १९४२ मे जापान ने ले लिया था, और इसकी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी गई थी। सन १९४५ मे अंगरेज सरकार ने इसे वापिस लिया। यहाँ की जनता सन् १९४८ में स्वतंत्र हो चुकी है और अपनी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करने का प्रयत्न कर रही है।

(४) लंका या सीलोन। इसका क्षेत्रफल पच्चीस हजार वर्गमील, और जन-संख्या साठ लाख है। यह देश भी स्वतंत्र हो गया है। अब अंगरेजों की सत्ता भारत के समान यहॉ भी नहीं रही।

(५) देशी राज्य। छोटे-बड़े सब देशी राज्य पॉच सौ से अधिक है। इनका आन्तरिक शासन बहुत-कुछ यहाँ के ही राजा या सरदार आदि करते रहे हैं, पर वे बाहरी मामलों में पूरे तौर पर

ब्रिटिश सरकार के अधीन थे। इनका कुल क्षेत्रफल सात लाख वर्ग-मील से अधिक, और जनसंख्या नौ करोड़ से ऊपर है। भारत को स्वतंत्रता मिलने के साथ सब देशी राज्यों को प्रायः भारत-प्रबन्ध के अन्तर्गत कर लिया गया है और प्रान्तों के अनुसार देशी राज्यों की छोटी छोटी यूनियन बना दी गई हैं।

(६) ब्रिटिश भारत। यह पहले अङ्गरेजों के अधीन था। इङ्गलैंड का बादशाह यहाँ का सम्राट् कहलाता था। उसकी तरफ से यहाँ गवर्नर-जनरल या वायसराय काम करता था। इस में तब सतरह प्रान्त थे, ग्यारह गवर्नरों के और छः चीफ कमिश्नरों के। कुल मिलाकर इनका क्षेत्रफल लगभग ग्यारह लाख वर्गमील और जनसंख्या करीब तीस करोड़ है। इसकी शासन-पद्धति का खुलासा वर्णन आगे के अध्यायों मे किया जायगा। यहाँ इस के शासन सम्बन्धी इतिहास की कुछ मुख्य मुख्य बातें बताई जाती है।

अंगरेजों के समय की भारतीय शासन-नीति—

मोटे हिसाब से भारतीय इतिहास में अंगरेजों का समय पाँच भागों मे बाँटा जा सकता है—

१—सन् १६०० से १७५७ ई० तक, लगभग डेढ़ सौ वर्ष। इस समय मे अंगरेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारतवर्ष में अपने व्यापार को बढ़ाया।

२—सन् १७५७-१८५८ ई० तक, सौ वर्ष। इस समय में कम्पनी के राज्य का विस्तार हुआ। सन् १८५७ में भारतीय स्वाधीनता-युद्ध हुआ, जिसके बारे में विस्तार से आगे लिखा जायगा। सन् १८५८ ई० तक भारतवासियों का शासन-व्यवस्था में कोई हाथ न रहा। इस वर्ष में कम्पनी के शासन का अंत हुआ,

और ब्रिटिश पार्लियामैंट ने भारतीय शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में लिया।

३—सन् १८५८ से १९१७ ई० तक लगभग साठ वर्ष। इस समय में शिक्षा का कुछ प्रचार हुआ। सन् १८८४ से स्थानीय स्वराज्य का कार्य क्रमशः बढ़ाया गया। शासन-प्रबन्ध में कुछ सुधार हुए। प्रान्तों में व्यवस्थापक सभाओं का संगठन हुआ।

४—सन् १९१७ से १९३५ तक। सन् १९१७ में उत्तरदायी शासन-नीति की घोषणा हुई। इस नीति के अनुसार सुधार-कानून सन् १९१९ में बना। उत्तरदायी शासन केन्द्र में, अर्थात् अखिल भारतवर्षीय विषयों में आरम्भ नहीं किया गया। भारत-सरकार ब्रिटिश पार्लियामैंट के प्रति ही उत्तरदायी रही। हाँ, भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई, और उस में एक की जगह दो सभाएँ की गई—भारतीय व्यवस्थापक सभा और राज-परिषद्। उत्तरदायी शासन केवल नौ प्रान्तों में और वह भी कुछ अंश में, आरम्भ किया गया। इन प्रान्तों में कुछ विषय, जिन्हें हस्तान्तरित (ट्रांसफर्ड) कहा गया, मन्त्रियों को दिये गये और मंत्री प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के प्रति उत्तरदायी बनाये गये। शेष अर्थात् रक्षित (रिज़र्वड) विषय प्रबन्ध-कारिणी के सदस्यों के सुपुर्द रहे, जो भारत-सरकार और ब्रिटिश पार्लियामैंट के प्रति उत्तरदायी बने रहे। प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों के सदस्यों की संख्या एवं उनके निर्वाचकों की संख्या बढ़ी।

(१) सन् १९३५ से अब तक—

सन् १९३५ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने नये शासन-विधान की रचना की। इसमें केन्द्रीय शासनके लिये संघ-शासन की योजना की गई थी, जिस में ब्रिटिश भारत के प्रान्तों और देशी राज्यों

का इकट्ठा मिला हुआ शासन हो। सिद्धान्त से संघ-शासन भारतवर्ष के लिये बहुत उपयोगी है, पर पार्लियामेंट ने जो योजना बनाई वह भारतीय राजनैतिक दलों को पसन्द न आई और अन्त में वह स्थगित ही रही। इस प्रकार केन्द्रीय शासन अब तक सन १६१६ के विधान के अनुसार ही हो रहा है—और सन १६४५ में भारतीय व्यवस्थापक सभा का चुनाव भी उसी के अनुसार हुआ है।

सन १६३५ के विधान का प्रान्तीय सम्बन्धी भाग ही अमल में आया। इस विधान का उद्देश्य भी प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना बताया गया था। इस विधान के अनुसार पहले बम्बई, मद्रास, संयुक्त-प्रान्त, बिहार, उड़ीसा और मध्यप्रान्त में, और पीछे पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त और आसाम में भी कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। इस तरह गवर्नरों के ग्यारह प्रान्तों में से आठ में कांग्रेस-शासन स्थापित हुआ। दूसरे प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। इस विधान के अनुसार होने वाली शासन-पद्धति आगे विस्तार से बताई जायगी।

सन १६३६ में दूसरा योरूपीय महायुद्ध छिड़ा और इंगलैंड ने भारतवर्ष की प्रान्तीय सरकारों का मत लिए बिना ही भारतवर्ष को युद्ध में भाग लेने वाला घोषित कर दिया। जब कांग्रेसी सरकारों ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य पूछा और संतोषजनक उत्तर न पाया तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। इन प्रान्तों में शासन-विधान स्थगित करके गवर्नर अपनी इच्छा-नुसार प्रबन्ध करने लगे। कहीं कहीं साम्प्रदायिक और अराष्ट्रीय मंत्रिमंडल बनाये गये, पर वे कुछ स्थायी न हुए, गतिरोध बना रहा।

सन् १६४२ में ब्रिटिश युद्ध-मंत्रि-मंडल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के शासन की एक योजना लेकर यहाँ

आये। इसे क्रिप्स-योजना कहते हैं। इसकी मुख्य बातें युद्ध के बाद अमल में आने वाली थीं। इस योजना को भारतवर्ष की विविध संस्थाओं ने अस्वीकार किया। यह अमल में नहीं आई।

सन् १९४५ में भारतीय व्यवस्थापक सभा का दस वर्ष के बाद नया चुनाव हुआ। प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों का नया चुनाव १९४६ में हुआ। अब नया शासन विधान बनाने के लिए 'विधान-निर्मातृ-सभा' का संगठन हो चुका है। इस योजना के अनुसार भारतीय जनता की राष्ट्रीय माँग पूरी हुई। शासन का गतिरोध दूर होकर सब कार्य यमित रूप से होने लगा है, और भारतवर्ष और इंगलैंड में जो संघर्ष था, उसका अन्त हो गया है।

आठवाँ अध्याय

ब्रिटिश सरकार और भारतमन्त्री

अगले अध्यायों में भारतवर्ष की शासन-पद्धति का वर्णन किया जायगा। उसे अच्छी तरह समझने के वास्ते ब्रिटिश सरकार के बारे में मुख्य-मुख्य बातें जान लेना ज़रूरी है। कारण कि भारतवर्ष के शासन का ब्रिटिश पार्लियामेंट और इंगलैंड के बादशाह से बहुत सम्बन्ध था। इंगलैंड का बादशाह भारतवर्ष का सम्राट् कहा जाता था। और भारतवर्ष में जो शासन-पद्धति प्रचलित है वह ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा निश्चित की गई थी।

ब्रिटिश सरकार के तीन अंग हैं-(१) कानून या नियम बनाने वाली संस्था—इसे पार्लियामेंट कहते हैं। (२) प्रबन्धकारिणी सभा—इसमें बादशाह, मंत्रिमंडल और सिविल सर्विस सम्मिलित हैं। (३) न्याय विभाग—इस के अन्तर्गत न्यायालय है। ब्रिटिश पार्लियामेंट और प्रबन्धकारिणी के विषय में कुछ विस्तार से आगे लिखा जाता है।

इंगलैंड से अभिप्राय ब्रिटिश-संयुक्त राज्य अर्थात् इंगलैंड वेल्ज़, स्काटलैंड और उत्तरी आयर्लैंड से है। इनमें मुख्य इंगलैंड ही है।

पार्लियामैंट—

पार्लियामैंट की दो सभाएँ हैं—(१) लार्ड सभा (हाउस-ऑफ लार्डस्), और (२) कामन्स सभा (हाउस-ऑफ-कामन्स) लार्ड का अर्थ है स्वामी या सरदार और कामन्स का अर्थ है सर्वसाधारण। लार्ड सभा में इस समय ७४० सदस्य हैं। इनमें से छ. सौ से अधिक पुश्तैनी अर्थात् अपने खानदान के कारण हैं। कामन्स सभा के सदस्यों का चुनाव होता है, उनकी संख्या ६४० है। स्त्रियाँ भी इस सभा की सदस्य चुनी जाती हैं, उन्हें निर्वाचन-अधिकार पुरुषों के समान ही है। इस सभा के हरेक गैरसरकारी सदस्य को छः सौ पौंड वार्षिक वेतन मिलता है। सदस्यों का चुनाव साधारण तौर पर पाँचवे वर्ष होता है।

किसी विषय का कानून तभी बनता है, जब उसका मसविदा पार्लियामेंट की दोनों सभाएँ स्वीकार कर लें और बादशाह उस पर अपनी मंजूरी दे दे। कानूनों के मसविदे तीन तरह के होते हैं—(१) सार्वजनिक, जो जनता के सम्बन्ध मे हों, (२) व्यक्तिगत, जो किसी खास आदमी या कम्पनी आदि संस्था के संबंध में हों, और (३) धन सम्बन्धी, जो सार्वजनिक कामों के लिए रुपया देने या टैक्स लगाने आदि के विषय के हों। धन सम्बन्धी मसविदों का विचार केवल कामन्स सभा में ही शुरू होता है। उन्हें छोड़ कर दूसरे मसविदों का विचार किसी भी सभा में आरम्भ हो सकता है। हरेक सभा दूसरी सभा के पास किये हुए मसविदे का संशोधन कर सकती है। लेकिन लार्ड सभा धन सम्बन्धी मसविदों का संशोधन नहीं कर सकती। अगर कोई मसविदा लार्ड-सभा में दो बार अस्वीकृत हो जाय तो कामन्स सभा से तीसरी बार स्वीकार होने पर उसे बादशाह की मंजूरी

के लिए भेज दिया जाता है, और उसकी मंजूरी मिल जाने पर वह कानून बन जाता है। ऐसी विशेष दशा को छोड़ कर आम तौर पर हरेक मसविदा सम्राट् की मंजूरी से पहले दोनों सभाओं में क्रमशः तीन बार पढ़ा जाना और पास होना आवश्यक है।

बादशाह—

इंगलैंड मे किसी बादशाह के बाद उसका बड़ा लड़का गद्दी पर बैठता है। बादशाह की बड़ी लड़की भी उत्तराधिकारिणी हो सकती है लेकिन उसी दशा में जब कि बादशाह का कोई लड़का या उस लड़के की सन्तान न हो। बादशाह के बड़े लड़के को 'प्रिंस-ऑफ-वेल्ज़' (युवराज) कहते हैं। बादशाह के परिवार के लिए पार्लियामेंट एक रक़म निश्चित करती है, इस रक़म के अलावा बादशाह कुछ और खर्च अपने लिए नहीं करता। बादशाह को कुछ अधिकार बहुत महत्व के प्राप्त हैं, लेकिन आम तौर से वह अपने अधिकारों को अपने मन्त्रियों की सलाह के बिना अमल मे नहीं लाता। कहावत है कि बादशाह ग़लती नहीं कर सकता; बात यह है कि बादशाह शासन सम्बन्धी किसी कार्य का उत्तरदायी नहीं माना जाता। सब कामों के लिए मन्त्री पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्रिवी-कौंसिल—

प्रिवी-कौंसिल या गुप्त-सभा बादशाह को शासन सम्बन्धी विषयों मे परामर्श देने वाली संस्था है। इसके सदस्यों को स्वयं बादशाह ही नियत करता है। वे राजनैतिक महत्त्व वाले या शाही परिवार से सम्बन्ध रखने वाले होते हैं, अथवा मंत्रिमंडल

६ सदस्य होते हैं। इस सभा का सभापति 'लार्ड-प्रेज़ीडेन्ट' कहलाता है, वह हमेशा मंत्रिमंडल का सदस्य होता है। इस सभा के कुल सदस्य ३५० से ऊपर होते हैं, लेकिन छः सदस्यों की उपस्थिति में काम किया जा सकता है। 'सम्राट् की परिषद्' इसी सभा को कहते हैं। इस सभा की सलाह से सम्राट् की जो आज्ञाएँ निकली है, उन्हें 'सपरिषद् सम्राट् की आज्ञाएँ' (आर्डर्स-इन-कौंसिल) कहा जाता है।

इस सभा की जुडिशल (न्याय सम्बन्धी) कमेटी को भारतवर्ष और ब्रिटिश उपनिवेशों की ऊँची से ऊँची अदालतों के फ़ैसलों की अपील सुनने का अधिकार है।

मंत्रिमंडल—

पार्लियामेंट का नया चुनाव होने पर या प्रधान मंत्री के इस्तीफा देने पर बादशाह कामन्स सभा के ऐसे सदस्य को प्रधान मंत्री बनाता है जो उस सभा के अधिक-से-अधिक सदस्यों को अपनी नीति के पक्ष में रख सके। प्रधान मंत्री कामन्स सभा या लार्ड सभा के सदस्यों में से दूसरे मंत्रियों का चुनाव करके मंत्रिवर्ग (मिनिस्टरी) बनाता है। बहुधा मंत्री उसी दल के होते है, जिस दल का सदस्य प्रधान मंत्री हो; परन्तु विशेष दशा में दो या अधिक दलों के सदस्य भी मंत्रिवर्ग मे ले लिये जाते हैं। इंगलैंड में अब मुख्य राजनैतिक दल तीन हैं-(१) उदार या ऐसे मंत्रिवर्ग को सम्मिलित मंत्रिवर्ग या 'कोअलिशन मिनिस्टरी' कहते हैं। लिबरल, (२) अनुदार या कंज़र्वेटिव और (३) मज़दूर या लेबर सन् १९४५ के चुनाव में मजदूर दल का पहली बार स्वतंत्र बहुमत हुआ, और अकेले इसी दल का मंत्रिमंडल बना।

कुल मंत्री लगभग ५० होते हैं। हरेक-

प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति करना, गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को आदेश-पत्र देना, संघ-न्यायालय और हाईकोर्टों की स्थापना की स्वीकृति देना। सम्राट् अपराधियों को क्षमा प्रदान कर सकता था, वह अपने इस अधिकार का उपयोग गवर्नर-जनरल या गवर्नर द्वारा करता था और इसका प्रसग प्राय: प्राण-दंड या फाँसी से मुक्ति देने के अवसर पर आता था। याद रहे कि सम्राट् के नाम से होने वाला सब काम वास्तव मे इसके मंत्री ही करते थे और अब भी करते हैं।

पार्लियामेंट और भारतवर्ष—

पार्लियामेंट भारतवर्ष की शासन-पद्धति निश्चय करती थी, वह प्रचलित शासन-पद्धति या किसी शासन-विभाग की जाँच के लिए कमीशन नियत करती थी और आवश्यक परिवर्तन करने के लिए नया विधान बनाती थी या सम्राट् की आज्ञा निकलवाती थी। उसके सदस्य भारतीय शासन-पद्धति की आलोचना करते थे और पार्लियामेंट मे भारतीय विषयो की चर्चा करते थे; वे कभी-कभी भारतवर्ष सम्बन्धी प्रश्न पूछते थे, और प्रस्ताव करते थे। इस प्रकार ब्रिटिश-पार्लियामेंट का भारत के स्वाधीन होने से पूर्व भारतवर्ष के शासन से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

होम-गवर्नमेंट—

ब्रिटिश सरकार को, जहाँ तक वह भारतवर्ष के शासन की व्यवस्था करती थी, होम-गवर्नमेंट कहते थे। 'होम' शब्द का अर्थ–घर या स्वदेश–है। क्योंकि बादशाह या पार्लियामेंट आदि इंगलैंड में रहते थे। अंगरेज शासकोंने अपनी दृष्टिसे उनका यह नाम रखा था। पीछे यही नाम सरकारी काग़ज़ों मे आगया और प्रचलित होगया।

होम-गवर्नमेंट द्वारा किये जाने वाले खर्च को 'होम चार्जेज़' कहते थे। इस खर्च का परिमाण परिस्थिति के अनुसार घटता बढ़ता रहता था। यह रकम भारतवर्ष के खज़ाने से दी जाती थी। इसमें बड़े-बड़े अंगरेज अफसरों की पेन्शन, भारत-मंत्री के दफ़्तर का कुछ खर्च, हाईकमिश्नर का वेतन और भारतवर्ष के लिये इंगलैंड में खरीदे जाने वाले सामान का मूल्य आदि शामिल होता था।

भारत-मंत्री—

यह ब्रिटिश मंत्रि-मंडल का सदस्य होता था। इसलिये इसकी नियुक्ति या बर्खास्तगी (विसर्जन) इंगलैंड के अन्य मन्त्रियों के साथ लगी रहती थी। यह पार्लियामेंट के सामने प्रतिवर्ष मई महीने की पहली तारीख के बाद भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता था, और भारतवर्ष की नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति की रिपोर्ट देता था। उस समय पार्लियामेंट के सदस्य भारतवर्ष के शासन सम्बन्धी विषयों की आलोचना कर सकते थे। इसे 'भारतीय बजट की बहस' कहते थे।

भारत-मंत्री भारत सरकार के सब बड़े-बड़े अफसरों को आज्ञा दे सकता था और उन्हें अपने अधिकार का अनुचित उपयोग करने से रोक सकता था। उसे भारतीय शासन-व्यवस्था के निरीक्षण और नियंत्रण का अधिकार था। उसके दो सहायक मंत्री होते थे। एक स्थायी और दूसरा ब्रिटिश पार्लियामैंट की उस सभा का सदस्य जिसमें भारत-मंत्री न हो। भारत-मंत्री के दफ्तर को 'इंडिया-ऑफिस' कहते थे। यह लन्दन में था।

इंडिया-कौंसिल—

भारत-मंत्री को शासन सम्बन्धी कार्य में सहायता या परामर्श देने वाली सभा 'इंडिया कौंसिल' कहलाती थी। इसका सभापति भारत-मंत्री या उसका सहायक (उप-भारत-मंत्री) होता था। कौंसिल के सदस्यों को भारत-मंत्री ही नियुक्त करता था। उनकी संख्या-८ से १२ तक होती थी। प्रत्येक सदस्य प्रायः पांच वर्ष के लिये नियुक्त किया जाता था। तब तीन सदस्य हिन्दुस्तानी होते थे। प्रत्येक सदस्य का वार्षिक वेतन १२०० पौंड था। भारतीय सदस्यों को ६०० पौंड वार्षिक भत्ता और मिलता था। सदस्य वैदेशिक विषयों में, युद्ध- नीति मे, तथा देशी राज्यों के मामलों में बिलकुल हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। ये भारत मंत्री की आज्ञानुसार लन्दन में भारतवर्ष सम्बन्धी कार्य करते थे।

हाई-कमिश्नर—

यह अधिकारी भारत-सरकार के अधीन था, और उसके द्वारा भारत-मंत्री की अनुमति से नियुक्त किया जाता था। यह(१) इंगलैंड में भारत सरकार के एजेन्ट का काम करता था, (२) प्रान्तीय सरकारों के एजेन्ट का काम, गवर्नर जनरल की आज्ञानुसार करता था, और (३) भारतीय स्टोर-विभाग, विद्यार्थी-विभाग और भारतीय व्यापार-कमिश्नर के कार्य का निरीक्षण करता था। भारतवर्ष में रेल या पुल आदि बनाने के लिये जो सामग्री आवश्यक होती थी, वह अधिकतर इंगलैंड से ही आती थी; उसे

ठेका देकर बनवाने तथा यहाँ भेजने का काम यहीं अधिकारी करता था। यह भारत-सरकार को व्यापार सम्बन्धी नई-नई सूचनाएँ भेजता रहता था। इंगलैंड में लगभग दो हज़ार भारतीय विद्यार्थी विविध विषयों की शिक्षा पाते थे, उनकी देख-रेख करना और उन्हें विश्वविद्यालयों मे प्रवेश होने आदि की सुविधाएँ दिलाने की व्यवस्था करने का काम इसके ही सुपुर्द था।

नवाँ अध्याय

भारत-सरकार

पिछले अध्याय में 'होम-गवर्नमैन्ट के बारे में लिखा गया है। वह भारतवर्ष से दूर होने के कारण स्वयं यहाँ का शासन नहीं करती थी। इस कार्य को उनके प्रतिनिधि यहाँ रह कर करते थे। इस प्रकार भारतवर्ष में शासन करने वाली संस्थाएँ अपने कार्य में स्वतन्त्र नहीं थीं, इन्हें केवल उतना ही अधिकार होता था, जितना ब्रिटिश सरकार इन्हें प्रदान करती थी। भारतवर्ष के शासन की बागडोर ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में रहती थी। इस बात को ध्यान मे रखने से हम भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों के कार्यको अच्छी तरह समझ सकते हैं। इस अध्यायमें भारत-सरकार के सम्बन्ध में लिखा जाता है। भारत-सरकार का अर्थ है—गवर्नर-जनरल और उसकी (प्रबन्धकारिणी) कौंसिल। इसका संगठन १९१९ के विधान के अनुसार ही था। तब से पच्चीस वर्ष में इसमें सुधार नहीं हुआ था। अब यह सारा विधान बदल चुका है।

गवर्नर-जनरल या वायसराय—

गवर्नर-जनरल ब्रिटिश भारत के शासन की निगरानी और नियन्त्रण करता था। वह सम्राट् का प्रतिनिधि था, और इस

हैसियत से देशी राज्योंमें जाता था; सभा या दरबार करता था और घोषणा-पत्र आदि निकालता था। इसी लिए वह 'वायसराय'कहा जाता था; वायसराय का अर्थ है—बादशाह् का प्रतिनिधि। उसे सम्राट् अपने प्रधान-मन्त्री की सिफ़ारिश से नियुक्त करता है। वह प्रायः 'लार्ड' उपाधि वाला होता था। उसकी अवधि प्रायः पाँच साल की होती थी। उसे सालाना वेतन २,५०,८००रु० और कुछ भत्ता मिलता था।

अपनी प्रबंधकारिणी कौंसिल की अनुपस्थिति में वह किसी प्रान्तीय सरकार या किसी पदाधिकारी के नाम, स्वयं कोई आज्ञा निकाल सकता था। आवश्यकता होने पर वह ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग की शान्ति और सुशासन के लिए ६ महीने के वास्ते 'आर्डिनेन्स' (अस्थायी कानून) जारी कर सकता था। वह अदालत से दण्ड पाये हुए किसी अपराधी को क्षमा कर सकता था। भारतवर्ष के शासन के सम्बन्ध मे ब्रिटिश सरकार पर उसकी राय का बड़ा प्रभाव पड़ता था,और वह अपने अधिकारों के अनुसार काम करके स्वयं भी भारतीय जनता को कुछ संतुष्ट कर सकता था।

गवर्नर-जनरल भारत-मन्त्री के अधीन होता था। लेकिन अगर उसका व्यक्तित्व ऊँचा, और उसका ब्रिटिश मंत्रिमण्डल पर अच्छा प्रभाव होता था तो वह अपनी बात भारत-मन्त्री से बहुत कुछ मनवा सकता था।

गवर्नर-जनरल की कौंसिल—

गवर्नर-जनरल की कौंसिल अर्थात् प्रबन्धकारिणी सभा के सदस्यों की संख्या आवश्यकतानुसार घटती बढ़ती रहती थी।

योरुपीय महायुद्ध (१६३६-४५) से पहले इसमे गवर्नर-जनरल को मिलाकर आठ सदस्य रहते थे, पीछे युद्ध-कालमे इनकी संख्या १५ होगई। प्रत्येक सदस्य के सुपुर्द एक-एक विभाग का काम रहता था। विदेश-विभाग स्वयं गवर्नर-जनरल के अधीन होता था, दशी रियासतों सम्बन्धी विषयों का भी निरीक्षण तथा नियन्त्रण वही करता था। सेना-विभाग पर जंगीलाट या कमाँडर-इन-चीफ का प्रभुत्व होता था। अन्य विभागों मे से मुख्य अर्थ (फाइनेन्स) और गृह (होम) विभाग है। गृह-विभाग के अन्तर्गत सरकारी नौकरियाँ, पुलिस, जेल, न्याय, देश की आन्तरिक राजनीति थी। अर्थ-विभाग सरकारी आय-व्यय, मुद्रा, टकसाल, सरकारी ऋण आदि के प्रबन्ध की देख-भाल करता था। ये विभाग हमेशा योरुपियन सदस्यों के ही हाथ में रहे हैं।

कौंसिल की कार्य-पद्धति

कौंसिल का अधिवेशन प्रायः प्रति सप्ताह होता था। उसमें उन विषयों पर विचार होता था, जिन पर गवर्नर-जनरल विचार करवाना चाहता था। सभापति स्वयं गवर्नर-जनरल होता था और उप-सभापति सभा का ऐसा सदस्य होता था, जिसे गवर्नर-जनरल नियुक्त कर दे। सभापति (या उसका काम करने वाला) तथा सभा का एक सदस्य (जंगीलाट को छोड़कर) कौंसिल के सब काम कर सकते थे। जब किसी विभाग सम्बन्धी कोई प्रश्न विवादग्रस्त होता था तो उस विभाग से तैयार किया हुआ मसविदा कौंसिल में पेश होता था। साधारण तौर से बहुमत के अनुसार काम होता था। यदि दोनों पक्ष समान हों, तो जिस तरफ़ सभापति मत प्रकट करे उसी के पक्ष मे फैसला होता था। मगर गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि अगर उसकी समझ से

सकती थी, और दो साल तक के लिए जज नियत कर सकती थी। वह एशिया के राज्यों से सन्धि का समझौता कर सकती थी। विदेशी राज्योंमें वह अपनी सत्ता और अधिकारों का उपयोग कर सकती थी। मतलब यह कि सम्राट् की प्रतिनिधि होने के कारण उसे ऐसी शक्ति और अधिकार प्राप्त थे जो भारतीय प्रचलित व्यवस्था के विरुद्ध न हों।

भारत-सरकार और भारतीय जनता—

भारत-सरकार अपने कार्यो के लिए ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी थी, भारतीय जनताके प्रति नहीं। गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के सदस्यों को ब्रिटिश सरकार के आदेशानुसार कार्य करना होता था। अगर वे किसी बात मे उससे सहमत न हों तो या तो उन्हे अपना मत दबा लेना होता था, या त्याग-पत्र देना होता था। होना चाहिए था यह कि भारत-सरकार भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के प्रति, और उसके द्वारा भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी हो। जब व्यवस्थापक मण्डल उसके कार्योंके प्रति असन्तोष प्रकटकरे,या उसपर अविश्वासका प्रस्ताव पास करे तब भारत-सरकार को त्याग-पत्र देने पर वाध्य होना चाहिए था। इस दशा में भारत-सरकार भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के मत की अवहेलना करते हुए भी अपने पद पर बनी रहती थी, और भारतीय खजाने से सदस्य अपना पूरा वेतन और भत्ता आदि लेते रहते थे। इससे देश में बहुत असंतोष था, जनता जल्दी ही इस स्थिति को बदल देना चाहती थी। वर्षों तक घोर संघर्ष रहा और अन्त में विवश होकर ब्रिटिश पार्लियामेंट को भारत को १५ अगस्त, सन् १९४७ को स्वतन्त्रता देनी पड़ी।

दसवाँ अध्याय

भारतीय व्यवस्थापक मंडल

इस अध्याय मे हम उस संस्था के बारे मे विचार करेंगे जो समस्त ब्रिटिश भारत के लिए कानून बनाती थी। इसे भारतीय व्यवस्थापक मण्डल (इंडियन लेजिस्लेचर) कहते थे। इसकी दो सभाएँ थीं—(१) भारतीय व्यवस्थापक सभा (इंडियन लेजिस्लेटिव असेम्बली) और (२) राजपरिषद् (कौंसिल-ऑफ-स्टेट)। आम तौर से कोई कानून तभी पास हुआ समझा जाता था, जब दोनों सभाएँ उसे स्वीकार कर ले।

साधारण परिचय—

इन सभाओं का संगठन सन् १९१९ के विधान के अनुसार ही था। सन् १९३५ के विधान मे जो परिवर्तन करने का निश्चय किया गया था, वे यहाँ संघ स्थापित न होने के कारण अमल मे नहीं आये। इनके सभी सदस्य निर्वाचित नहीं होते थे, कुछ नामजद भी रहते थे। किसी सरकारी पदाधिकारी को निर्वाचित नहीं किया जा सकता था और एक व्यक्ति इन सभाओं मे से किसी एक का ही सदस्य हो सकता था। गवर्नर-जनरल की कौंसिल का हर एक सदस्य दोनों सभाओं में से किसी एक सभा का सदस्य नामजद

किया जाता था। उसे दूसरी सभा मे भी बैठने और बोलने का अधिकार रहता था। सदस्य वे ही व्यक्ति हो सकते थे, जिनमें निर्वाचक होने की योग्यता हो और जो २५ वर्ष से कम आयु के न हों। सदस्य बनने के लिए खड़े होने वाले उम्मेदवार को ५००) ज़मानत के रूप में जमा करने होते थे, यदि उसे अपने निर्वाचन-क्षेत्र के कुल मतों में से आठवें हिस्से से कम मिलें तो यह ज़मानत ज़ब्त हो जाती थी।

निर्वाचक-संघ—

निर्वाचन के लिए प्रत्येक प्रान्त या ज़िला कई भागों या क्षेत्रों में विभक्त किया जाता था; प्रत्येक क्षेत्र के निर्वाचकों के समूह को निर्वाचक-संघ (कान्स्टीच्यूएन्सी) कहते थे। प्रत्येक निर्वाचक संघ अपनी ओर से प्रायः एक-एक प्रतिनिधि चुनता था। निर्वाचक-संघों के दो भेद थे—साधारण और विशेष।

भारतीय व्यवस्थापक सभा (और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं और कहीं-कहीं म्युनिसपेलटियों और ज़िला-बोर्डों) के लिए साधारण निर्वाचक-संघ जातिगत निर्वाचक-संघों मे विभाजित किये गये थे जैसे मुसलमानों का निर्वाचक-संघ; ग़ैर-मुसलमानों का निर्वाचक-संघ। जातिगत निर्वाचक-संघ प्रायः नगरों और ग्रामों में विभक्त किये गये थे, जैसे मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-संघ, गैर-मुसलमानों का ग्राम-निर्वाचक-संघ, आदि। किसी जातिगत निर्वाचक-संघ में वे ही व्यक्ति निर्वाचक हो सकते थे, जो उस जाति के हों, जिसका कि वह निर्वाचक-संघ था।

इससे हरेक आदमी अपनी-अपनी जाति का ध्यान रखता था, जातिगत द्वेष बढ़ता था, राष्ट्रीयता के भाव बढ़ने नहीं पाते थे।

विशेष निर्वाचक-संघों में ज़मींदार, विश्व-विद्यालय, व्यापारी, खान वाले, नील की खेती करने वाले, तथा उद्योग-धंधे वाले निर्वाचक होते थे।

कौन-कौन व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते ?—

निम्नलिखित व्यक्ति भारतीय व्यवस्थापक मंडल की किसी सभा के सदस्यों के चुनाव में भाग नहीं ले सकते थे :—

१. जो ब्रिटिश प्रजा न हों। [देशी राज्यों के नरेश और प्रजा निर्वाचक हो सकते थे।]

२. जो अदालत से पागल ठहराये गये हों।

३. जो इक्कीस वर्ष से कम आयु के हों।

४. जिन्हें सरकारी अफ़सर के विरुद्ध अपराध करने में छः मास से अधिक दंड दिया गया हो।

५. जो निर्वाचन-कमिश्नरों द्वारा निर्वाचन के समय धमकी देने या रिश्वत आदि का दूषित कार्य करने के अपराधी ठहराये गये हों।

भारतीय व्यवस्थापक सभा का संगठन—

इस सभा मे १४२ सदस्य होते थे। यह नियम था कि कुल सदस्यों में से कम-से-कम ५/७ निर्वाचित हों, और शेष नामज़द; और नामज़द सदस्यों में से एक-तिहाई गैर-सरकारी हों। व्यवस्थापक सभा में नामज़द सदस्यों का होना लोकतंत्र के सिद्धान्तों के विरुद्ध था। और १४२ सदस्यों में से ४० का सरकार द्वारा नामज़द होने और जनता के प्रति जिम्मेवार न रहने से इस सभा की शक्ति बहुत ही कम रह जाती थी। ब्रिटिश भारत के

भिन्न भिन्न प्रान्तों के हिसाब से निर्वाचित सदस्यों का ब्यौरा इस प्रकार था—मदरास १६, बम्बई १६, बंगाल १७, संयुक्तप्रान्त १६, पंजाब १२, बिहार और उड़ीसा १२, मध्यप्रान्त और बरार ६; आसाम ४, दिल्ली १, अजमेर १, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त १, योग १०२। पंजाब के १२ निर्वाचित सदस्यों का हिसाब इस प्रकार था—मुस्लिम ६, गैर-मुस्लिम (हिन्दू) ६, सिक्ख २, और ज़मींदार १। भारतीय व्यवस्थापक सभा की आयु तीन वर्ष की थी, इसके बाद नया चुनाव होता था। लेकिन गवर्नर-जनरल को अधिकार था कि इस समय को आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा सके। सन् १९३४ के बाद सन् १९३७ मे नया चुनाव होना चाहिए था। पर उसका समय बढ़ाया जाता रहा। सन् १९४५ मे जाकर चुनाव किया गया। सभा के सदस्यों को 'एम० एल० ए०' कहा जाता था और है, यह 'मेम्बर लेजिस्लेटिव असेम्बली' का संक्षेप है। सभापति और उप-सभापति सभा के ऐसे सदस्य होते हैं, जिन्हे सभा चुन ले, और गवर्नर-जनरल मंजूर कर ले। इन्हे तथा सदस्यो को सभा द्वारा निर्धारित वेतन मिलता था।

निर्वाचक की योग्यता—

भारतीय व्यवस्थापक सभा का निर्वाचक होने के लिये निर्वाचक-संघ की सीमा मे रहने के अलावा कुछ अन्य योग्यता होना भी आवश्यक थी। यह योग्यता भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग-अलग थी। इनकमटैक्स देना या फौज मे सिपाही या नॉन-कमिशन्ड अफ़सर रह चुकना तो सभी प्रान्तों मे निर्वाचक की योग्यता समझा जाता था, पर ख़ास बातों मे अन्तर था। यहाँ वे ख़ास बातें ही दी जाती हैं; विस्तार-भय से, केवल संयुक्त प्रान्त और पंजाब के बारे मे ही लिखा जाता है।

संयुक्तप्रान्त में निर्वाचक होने के लिए १८०) सालाना किराये के मकान में रहना, या १०००) पर म्युनिसिपल टैक्स देना, या १५०) मालगुज़ारी देना ऐसा नियम था।

पंजाब में निर्वाचक होने के लिए १५,०००) रु० की लागत के मकान या बंगले का मालिक होना, या ३३०) रु० सालाना किराया, या १००) मालगुज़ारी या ५००) पर इंकमटैक्स देना ज़रूरी समझा गया था। यह स्पष्ट है कि निर्वाचन-योग्यता में आर्थिक स्थिति को बहुत अधिक महत्व दिया गया था, इसलिए सर्वसाधारण जनता के प्रतिनिधि इसके सदस्य नहीं बन सकते थे।

सन् १९४५ के चुनाव के अनुसार भारतीय व्यवस्थापक सभा—

इस सभा मे कुल सदस्य १४२ थे। सन् १९४५ में जो चुनाव हुआ, उसके अनुसार इसके १०२ निर्वाचित सदस्यों में से ५६ कांग्रेसवादी, ३० मुस्लिम लीगी, ६ स्वतन्त्र, ८ यूरोपियन तथा २ अकाली सिक्ख थे। नामज़द सदस्यों में गैर-सरकारी सदस्य प्रायः सरकारी सदस्यों की तरफ़, सरकार के पक्ष में, मत दिया करते थे। और निर्वाचित सदस्यों में से यूरोपियन सदस्य भी बहुधा सरकार का समर्थन किया करते थे। सिक्ख तथा स्वतन्त्र सदस्यों में से कुछ का समर्थन काँग्रेस दल को था। इस प्रकार जिन प्रश्नों पर मुस्लिम लीग काँग्रेस के साथ सहयोग न करके तटस्थ रहती, उन पर भी काँग्रेस दल की विजय निश्चित थी। हाँ, जब लीग काँग्रेस का विरोध करके नामज़द तथा अन्य सदस्यों से मिल जाती तो बात बदल जाती थी काँग्रेस और लीग में ख़ास मतभेद पाकिस्तान के प्रश्न पर था, इस सम्बन्ध मे आगे विस्तार से लिखा गया है।

राजपरिषद् का संगठन—

राजपरिषद्‌मे ५८ सदस्य होते थे–३१ निर्वाचित और सभापति को मिलाकर २७ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द। नामज़द सदस्योंमे बीस तक अधिकारियों मे से हो सकते थे। बरार प्रान्त का सदस्य होता तो निर्वाचित था, पर यह प्रान्त विधान के अनुसार ब्रिटिश भारत मे न गिना जाने के कारण, इसका निर्वाचित सदस्य सरकार द्वारा नामज़द किया जाता था। इसलिए वास्तव में निर्वाचित सदस्य ३२ और नामज़द सदस्य (सभापति सहित) २६ होते थे। सदस्यों की यह संख्या विविध प्रान्तों मे बंटी हुई थी। नामज़द सदस्यों का इतनी अधिक संख्या मे होने से, इस सभा के संगठन का स्पष्ट दोष है; फिर जैसा कि आगे बताया जायगा, इसके जो सदस्य निर्वाचित होते थे, उन्हे चुनने वाले भी बहुत धनवान या विशेष प्रतिष्ठा वाले आदमी होते थे। इससे यह सभा साधारण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी। राजपरिषद् का सभापति उसके सदस्यों द्वारा निर्वाचित होकर गवर्नर जनरल द्वारा नियुक्त किया जाता था। परिषद् के सदस्यों के नामों से पहले आदर के लिए माननीय (ऑनरेबल) शब्द लगाया जाता है। परिषद् का निर्वाचन प्रायः पाँच साल में होता था, पर गवर्नर-जनरल इस समय को आवश्यकतानुसार घटा बढ़ा सकता था।

निर्वाचक की योग्यता—

राजपरिषद् का निर्वाचक होने के लिए निर्वाचक-संघ की सीमा में रहने के अलावा अन्य योग्यता भी होनी आवश्यक थी। उदाहरण के तौर पर बम्बई, मदरास, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त और आसाम में ऐसा आदमी राज-

परिषद् का निर्वाचक हो सकता था जो (क) किसी म्युनिसिपैलिटी, ज़िला बोर्ड या ताल्लुका-ब्रोर्ड का गैर-सरकारी चेयरमैन हो, या रहा हो, या (ख) किसी व्यवस्थापक सभा का सदस्य हो या रहा हो; या (ग) ब्रिटिश भारत के किसी विश्वविद्यालय के सिनेट का मेम्बर या 'फेलो' हो, या (घ) महामहोपाध्याय या शम्शुलउलेमा की पदवी प्राप्त हो (बिहार, मध्यप्रान्त तथा बम्बई को छोड़ कर), या (च) किसी कोआपरेटिव सेन्ट्रल या यूनियन बैंक का चेयरमैन हो, या (छ) पंजाब में, प्रांतीय दरबारी हो।

इसके सिवा जुदा-जुदा प्रांतों में अलग-अलग साम्पत्तिक योग्यता वाले आदमी भी निर्वाचक हो सकते थे। उदाहरणतया जो आदमी मदरास और मध्यप्रान्त मे २०,००० रु०, बम्बई में ३०,०००रु०, बंगाल और आसाम में १२, ०००रु०, संयुक्तप्रांत में १०,००० रु०, पंजाब मे १५००० तथा बिहार और उड़ीसा में १२,८००रु० पर आय-कर देता था, वह निर्वाचक हो सकता था। इसी तरह बम्बई में ऐसी ज़मीन का मालिक निर्वाचक हो सकता था जिसका सालाना लगान २,००० रु० से कम न था, बंगाल के कुछ हिस्सों में यह रक़म ७,५०० रु० और दूसरे हिस्सों मे ५००० रु० थी। संयुक्तप्रान्त मे यह रक़म ५००० रु०, पंजाब मे ७,५०० रु०, बिहार उड़ीसा मे १,२०० रु०, मध्यप्रांत में ३,००० रु० और आसाम में २,००० रु० थी।

कुछ प्रान्तों में मुसलमान निर्वाचकों के लिए साम्पत्तिक योग्यता का परिमाण कम रखा गया था। लेकिन यह स्पष्ट है कि बड़े-बड़े ज़मींदारों और पूँजीवालों को ही निर्वाचन-अधिकार दिया गया था। इनकी संख्या देश में बहुत कम है। इसलिये यह सभा सर्वसाधारण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी।

भारतीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं—भारतीय व्यवस्थापक सभा और राजपरिषद्—का संगठन बताया जा चुका है। अब इनकी कार्यपद्धति का विचार करना है।

भारतीय व्यवस्थापक मंडल के अधिवेशन—

व्यवस्थापक मंडल की दोनो सभाओं का साल मे कम-से-कम एक अधिवेशन होने का नियम था। और, एक अधिवेशन तीन चार मास तक भी चलता रह सकता था। किसी सभा की बैठक साधारण तौर से दिन के ग्यारह बजे से पांच बजे तक होती थी। आरम्भ मे प्रश्नो के उत्तर दिये जाते थे। सभाओं के अन्य कार्य के दो भाग होते थे—सरकारी और गैर सरकारी। गैर-सरकारी काम के लिए गवर्नर-जनरल द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिये जाते थ। अन्य दिनों मे सरकारी काम होता था। राजपरिषद् मे १५ और व्यवस्थापक सभा मे २५ सदस्यों की उपस्थिति के बिना कार्य आरम्भ नहीं हो सकता था। सभाओं की भाषा अंग्रेजी ही थी। सभापति अंगरेजी न जानने वाले सदस्यो को देशी भाषा मे बोलने की अनुमति दे सकता था। प्रत्येक विषय का निर्णय सदस्यो के बहुमत से होता रहा था, दोनों ओर समान मत होने पर सभापति के मत से उसका निपटारा होता था।

कार्य—

व्यवस्थापक मंडल स्वतन्त्र कार्य करने वाली संस्था नहीं थी, यह आगे बताया जायगा। इसके कार्य ये रहे हैं:—

१—शासन-कार्य की जाँच के लिए आवश्यक प्रश्न पूछना, और प्रस्ताव करना।

२—कानून बनाना।

३—सरकारी आय-व्यय निश्चित करना।

प्रश्न—

कोई सदस्य सभा में, निर्धारित नियमों का पालन करते हुए सार्वजनिक महत्व के प्रश्न पूछ सकता था। एक प्रश्न का उत्तर मिलने पर ऐसा (पूरक) प्रश्न भी पूछा जा सकता था, जिससे पहले प्रश्न के उत्तर पर अधिक प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार था कि कुछ दशाओं में वह किसी प्रश्न, उसके अंश या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे। किसी सरकारी विभाग के सदस्य से वही प्रश्न किये जा सकते थे, जिन से सरकारी तौर पर उसका सम्बन्ध हो। ऐसे प्रश्न पूछे जाने की सूचना कम-से-कम दस दिन पहले देनी होती थी।

प्रस्ताव—

व्यवस्थापक मंडलके प्रस्ताव केवल सिफ़ारिश के रूपमें होते रहे हैं। भारत-सरकार उन्हें अमल में लाने के लिए बाध्य नहीं होती थी। मंडल मे निम्नलिखित विषयों के प्रस्ताव उपस्थित नहीं हो सकते थे—विदेशी राज्यों या भारत के देशी राज्यों सम्बन्धी विषय, और वे विषय जो किसी ऐसे स्थान की अदालत में पेश हों, जहाँ सम्राट् का अधिकार हो।

कुछ विषयों के प्रस्ताव करने के लिए गवर्नर-जनरल की पहिले से स्वीकृति लेनी होती थी। गवर्नर-जनरल किसी प्रस्ताव का या उसके किसी अंश का उपस्थित होना इस आधार पर अस्वीकार कर सकता था कि उस विषय के उपस्थित किये जाने

से सार्वजनिक हित को हानि पहुँचेगी, अथवा, उपस्थित किया जाने वाला विषय भारत-सरकार के कार्यक्षेत्र का नहीं।

प्रस्ताव दो प्रकार के होते रहे हैं-(१) किसी आवश्यक विषय पर बहस करने के लिए सभा के साधारण कार्य को स्थगित करने के, और (२) भारत-सरकार से किसी कार्य के करने की सिफारिश के। पहली प्रकार के प्रस्ताव, सभा मे प्रश्नोत्तर हो चुकने के बाद ही, सेक्रेटरी को सूचना देकर, किये जा सकते थे। सभापति इस प्रस्ताव को पढ़कर सुना देता था। यदि किसी सदस्य को प्रस्ताव करने की अनुमति देने में आपत्ति हो तो सभापति कहता था कि अनुमति देने के पक्ष वाले सदस्य खड़े हो जायँ। यदि राजपरिषद् में १५, या व्यवस्थापक सभा में २५ सदस्य खड़े हो जायँ तो सभापति यह सूचित कर देता था कि अनुमति है और ४ बजे या इससे पहले, प्रस्ताव पर विचार होगा।

दूसरे प्रकार के प्रस्ताव के लिए प्राय: १५ दिन, और कुछ दशाओं मे इससे अधिक समय पहले सूचना देनी होती थी। स्ताव उपस्थित करने दिया जाय या नही, इसका निर्णय सभापति रहा करता है।

कानून—

जब कोई सदस्य किसी कानून के मसविदे (बिल) को पेश करना चाहता था तो उसे नियमानुसार इसकी सूचना देनी होती था। अगर उसे पेश करने के लिए, नियमों के अनुसार, पहले ही गवर्नर-जनरल की अनुमति लेने की जरूरत होती थी, तो वह माँगी जाती थी। अनुमति मिल जाने पर, निश्चित किये हुए दिन मसविदा सभा मे पेश किया जाता था। उस समय मसविदे

के सिद्धान्तों पर विचार होता था। यदि आवश्यकता हो तो मस-विदा साधारणतया उसी सभा के (जिसका सदस्य मसविदा पेश करे) या दोनों सभाओं के कुछ चुने हुए सदस्यों की कमेटी में विचार होने के लिए भेजा जाता था। यह कमेटी उसके सम्बन्ध में संशोधन आदि करके अपनी रिपोर्ट देती थी। पीछे बिल के वाक्यों या हिस्सों पर एक-एक करके विचार किया जाता था। फिर पूरा मसविदा स्वीकृत संशोधनो सहित पास करने का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता था। इस तरह एक सभा मे पास हो जाने पर मसविदा दूसरी सभा मे भेजा जाता था। वहाँ भी इसी क्रम के अनुसार विचार होता था। यदि वहां मसविदा बिना किसी संशोधन के पास हो जाय तो उसे गवर्नर-जनरल की स्वीकृतिके लिए भेज दिया जाता था। स्वीकृति मिल जाने पर कानून बन जाता था।

अगर दूसरी सभा मे मसविदा संशोधन सहित पास हो तो उसे इस निवेदन सहित लौटाया जाता था कि पहली सभा उन संशोधनों पर सहमत हो जाय। अगर पहली सभा सहमत नहीं होती थी तो वह चाहे तो (१) मसविदे को रोकदे, या (२) अपने सहमत न होने की रिपोर्ट गवर्नर-जनरल के पास भेज दे। दूसरी दशा में मसविदा और संशोधन दोनों सभाओं की ऐसी संयुक्त मीटिंग मे पेश होते थे; जो गवर्नर-जनरल कराये। इस मीटिंग में अध्यक्ष राजपरिषद् का सभापति होता था। मसविदे और विचार-णीय संशोधनों पर बहस होकर, जिन संशोधनों के पक्ष में बहु-मत होता, वे स्वीकृत समझे जाते। इस प्रकार संशोधित मस-विदा दोनों सभाओं से पास हुआ समझा जाता था।

कई प्रकार के मसविदे गवर्नर-जनरल की अनुमति बिना

किसी सभा में उपस्थित नहीं किये जा सकते थे, और चाहे कोई मसविदा दोनों सभाओं में पास ही क्यों न हो, गवर्नर-जनरल चाहे तो उसे अस्वीकार कर सकता था। उसकी स्वीकृति बिना कोई कानून नहीं बनता था। गवर्नर-जनरल के आर्डिनेंस (अस्थायी कानून) जारी करने के अधिकार की बात पिछले अध्याय में कही जा चुकी है।

सरकारी आय-व्यय—

भारत-सरकार का अनुमानित आय-व्यय का विवरण (वजट) हर साल भारतीय व्यवस्थापक मंडल की दोनों सभाओं के सामने रखा जाता था। गवर्नर-जनरल की सिफारिश बिना, किसी काममे रुपया लगाने का प्रस्ताव नहीं किया जा सकता था। व्यय की नीचे लिखी मदों के लिए कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के प्रस्तावों पर भारतीय व्यवस्थापक सभा का मत (वोट) नहीं लिया जा सकता था, न उन मदों पर कोई सभा बहस कर सकती थी, जब तक कि गवर्नर-जनरल इसके लिए आज्ञा न दे दे।

(१) सरकारी ऋण का सूद।

(२) ऐसा ख़र्च जिसकी रक़म कानून से निर्धारित हो।

(३) उन लोगों की पेन्शन या वेतन जो सम्राट् या भारत-मंत्री द्वारा या सम्राट् की स्वीकृति से नियुक्त किये गये हों। चीफ कमिश्नरों या जुडीशल कमिश्नरों का वेतन।

(४) वह रक़म जो सम्राट् को देशी राज्यों सम्बन्धी कार्य के लिए दी जाने वाली हो।

(५) किसी प्रान्त के अलग किये हुए (एक्सक्लूडेड) क्षेत्रों के शासन सम्बन्धी ख़र्च।

(६) वह खर्च जिसे कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ने धार्मिक, राजनैतिक या रक्षा अर्थात् सेना सम्बन्धी ठहराया हो।

इन मद्दों को छोड़ कर आय-व्यय के अन्य विषयों के खर्च के लिए कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के प्रस्ताव भारतीय व्यवस्थापक सभा के मत के वास्ते, मांग के रूप में रखे जाते थे। सभा को अधिकार था कि वह किसी मांग को स्वीकार करे या न करे, अथवा घटाकर स्वीकार करे। वह ऐसे खर्च के लिए स्वीकृति भी दे सकता था, जो उसकी सम्मति में देश की रक्षा या शान्ति के लिए आवश्यक हो। बजट राजपरिषद् में भी पेश होता था पर उसे घटाने या किसी मांग को अस्वीकार करने आदि का अधिकार केवल भारतीय व्यवस्थापक सभा को ही था। राजपरिषद् सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना कर सकती थी। वह व्यवस्थापक सभा से आये हुए किसी कर के प्रस्ताव को संशोधित या रद्द कर सकती थी, पर वह किसी कर के प्रस्ताव को स्वयं आरम्भ नहीं कर सकती थी। करों के प्रस्ताव दोनों सभाओं से पास होने जरूरी होते थे।

यह स्पष्ट है कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल को आय-व्यय (तथा कानून बनाने आदि) के सम्बन्ध में बहुत कम अधिकार रहे थे।

ग्यारहवाँ अध्याय

प्रान्तों का शासन

ब्रिटिश भारत के प्रान्त--

ब्रिटिश भारत के समय में प्रान्तों की संख्या समय-समय पर बदलती रही है। उस समय यहाँ कुल मिलाकर १७ प्रान्त थे। राज-प्रबन्ध की दृष्टि से इनके दो भेद हैं-(१) चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्त; ये छः थे। (२) गवर्नरों के प्रान्त, इनकी संख्या ग्यारह थी। पहले चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों के शासन सम्बन्धी आवश्यक बातें बतला कर, पीछे गवर्नरों के प्रान्तों की शासन-पद्धति का वर्णन किया जायगा।

चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों का शासन—

सन् १९३५ के विधान के अनुसार चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्त ये थे—

(१) ब्रिटिश बिलोचिस्तान।

(२) देहली।

(३) अजमेर-मेरवाड़ा।

(४) पंथ पिपलोदा (यह प्रान्त सन् १९३५ के विधान के अनुसार बनाया गया; पहले यह होल्कर राज्य में, अर्थात् इन्दौर राज्य के अन्तर्गत था।)

(५) कुर्ग ।
(६) एन्डेमन निकोबार ।

इन प्रान्तों का शासन एक-एक चीफ कमिश्नर द्वारा गवर्नर जनरल करता था। चीफ कमिश्नरों की नियुक्ति गवर्नर जनरल करता रहा है। इन प्रान्तों के लिए कानून भारतीय व्यवस्थापक मंडल द्वारा बनाये जाते रहे हैं (जिसके विषय में पहले लिखा जा चुका है), केवल कुर्ग में एक व्यवस्थापक सभा थी।

गवर्नरों के प्रान्त—

गवर्नरों के प्रान्त निम्नलिखित थे—

(१) मद्रास।
(२) बम्बई ।
(३) बंगाल ।
(४) संयुक्त प्रान्त ।
(५) पञ्जाब ।
(६) बिहार ।
(७) मध्यप्रान्त-बरार ।
(८) आसाम ।
(९) पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ।
(१०) उड़ीसा ।
(११) सिन्ध।

गवर्नरों की नियुक्ति और वेतन—

इन प्रान्तों में प्रधान शासक गवर्नर होता था। गवर्नरों में बंगाल, बम्बई और मद्रासके गवर्नर ऊंचे माने जाते थे। सब

गवर्नरों की नियुक्ति सम्राट् द्वारा होती थी, परन्तु उपर्युक्त तीन प्रान्तों के गवर्नर इंगलैंड के राजनीतिज्ञों मे से, भारत-मन्त्री की सिफारिश से नियत होते थे। दूसरे गवर्नर प्रायः भारतीय सिविल सर्विस के सदस्यों मे से, गवर्नर-जनरल के परामर्श से चुने जाते थे। सब गवर्नरों का वेतन विधान द्वारा निर्धारित था। बंगाल, बम्बई, मदरास और संयुक्तप्रान्त के गवर्नरों मे से हर एक को १,२०,०००) रु०, बिहार और पंजाब के गवर्नरों मे से हर एक को एक लाख रु०, मध्यप्रान्त-बरार, और आसाम के गवर्नरों में से हर एक को ७२,०००) रु० और शेष को छियासट-छियासट हजार रुपये सालाना वेतन मिलता था। भत्ता आदि इससे अलग।

गवर्नरों का शासन-कार्य—

गवर्नरों की कार्य-पद्धति के अनुसार प्रान्तों के शासन सम्बन्धी विषयों के तीन भेद किये जा सकते हैं—(१) कुछ विषयों के सम्बन्ध मे गवर्नर अपनी इच्छा के अनुसार कार्य कर सकता था। इनमे उसे अपने मन्त्रि-मण्डल का परामर्श लेने की आवश्यकता नही थी, जैसे (क) मन्त्रियों की नियुक्ति या बर्खास्तगी, तथा अस्थायी रूप से उनका वेतन निश्चित करना, (ख) मन्त्रि-मण्डल का सभापति होना, और (ग) प्रान्तीय सरकार के कार्य सम्बन्धी नियम बनाना। (२) कुछ विषयों में गवर्नर अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार काम कर सकता था, अर्थात् इन विषयोंमे वह मन्त्रि-मण्डलसे परामर्श तो करता था, पर यदि वह उन से सहमत न हो तो वह अपने निर्णय के अनुसार काम कर सक्ता था; जैसे (क) जिन विषयों में गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व माना जाता था, उनका प्रबन्ध,(ख) पुलिस सम्बन्धी नियमों की व्यवस्था, और (ग) आतंकवाद का दमन। इन दोनों

प्रकार के कार्यों के सम्बंध में गवर्नर, गवर्नर-जनरल के नियंत्रण में रहता था, और उसकी सूचनाओं के अनुसार व्यवहार करता था। (३) शेष विषयों में गवर्नर अपने मन्त्रि-मण्डल की सहायता या परामर्श से काम करता था। स्वतन्त्र भारत में भी अभी शासन का यन्त्र ठीक वैसा ही है।

मन्त्रि-मण्डल—

ब्रिटिश विधान के अनुसार प्रांतीय व्यवस्थापक मण्डल का नया संगठन होने पर गवर्नर उस दल के नेता को मन्त्रिमण्डल बनाने के लिए कहता है, जिसका प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में बहुमत हो। अगर बहुमत न हो व्यवस्थापक सभा में किसी एक दल का स्वतन्त्र तो मन्त्रिमण्डल का निर्माण करने के लिए उस दल के नेता को कहा जाता है, जो दूसरे दलों के सहयोग से (बहुमत प्राप्त करके) मन्त्रि-मण्डल बना सके। इस तरह बनाये हुए मन्त्रिमण्डल को सम्मिलित-मन्त्रिमण्डल (कोअलिशन मिनिस्टरी) कहते हैं। जब वह नेता मन्त्रिमण्डल बनाना स्वीकार कर लेता तो उससे मन्त्रियों के नाम देने को कहा जाता। मन्त्री उन्हीं व्यक्तियों में से हो सकते थे, जो प्रान्त के व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा के सदस्य होते, या जिनके छः महीने के अन्दर सदस्य बनने की आशा हो।

मन्त्रिमण्डल बनाने वाले व्यक्ति को प्रधानमंत्री (प्राइम-मिनिस्टर या प्रीमियर) कहते हैं। मन्त्रियों के काम का बँटवारा किस तरह हो, इसका निर्णय गवर्नर प्रायः प्रधान मन्त्री के परामर्श से करता है; वैसे विधान के अनुसार वह अपनी इच्छा से भी कर सकता है। जिस मन्त्री को जो मुख्य कार्य सौंपा जाता

है, उसे उस कार्य के अनुसार पुकारा जाता है—जैसे शिक्षा-मन्त्री, अर्थ-मन्त्री आदि।

किसी प्रान्त के मन्त्रियों की संख्या निर्धारित नहीं है। वे गवर्नर द्वारा चुने जाते हैं, और जब तक वह चाहता है, तब तक वे अपने पद पर बने रहते हैं। अगर कोई मन्त्री लगातार छः महीने तक प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल की किसी सभा का सदस्य न हो तो उसे इस समय के पूरा होने पर इस्तीफा देना होता है। मन्त्रियों का वेतन प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल निर्धारित करता है और जब तक वह निर्धारित न करे, उसका निश्चय गवर्नर करता है। परन्तु किसी मन्त्री का वेतन उसके कार्य-काल बदला नहीं जाता।

मन्त्रि-मण्डल का सभापति गवर्नर होता है, यह पहले बताया जा चुका है।

गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व—

गवर्नर निम्नलिखित विषयों के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी होता था—यह उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार के प्रति था, भारतीय जनता अर्थात् उसके प्रतिनिधियों के प्रति नहीं। जब कभी उसे अपने इस उत्तरदायित्व पर आघात पहुँचता हुआ प्रतीत होता था, तो वह अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार (मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध भी) कार्य कर सकता था।

१—प्रान्त या उसके किसी भाग के शान्ति-भंग का निवारण करना।

२—अल्पसँख्यकों के उचित हितों की रक्षा करना।

३—वर्तमान तथा भूतपूर्व सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों के उचित हितों की ओर ध्यान देना।

४—व्यापारिक और जातिगत भेद-भाव के कानून न बनने देना।

५—देशी नरेशों के अधिकारों और मान-मर्यादा की रक्षा करना।

६—जो क्षेत्र अंशतः पृथक् या अलग किये हुए (एक्स-क्लूडेड) हों, उनके शासन और शान्ति का प्रबन्ध करना। [कुछ तहसीले या ताल्लुके, जिनमें ख़ासकर आदिम निवासियों की बस्ती है, ऐसे क्षेत्र हैं।]

इसी विधान के अनुसार गवर्नर मंत्रियों को अपनी इच्छानुसार आज्ञा दे सकता था। यदि मंत्री उसकी आज्ञा का पालन न करें तो गवर्नर व्यवस्थापक मंडल को भंग करके, अथवा बिना भंग किये ही उन्हें त्याग-पत्र देने के लिए बाध्य कर सकता था, और उनके स्थान पर नयी नियुक्तियाँ कर सकता था। यदि गवर्नर को अपनी आज्ञा-पालन कराने के लिए उपयुक्त मंत्री न मिलें तो वह सारा शासन-कार्य अपने हाथ में ले सकता था। सन् १९४५ तक मध्यप्रान्त, बम्बई, मद्रास, बिहार, उड़ीसा और आसाम में शासन-विधान स्थगित रहा और इन प्रान्तों में सब अधिकार गवर्नरों के हाथ में रहे।

पार्लियामैंटरी सेक्रेटरी—

प्रायः प्रत्येक मंत्री की सहायता के लिए एक-एक सेक्रेटरी होता है, उसे पार्लियामैंटरी सेक्रेटरी कहते हैं। इनके वेतन और भत्ते के लिए प्रति वर्ष प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की स्वीकृति ली जाती है, क्योंकि इन पर व्यवस्थापक सभा के सदस्यों की ही नियुक्ति

की जाती है, इसलिए विधान के अनुसार यह आवश्यक होता है कि व्यवस्थापक सभा यह कानून पास करे कि सरकारी कोष से वेतन पाने के कारण कोई पार्लियामैंटरी सेक्रेटरी व्यवस्थापक सभा की सदस्यता से वंचित नहीं किया जायगा।

गवर्नर का विविध विभागों के सेक्रेटरियों से जो सम्बन्ध होता है वह मंत्रियों के द्वारा न होकर सीधा भी हो सकता है। गवर्नर उन्हे किसी विषय की जानकारी देने का आदेश कर सकता है। इस तरह कुछ खास विषयों मे ही नहीं, साधारण नित्यप्रति के शासन-कार्य मे भी गवर्नर का पूरा नियन्त्रण हो सकता है।

एडवोकेट-जनरल—

गवर्नरों के प्रान्तों मे से हरेक में एक-एक एडवोकेट-जनरल रहता है। इस पद के लिए गवर्नर अपने प्रान्त के किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करता है, जिसमे हाईकोर्ट के जज होने की योग्यता हो। एडवोकेट-जनरल प्रान्तीय सरकार को ऐसे विषयों मे परामर्श देता है, और ऐसे कानूनी कार्य करता है, जो गवर्नर समय-समय पर उसके लिए निर्धारित करे। वह उस समय तक अपने पद पर बना रहता है, जब तक कि गवर्नर चाहे और उसे इतना वेतन और भत्ता आदि मिलता है, जितना गवर्नर निश्चय करे।

सभा है, वहाँ वह व्यवस्थापक सभा कहलाती है। व्यवस्थापक सभा (असेम्बली) साधारण तौर पर पांच वर्ष रहती है, पीछे भंग हो जाती है। व्यवस्थापक परिषद् एक स्थायी संस्था होती है, जो कभी भंग नहीं होती; इसके लगभग एक-तिहाई सदस्य हर तीसरे वर्ष बदलते रहते हैं।

कौन-कौन व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकते ?—

किसी प्रान्तीय सभा की निर्वाचक-सूची में किसी व्यक्ति का नाम दर्ज नहीं किया जाता, जब तक कि वह इक्कीस वर्ष का न हो, और ब्रिटिश प्रजा न हो। जो व्यक्ति पागल हो, और न्यायालय से पागल ठहराया गया हो, वह निर्वाचक नहीं हो सकता। निर्वाचक सम्बन्धी अपराध का दोषी, तथा देश-निकाले या कैद की सजा भुगतने वाला व्यक्ति भी मत नहीं दे सकता। साधारण निर्वाचक-संघ में प्राय: हिन्दू निर्वाचक सम्मिलित होते हैं। सिक्ख, मुसलमान, एंग्लो-इंडियन, योरूपियन या भारतीय ईसाई निर्वाचक संघों में इन्हीं जतियों के व्यक्ति निर्वाचक हो सकते है, ये व्यक्ति प्राय: साधारण निर्वाचक-संघ में मत नहीं दे सकते।

स्त्रियों के मताधिकार के सम्बन्ध में यह व्यवस्था है कि जिस स्त्री का नाम उसके पति के देहान्त के समय, उसके पति की योग्यता के अधार पर निर्वाचक-सूची में दर्ज हो, उसका नाम उक्त सूची मे तब तक दर्ज रहता है, जब तक कि वह फिर विवाह न करले या उसमें ऊपर बतायी हुई कोई अयोग्यता न हो जाय। ऐसी योग्यता के आधार पर किसी आदमी की एक ही स्त्री निर्वाचक होने की अधिकारी हो सकती है।

सदस्यों की योग्यता आदि—

प्रान्तीय व्यवस्थापक-मंडल की किसी सभा का सदस्य चुने जाने के योग्य वही व्यक्ति होताहै, जिसका नाम निर्वाचक-संघ की सूची में दर्ज होता है और—

(१) जो व्यवस्थापक सभा की मेम्बरी के लिए पच्चीस वर्ष, और व्यवस्थापक-परिषद् की मेम्बरी के लिये तीस वर्ष, से कम आयु का न हो, और

(२) जिस मे विधान मे बतायी हुई कोई अयोग्यता न हो। ये अयोग्यताएँ नीचे लिखी है—

(क) वेतन पाने वाला सरकारी नौकर होना (प्रान्त के मंत्रियों की बात दूसरी है, वे सभाओं के सदस्य होते हैं)।

(ख) न्यायालय द्वारा पागल घोषित किया जाना।

(ग) ऐसा दिवालिया होना, जो बरी न किया गया हो।

(घ) निर्वाचन-सम्बन्धी अपराध का दोषी होना।

(च) किसी दूसरे अपराध में दो वर्ष से अधिक की कैद या देश-निकाले की सज़ा पाना।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति, सदस्य के रूप में, किसी सभा में बैठे और मत दे, जिसमें सदस्य होने की योग्यता न हो, या जो सदस्य होने के अयोग्य ठहराया गया हो तो जितने दिन वह बैठेगा, और मत देगा उस पर प्रतिदिन पाँच सौ रुपये के हिसाब से जुर्माना होगा।

सदस्यों के विशेषाधिकार, वेतन और भत्ता—

जहाँ तक कोई सदस्य इन सभाओं के नियमों की अवहेलना

न करे, उसे इन सभाओं में भाषण देने की स्वतंत्रता है। किसी सदस्य पर इन सभाओं या इन की कमेटियों में भाषण या मत देने के कारण, या सभाओं के आदेशानुसार उनकी रिपोर्ट या विवरण प्रकाशित करने के कारण, कोई क़ानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती। सदस्यों के अन्य रियायती अधिकार वे हैं जो समय समय पर व्यवस्थापक मंडल के कानून द्वारा निर्धारित हों।

सदस्यों को दिया जाने वाला वेतन और भत्ता व्यवस्थापक मंडल निश्चित करता है। जब तक व्यवस्थापक मंडल निश्चय न करे, सदस्यों को भत्ता उसी प्रकार दिया जायगा, जैसा सन् १९३५ के विधान के अमल में आने से पहले उस प्रान्त की व्यवस्थापफ परिषद् के सदस्यों को दिया जाता था।

प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का संगठन—

आगे दिये हुए नक़शे से यह ज्ञात हो जायगा कि विविध प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं में किस-किस निर्वाचक-संघ के कितने सदस्य होते हैं। सब प्रान्तो ने हरिजनों (अछूतों) के लिये कुछ स्थान सुरक्षित हैं। सब हरिजन निर्वाचक एक प्रारम्भिक निर्वाचन में भाग लेकर उसमे से प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मेदवार चुनते हैं। जो चार व्यक्ति इस चुनाव में सबसे अधिक मत पाते हैं, वे ही साधरण निर्वाचक-संघ के उम्मेदवार माने जाते हैं; दूसरे व्यक्ति हरिजनों की ओर से उम्मेदवार नहीं हो सकते। योरुपियन, एंगलो-इंडियन और भारतीय ईसाई सदस्यों की जगहों को छोड़कर, शेष सब साम्प्रदायिक या जातिगत जगहों को शहरी और देहाती निर्वाचक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है।

अविभाजित भारत में प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं का संगठन

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
												स्त्रियाँ					
प्रान्त	साधारण	पिछड़े हुए क्षेत्र और जातियाँ	सिक्ख	मुसलमान	एंग्लो इण्डियन	योरोपियन	भारतीय ईसाई	व्यापार, उद्योग और खनिज	ज़मींदार	विश्वविद्यालय	मज़दूर	साधारण	सिक्ख	मुसलमान	एंग्लो इंडियन	भारतीय ईसाई	योग
मदरास	१४६	१	...	२८	२	३	८	६	६	१	६	६	..	१	..	१	२१५
बम्बई	११४	१	...	२९	२	३	३	७	२	१	७	५	...	१	...	...	१७५
बङ्गाल	७८	...	...	११७	३	११	२	१९	५	२	८	२	...	२	१	..	२५०
संयुक्तप्रान्त	१४०	...	...	६४	१	२	२	३	६	१	३	४	...	२	...	...	२२८
पंजाब	४२	...	३१	८४	१	१	२	१	५	१	३	१	१	२	..	...	१७५
बिहार	८६	७	...	३९	१	२	१	४	४	१	३	३	...	१	...	...	१५२
मध्यप्रांत-बरार	८४	१	...	१४	१	१	...	२	३	१	२	३	...	...	..	...	११२
आसाम	४७	९	...	३४	...	१	१	११	...	...	४	१	...	...	...	..	१०८
प० सीमाप्रांत	९	...	३	३६	...	...	...	...	२	...	...	...	...	...	..	...	५०
उड़ीसा	४४	५	...	४	...	...	१	१	२	...	१	२	...	...	...	...	६०
सिन्ध	१८	...	...	३३	...	२	...	२	२	...	१	१	...	१	...	...	६०

निर्वाचक कौन हो सकता है ?—

मताधिकार का मुख्य आधार सम्पत्ति है,। शिक्षा सम्बन्धी तथा सैनिक योग्यता के आधार पर भी मताधिकार दिया गया है। जिन व्यक्तियों में निर्वाचक की पहले बतायी हुई अयोग्यता न हो और जिनमें खास कर नीचे लिखी योग्यताएं हों, वे ही प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा के किसी निर्वाचक-संघ की सूची में अपना नाम दर्ज करा सकते हैं। भिन्न भिन्न प्रान्तों में इस योग्यता से सम्बन्ध रखने वाले नियमों में कुछ भेद है। स्थानाभाव से हमने यहाँ पंजाब के ही मुख्य मुख्य नियम दिये है।

१— जो निर्वाचक-संघ की सीमा के अन्दर रहने वाले हों,

२—(क) जो भारत-सरकार को आय-कर देते हों; या

(ख) जो म्युनिसिपेलिटी या छावनी को कम-से-कम ५०) रु० प्रत्यक्ष कर देते हों, या

(ग) जो म्युनिसिपेलिटी या जिला-बोर्ड को कम-से-कम २) रु० हैसियत-कर, पेशा-कर या कोई अन्य कर देते हों, या

(घ) जो ५) या अधिक वार्षिक मालगुज़ारी या १०) रु० या अधिक वार्षिक लगान देते हों; या

(च) जिसके पास गतवर्ष में कम-से-कम दो हज़ार रुपये की या कम-से-कम साठ रुपये वार्षिक किराये वाली स्थायी सम्पत्ति रही हो (इस सम्पत्ति में मालगुज़ारी वाली ज़मीन नहीं गिनी जाती); या

(छ) जो जैलदार, इनामदार, सफैदपोश या लम्बरदार हो; या
(ज) जो अपर प्राइमरी क्लास पास हो, या
(झ) जो भारतीय सेना के पेन्शन पाने वाले या नौकरी छोड़ चुकने वाले अफसर या सिपाही हों।

किसी स्त्री का नाम निर्वाचक-सूची में निम्नलिखित दशा मे ही दर्ज किया जाता है—(१) अगर वह भारतीय सेना के अफसर या सिपाही की पेन्शन पाने वाली विधवा माता हो, या (२) अगर उसे लिखना-पढ़ना आता हो, या (३) अगर उसके पति मे निर्धारित आर्थिक योग्यता हो (यह योग्यता पहले बतायी हुई साधारण योग्यता से कुछ अधिक निर्धारित की गयी है)।

निर्वाचक होने के लिए ये योग्यताएँ साधारण तथा जातिगत निर्वाचक-संघों के विषय की हैं। कई प्रान्तों मे विशेष निर्वाचक-संघों की भी व्यवस्था है, जैसे (क) व्यापार और उद्योग, (ख) ज़मींदार, (ग) विश्वविद्यालय, और (घ) मज़दूरों के। इनके निर्वाचकों के लिये अन्य योग्यताएँ है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों का संगठन—

अगले पृष्ठ में दिये हुए नक्शे से यह ज्ञात हो जायगा कि प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों में किस-किस निर्वाचक-संघ के कितने-कितने सदस्य होते हैं। पहले बताया जा चुका है कि ये परिषदें कौन-कौन से छः प्रान्तों में है। यद्यपि प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल साधारणतया नौ वर्ष है, तथापि हरेक परिषद् के प्रथम संगठन के समय उस प्रान्त का गवर्नर कुछ सदस्यों का कार्य-काल घटाकर ऐसी व्यवस्था करता है कि प्रत्येक प्रकार के सदस्यों में से लगभग एक-तिहाई तीन-तीन वर्षके बाद अवकाश ग्रहण करते जायँ।

अविभाजित भारत में प्रान्तीय व्यवस्थापक परिषदों का संगठन

प्रान्त	साधारण	मुसलमान	योरुपियन	भारतीय ईसाई	व्यवस्थापक सभा	गवर्नर द्वारा नामज़द	योग
मदरास	३५	७	१	३	...	८ से कम नहीं १० से अधिक नहीं	५४ से कम नहीं ५६ से अधिक नहीं
बम्बई	२०	५	१	...		३ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	२६ से कम नहीं ३१ से अधिक नहीं
बंगाल	१०	१७	३		२७	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	६३ से कम नहीं ६५ से अधिक नहीं
संयुक्तप्रान्त	३४	१७	१	..	...	६ से कम नहीं ८ से अधिक नहीं	५८ से कम नहीं ६० से अधिक नहीं
बिहार	६	४	१	..	१२	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२६ से कम नहीं ३० से अधिक नहीं
आसाम	१०	६	२	...	...	३ से कम नहीं ४ से अधिक नहीं	२१ से कम नहीं २२ से अधिक नहीं

निर्वाचकों की योग्यता—

परिषदों के सदस्यों के निर्वाचक वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जो निर्वाचक-संघ के क्षेत्र की सीमा के अन्दर रहने वाले हों और जिनमे आगे दी हुई अन्य निर्धारित योग्यताएँ हों। इन योग्यताओं का परिणाम भिन्न-भिन्न प्रांतों मे पृथक-पृथक है। स्थानाभाव से हम यहाँ संयुक्तप्रान्त के निर्वाचकों की ही मुख्य-मुख्य योग्यताओं का उल्लेख करते है। पहले बताया जा चुका है कि पंजाब मे व्यवस्थापक परिषद् नहा है, इसलिए वहाँ की योग्यताओं को देने का प्रश्न ही नही हो सकता। संयुक्त प्रान्त मे नीचे लिखी योग्यता वाले व्यक्तियों को निर्वाचकों की सूची मे नाम दर्ज कराने का अधिकार है—

साधारण योग्यता—

(अ) गत वर्ष मे चार हज़ार या अधिक पर आय-कर (इनकमटैक्स) देना, या (आ) दीवान बहादुर, खान बहादुर, राय बहादुर, राव बहादुर या इनसे ऊँची पदवी प्राप्त होना, या (इ) २५०) रु० या अधिक मासिक पेन्शन पाना, या (ई) निम्नलिखित पदों पर रह चुकना या होना—भारत की किसी व्यवस्थापक सभा का गैर-सरकारी सदस्य, किसी विश्वविद्यालय का चान्सलर, फैलो, कोर्ट या सेनेट का सदस्य; संघ-न्यायालय, हाईकोर्ट या चीफ़ कोर्ट का न्यायाधीश, किसी म्युनिसिपैलिटी, या जिला-बोर्ड का गैर-सरकारी सभापति, या (उ) एक हज़ार या अधिक सालाना मालगुज़ारी देना या इतनी मालगुज़ारी माफी की जमीन का मालिक होना, या (ऊ) १५००) या अधिक सालाना लगान देना।

स्त्रियों सम्बन्धी योग्यता—

प्रत्येक ऐसी स्त्री को मताधिकार हैं, जिसके पति मे निम्न-लिखित योग्यताएँ पाई जावें-(क) गत वर्ष मे दस हज़ार रुपये या अधिक पर आय-कर देना या (ख) पांच हज़ार रुपये या अधिक सालाना मालगुजारी देना, या (ग) दीवानबहादुर, खानबहादुर, रायबहादुर, रावबहादुर या इनके ऊँची पदवी प्राप्त होना; या (घ) अढ़ाई सौ रुपये या अधिक मासिक पेन्शन पाना।

दलित जातियों सम्बन्धी योग्यता—

(क) आय-कर देना या (ख) २००) या अधिक सालाना मालगुज़ारी देना, या (ग) पॉच सौ रुपये या अधिक सालाना लगान देना, या (घ) गवर्नर-जनरल से कोई पद प्राप्त करना।

यह प्रत्यक्ष है कि इन परिषदों के निर्वाचकों की योग्यता का आधार उच्च आर्थिक स्थिति अथवा उच्च पदों वाली सरकारी नौकरियां या उपाधियॉ हैं। इसलिए इन परिषदों के निर्वाचित सदस्य सर्वसाधारण के प्रतिनिधि न होकर थोड़े से निर्वाचकों का ही मत प्रकट करने वाले होते हैं। फिर इन परिषदों मे नामजद सदस्यों का होना भी बहुत खटकता है। इसके अलावा बंगाल और बिहार की व्यवस्थापक परिषदों मे इन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं द्वारा चुने हुए सदस्यों के होने से इनमे अप्रत्यक्ष चुनाव को स्थान दिया जाता है, जो आधुनिक राजनैतिक भावों से मेल नहीं खाता। इस प्रकार इन सभाओं के संगठन की पद्धति मे कई दोष हैं, जिन्हें दूर किये जाने की आवश्यकता है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों की दोनों सभाओं—व्यवस्थापक सभाओं और व्यवस्थापक परिषदों—का संगठन बताया जा चुका है। अब हम उनकी कार्य-पद्धति का विचार करेंगे।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का अधिवेशन---

पहले बताया जा चुका है कि किन प्रान्तों में एक-एक और किन प्रान्तों में दो-दो सभाएँ हैं। व्यवस्थापक मंडल की सभा या सभाओं का प्रतिवर्ष कम-से-कम एक अधिवेशन होता है। गवर्नर अधिवेशन का समय और स्थान निश्चित करता है। वह सभाओं का कार्य-काल बढ़ा सकता है, और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा (असेम्बली) को भंग कर सकता है। अधिवेशन साधारणतया दिन के ग्यरह बजे से पांच बजे तक होते हैं। आरम्भ में प्रश्नों के उत्तर दिये जाते है। सभाओं के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं—सरकारी और गैर-सरकारी। गैर-सरकारी काम के लिए गवर्नर कुछ दिन निर्धारित कर देता है, दूसरे दिनों में सरकारी काम होता है। अगर किसी समय प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा की मीटिंग में, कुल सदस्यों के छठे भाग से कम उपस्थित हों, या परिषद् की मीटिंग में दस सदस्यों से कम हों तो सभापति को सभा की कार्यवाही उस समय तक स्थगित कर देनी चाहिए, जब तक कि ऊपर लिखी कमी दूर न हो जाय। काम प्रायः अंगरेजी भाषा में होता है, अंगरेजी न जानने वाले सदस्य अपने प्रान्त की प्रधान भाषा में भाषण कर सकते हैं। प्रत्येक विषय का निर्णय सदस्यों के बहुमत से होता है, दोनों ओर समान मत होनें पर उसका निर्णय सभापति के मत से होता है।

सभाओं के पदाधिकारी—

प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा अपने सदस्यों में से एक सभापति, और एक उप-सभापति चुनती है। इन्हे क्रमशः स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर कहा जाता है। जब ये व्यवस्थापक सभा के सदस्य न रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ता है। इन्हे प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जाता है। परिषद् के सभापति और उप-सभापति को क्रमशः प्रेसीडेन्ट और डिप्टी प्रेसीडेन्ट कहते हैं। जब व्यवस्थापक सभा और परिषद् दोनों का संयुक्त अधिवेशन होता है तो उसमे सभापति व्यवस्थापक परिषद् का प्रेसीडेन्ट होता है।

प्रत्येक मंत्री को और एडवोकेट-जनरल को व्यवस्थापक सभा में, और यदि उस प्रान्त में व्यवस्थापक परिषद् भी हो तो किसी भी सभा में और दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में बोलने और कार्यवाही मे भाग लेने का अधिकार होता है। मन्त्री उस सभा मे मत दे सकते हैं, जिसके वे सदस्य हों।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल का कार्य-क्षेत्र—

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डल उन विषयों के सम्बन्ध में कानून बना सकते हैं, जो प्रान्तीय सरकारों को दिये गये हैं— उदाहरणतया (१) सार्वजनिक शान्ति (सेना छोड़ कर), (२) प्रान्तीय अदालतें, (३) प्रान्तीय सरकारी नौकरियाँ, वेतन और भत्ता (४) प्रान्तीय निर्माण कार्य, भूमि और इमारतें (५) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ, (६) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल, जन्म-मृत्यु का लेखा, (७) शिक्षा, (८) जल-प्रबन्ध,

आबपाशी, और जल से पैदा होने वाली शक्ति, (६) कृषि, पशु-चिकित्सा, (१०) मालगुज़ारी, जंगल, खान, तेल के कुएँ, (११) उद्योग धन्धों की उन्नति, (१२) नाटक, थियेटर और सिनेमा, (१३) आबकारी, (१४) व्यापार और पेशे पर कर, मनोरञ्जन और विलासिता पर कर, (१५) स्टाम्प, अदालतों की फ़ीस, प्रान्तीय विषयों सम्बन्धी फ़ीस आदि।

अधिकारों की सीमा—

कुछ विषयों के प्रस्ताव या संशोधन गवर्नर-जनरल की पूर्व-स्वीकृति बिना और कुछ विषयों के प्रस्ताव या संशोधन गवर्नर की पूर्व-स्वीकृति बिना उपस्थित नहीं किये जा सकते। किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को ऐसा कानून बनाने का अधिकार नहीं है, जिसका प्रभाव ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग के लिए पार्लियामैंट के कानून बनाने के अधिकार पर पड़े। या जिसका सम्बन्ध सम्राट् से या भारत-मंत्री के बनाए हुए विषयों से, या गवर्नर या गवर्नर-जनरल के बनाये हुए नियमों से हो।

व्यवस्थापक मंडलों का कार्य—

प्रत्येक प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के तीन कार्य हैं—

(१) शासन-कार्य की जांच करने के लिए आवश्यक प्रश्न पूछना और प्रस्ताव करना।

(२) कानून बनाना।

(३) सरकारी आय-व्यय निश्चित करना।

प्रश्नों, प्रस्तावों और कानून बनाने के सम्बन्ध में नियम उसी प्रकार के हैं, जैसे भारतीय व्यवस्थापक मंडल के सम्बन्ध में हम

पहले लिख आये हैं। भारतीय व्यवस्थापक मंडल में, जिस तरह का अधिकार गवर्नर-जनरल को है वैसा अधिकार प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों में गवर्नर को है।

प्रान्तीय आय-व्यय सम्बन्धी नियम—

फरवरी मास में गवर्नर प्रतिवर्ष अपने प्रान्त के व्यवस्थापक मंडल के सामने आगामी वर्ष के अनुमानित आय-व्यय का नक्शा उपस्थित करता है। उसमे दो प्रकार की मदों की रक़में अलग-अलग दिखायी जाती हैं—(१) जिन पर प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का मत लिया जाता है, और (२) जिन पर मत नहीं लिया जाता। करों पर तथा व्यय के लिए की जाने वाली मांग के प्रस्तावों पर व्यवस्थापक परिषद् का मत नहीं लिया जाता।

व्यय की नीचे लिखी मदों पर व्यवस्थापक सभा को मत देने का अधिकार नहीं है :—

(क) गवर्नर का वेतन और भत्ता तथा उसके कार्यालय का निर्धारित व्यय।

(ख) प्रान्तीय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मन्त्रियों, हाईकोर्ट के जजों और एडवोकेट-जनरल का वेतन और भत्ता।

(घ) पृथक् किये हुए क्षेत्रों का शासन सम्बन्धी व्यय।

(च) अदालती निर्णयों के अनुसार होने वाला व्यय।

(छ) अन्य व्यय जो शासन-विधान या किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो। जैसे इंडियन सिविल सर्विस या इंडियन

भी कानून बना सकता है। जब उसे अपना उत्तरदायित्व पालन करने के लिए किसी कानून बनाने की आवश्यकता प्रतीत हो तो वह अपना संदेश भेजकर सभा या सभाओं को तत्कालीन परिस्थिति का परिचय करावेगा और वह या तो उसी समय 'गवर्नर का कानून' बना देगा या अपने संदेश के साथ प्रस्ताव का मसविदा लगा देगा और एक मास बाद 'गवर्नर का कानून' बनायेगा।

पृथक् या अलग किये हुए (एक्सक्लूडेड) क्षेत्रों पर कोई कानून उस समय तक लागू नहीं होता, जब तक कि गवर्नर सार्वजनिक सूचना द्वारा ऐसी हिदायत न करे। गवर्नर इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में नियम बना सकता है और उसके नियम इन क्षेत्रों सम्बन्धी कानूनों को रद्द या संशोधित कर सकते है। ये नियम गवर्नर जनरल के सामने उपस्थित किये जायेंगे और उसकी स्वीकृति होने तक इन पर कोई अमल न होगा।

विधानात्मक शासन न चलने पर कार्य में लाये जाने वाले नियम—

यदि किसी समय गवर्नर को यह निश्चय हो जाय कि मौजूदा हालत मे प्रान्तीय शासन का कार्य इस विधान के अनुसार नहीं चल सकता तो वह घोषणा निकाल कर यह सूचित कर सकता है कि (क) अमुक कार्य वह स्वयं अपनी इच्छा से करेगा या (ख) प्रान्तीय संस्थाओं या अधिकारियों के सब या कुछ अधिकारों का वह स्वयं उपयोग करेगा। इस घोषणा मे इसको अमल मे लाने के लिए आवश्यक नियमों का उल्लेख किया जा सकता है। हाँ,

गवर्नर हाईकोर्ट के अधिकार नहीं ले सकता, और न इस न्यायालय सम्बन्धी शासन-विधान के किसी नियम को स्थगित कर सकता है।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, सन् १६३६ से सन् १६४६ तक मध्यप्रान्त, संयुक्तप्रान्त, बम्बई, मद्रास, आसाम, बिहार और उड़ीसा में व्यवस्थापक मंडलों का कार्य स्थगित रहा, और गवर्नरों द्वारा शासन हुआ।

तेरहवाँ अध्याय

ज़िले का शासन

ब्रिटिश भारत मे गवर्नरों और चीफ-कमिश्नरों के कुल मिला कर १७ प्रान्त थे। विभाजन के बाद भारत मे गवर्नरों के प्रान्तों की सख्या ६ और चीफ-कमिश्नरों के प्रान्तों की संख्या ५ है। इन प्रान्तों मे से मद्रास प्रान्त को छोड़ कर शेष सब में कुछ-कुछ कमिश्नरी, और हरेक कमिश्नरी मे कुछ जिले हैं। मद्रास प्रान्त में कमिश्नरी नहीं है केवल ज़िले ही हैं। कमिश्नरी के प्रधान अधिकारी को कमिश्नर कहते हैं।

शासन-व्यवस्था में जिले का महत्व—

प्राय: हरेक कमिश्नरी मे तीन या अधिक जिले होते हैं। कोई ज़िला छोटा होता है, कोई बड़ा। अनुमानतः ज़िले का क्षेत्रफल चार हज़ार वर्गमील और आबादी नौ लाख है। ब्रिटिश भारत में कुल ज़िले २३० थे। राज्य की कल जैसी एक जिले में चलती दिखाई देती है, बहुत-कुछ वैसी ही दूसरे जिलों में चलती है। जैसे अफ़सर एक ज़िले में काम करते हैं, वैसे ही दूसरे ज़िलों में काम करते हैं। ज़िले के अधिकारियों से बहुत से आदमियों को काम पड़ता है। उनके व्यवहार को देखकर ही साधारण आदमी

यह अनुमान किया करते हैं, कि राज्यप्रबन्ध कैसा है। इस प्रकार देश के शासन-प्रबन्ध में ज़िले के शासन का बड़ा महत्व है।

ज़िलाधीश; उसके शासन सम्बन्धी अधिकार—

प्रत्येक ज़िले के प्रधान अफसर को ज़िलाधीश कहते हैं। उसे पञ्जाब और मध्यप्रान्त आदि कुछ प्रान्तों मे डिप्टी-कमिश्नर कहते हैं, और बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बिहार आदि शेष प्रान्तों में कलेक्टर कहते हैं। 'कलेक्टर' का अर्थ है—वसूल करने वाला। ज़िलाधीश को कलेक्टर इसलिये कहा जाता है कि उस पर ज़िले की मालगुज़ारी वसूल करने की ज़िम्मेवारी होती है। वह मालगुज़ारी की रकम को घटा-बढ़ा नहीं सकता। भूकम्प, अकाल या महामारी आदि की अवस्था में वह प्रान्तीय सरकार से मालगुज़ारी घटाने की या किसानों को सरकारी सहायता देने की सिफारिश करता है। मालगुज़ारी वसूल करने के सिलसिले में वह ज़मींदारों और किसानों के झगड़ों का फ़ैसला करता है। वह ज़िले भर के छोटे-बड़े सब आदमियों के सम्पर्क में आता है और वह ज़िले में सरकार का प्रतिनिधि माना जाता है। ज़िले की पुलिस, आबपाशी, सड़कें, इमारतें, खेती, व्यवसाय, अस्पताल आदि विभागों के सरकारी कर्मचारी उसकी सलाह से ही सब काम करते हैं। ज़िलाधीश को म्युनिसिपेलिटियों तथा ज़िला-बोर्डों की देख-रेख का अधिकार है। ज़िले के किन-किन स्थानों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिए, इस का निश्चय करने में उसी की राय प्रामाणिक मानी जाती है। ज़िले में शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई आदि जिस बात का प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार कराना, और हरेक बात की रिपोर्ट ऊंचे अधिकारियों के पास भेजना उसी का

कर्तव्य है। जिले की भीतरी हालत जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों मे भी दौरा करना होता है। क्योंकि उसका संबंध एक ओर जनता से, और दूसरी ओर सब सरकारी विभागों के अधिकारियों से होता है, इस लिए जिस काम में उसकी रुचि होती है, उसे वह आसानी से करा सकता है। अपने ज़िले में सुख शान्ति रखना उसका काम है। उसे फौजदारी मुक़द्मों का फैसला करने का भी अधिकार होता है।

न्याय-सम्बन्धी अधिकार:—

जिलाधीश, ज़िला-मजिस्ट्रेट की हैसियत से ज़िले भर की अदालतों का निरीक्षण करता है। जिले में जितने मजिस्ट्रेट होते हैं, वे सब उसकी अधीनता मे काम करते है। उसे अव्वल दर्जे की मजिस्ट्रेटी के अधिकार होते है, वह एक अपराध पर दो साल तक की कैद और एक हजार रुपये तक का जुर्माना कर सकता है। ज़िले की पुलिस पर उसका नियन्त्रण रहता है; इसलिए वह चाहे जिस आदमी पर मुकद्मा चलवा सकता है। जिस आदमी के बारे में पुलिस को आशंका होती है; उसकी गिरफ्तारी के लिए वह जिलाधीश की अनुमति ले सकता है। जब ज़िलाधीश (या उसके सहायक या अफसर) पुलिस द्वारा चलाए हुए ऐसे मुकद्मों का फैसला करता है तो मानों वादी या मुद्दई (मुक़द्मा चलाने वाला) ही न्यायाधीश का काम करने लगता है। ऐसी दशा मे न्याय-कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक न होना, और पुलिस का पक्ष लिया जाना स्वाभाविक ही है। इस लिए देश मे बहुत समय से यह माँग होती आ रही है कि शासन और न्याय-कार्य अलग-अलग हों, ज़िलाधीश और उसके अधीन पदाधिकारी मजिस्ट्रेट का काम न करें। फ़ौज-

दारी मुकद्मों का फैसला दीवानी मुकदमों की तरह मुन्सिफ किया करें, जो कि उसके अधीन नहीं होते। ऐसा होने से यह भी लाभ होगा कि ज़िलाधीशों को अपने दूसरे कामों के लिए अधिक अवकाश मिल सकेगा, और वह उन्हें अच्छी तरह कर सकेंगे।

ज़िले के अन्य पदाधिकारी—

ज़िले में सरकार की ओर से कई तरह के काम होते हैं, जैसे शान्ति रखना, झगड़ों का फ़ैसला करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना; रोगियों का इलाज करना, म्युनिसिपेलिटियों और ज़िला-बोर्डों की निगरानी करना जेलख़ाना, स्कूलों का नरीक्षण करना आदि। इन कार्यों के लिए ज़िले में कई एक अफ़सर रहते हैं—जैसे पुलिस का सुपुरिन्टैन्डेंट या कप्तान स्कूलों का डिप्टी-इन्पेक्टर, अस्पतालों का सिविल-सर्जन जेलों का सुपरिन्टेन्डेन्ट, निर्माण-कार्य (नहर या सड़कों) का एग्ज़ीक्यूटिव एंजिनियर और दीवानी मुकदमों का फ़ैसला करने के लिए ज़िला-जज या मुन्सिफ आदि। ये अधिकारी अपने जुदा-जुदा विभागों के ऊंचे पदाधिकारियों के अधीन होते हैं परन्तु शासन के विचार से, ज़िला जज और मुन्सिफों को छोड़कर बाकी सब पर ज़िलाधीश ही प्रधान होता है। ज़िले का हाकिम वही कहा जाता है।

ज़िले के भाग और उनके अधिकारी—

शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से किसी ज़िले के जो हिस्से होते हैं, उन्हे सबडिविज़न कहते है। हरेक सबडिविज़न एक डिप्टी-कलेक्टर अथवा एक्स्ट्रा-असिस्टेंट-कमिश्नर के अधीन रहता है। अपनी

अपनी अमलदारी मे सबडिविज़नो के अफसरों के अधिकार कुछ-कुछ उसी तरह के होते हैं, जैसे ज़िलाधीश.या डिप्टी-कमिश्नर के। इन्हें एस० डी० ओ० भी कहते है, यह सब-डिविज़न-ऑफीसर का संक्षिप्त रूप है।

बंगाल और बिहार को, तथा संयुक्तप्रन्त के कुछ हिस्से को छोड़कर अन्य स्थानों मे सबडिविजनों के भागों का नाम तहसील या ताल्लुक है। पंजाब और संयुक्तप्रान्त में तहसील का अफसर तहसीलदार कहलाता है। तहसील प्रजा और सरकार के बीच मानों मध्यस्थ होता है, वह प्रजा की बात सरकार को, और सरकार की बात जनता को बताता रहता है। वह अपने इलाके के माल और फौजदारी के मुकदमों का फैसला करता है, गॉव मे दौरा करता है और जिला-बोर्ड का भी काम देखता है। इसके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, कानूनगो, रेवेन्यूइन्सपेक्टर आदि होते है। एक तहसील में एक या अधिक परगने, और कई सर्कल या हलके होते हैं। परगने के अधिकारी को हाकिम-परगना कहते है। एक तहसील में कितने ही गाँव होते हैं।

गाँव के अधिकारी—

गॉव के मुख्य अधिकारी लम्बरदार (पटेल) चौकीदार और पटवारी होते हैं, ये तहसीलदार की अधीनता में काम करते हैं।

लम्बरदार अपने गाँव का सब से बड़ा अधिकारी होता है। यह ज़मींदारों से मालगुज़ारी और आबपाशी की रकम इकट्ठा करके तहसील में भेजता है वहॉ से वह जिले में भेजी जाती है।

चौकीदार पहरा देता या चौकसी करता है। वह हर सप्ताह पुलिस के थाने में यह सूचना देता है कि गाँव में कितनी मौतें हुईं, और कितने बच्चों का जन्म हुआ। वह वहाँ चोरी, लूट-मार और दूसरे अपराधों की रिपोर्ट भी करता है चौकीदारों का अफसर 'मुखिया' कहलाता है।

पटवारी अपने हलके के किसानों और जमीदरों के हक-हकूक के कागज रखता है और उनमें जो परिवर्तन होते हैं उसकी रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतों के नक्शे और विकट खतौनी आदि रखता है।

बंगाल, बिहार में, तथा संयुक्तप्रान्त के कुछ हिस्सों में तहसीलदार लम्बरदार और पटवारी आदि कर्मचारी नहीं होते सबडिविजन अफ़सर के नीचे थानेनार तथा एक-एक ग्राम-समूह के लिए दफ़्तर, और हरेक गाँव में चौकीदार रहते हैं।

विशेष वक्तव्य—

ध्यान देने की वात यह है कि जब राज्य में हरेक कर्मचारी अपने-अपने कर्तव्य का अच्छी तरह पालन करता है, और लोक-सेवा का भाव रखता है तभी शासन कार्य अच्छी तरह होता है। छोटे-बड़े सब अधिकारियों को चाहिए कि राज्य अर्थात् जनता की उन्नति का बराबर ध्यान रखें, लोगों के विश्वास-पात्र बनें और उनका सहयोग प्राप्त करें। सरकारी तथा गैर-सरकारी लोगों के हित अलग-अलग नहीं हैं। सब का स्वर्थ इसी में है कि राज्य में सुख-शान्ति रहे और जनता का आर्थिक, नैतिक तथा मानसिक सब प्रकार का विकास हो।

—

चौदहवाँ अध्याय

देश-रक्षा या सेना

पिछले अध्यायों में भारतवर्ष की शासन-पद्धति के सम्बन्ध में विचार कर चुकने पर हमें अब यहां सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य-मुख्य कार्यों का विचार करना है। पहले बताया जा चुका है कि सरकार का एक खास काम देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना है। रक्षा करने के लिए सेना रखी जाती है। आम तौर से यह माना जाता है कि सेना के बिना स्वराज्य की रक्षा असम्भव है। स्वाधीन होने से पहिले बहुत से आदमी भारतवर्ष को स्वराज्य के लिए इसी आधार पर अयोग्य ठहराया करते थे कि यहाँ भारतवासियों की अपनी प्रबल सेना नहीं थी। अब इन बातों पर विचार करना सर्वथा अनावश्यक है। हमें केवल यही कहना है कि आजकल की परिस्थिदि मे प्रत्येक राज्य के लिए सेना का बड़ा महत्व होता है। इस अध्याय मे हम भारतवर्ष की सैनिक व्यवस्था का वर्णन करते है।

सेना के भेद—

इस समय यहाँ सेना के नीचे लिखे भेद हैं—

१—स्थल सेना—

(क) स्थायी सेना।

(ख) सहायक सेना।

(ग) इंडियन टेरीटोरियल फ़ोर्स (भारतीय प्रादेशिक सेना)

(घ) इंडियन स्टेट फ़ोर्स (देशी-राज्य-सेना)।

२—जल सेना।

३—हवाई-सेना।

स्थल सेना—

भारतवर्ष पर प्राचीन काल में सब आक्रमण पश्चिमोत्तर दिशा से हुए। वे आक्रमण ज़मीन या खुश्की की तरफ से होने के कारण यहाँ स्थल सेना का बड़ा महत्व रहा है। इसीलिए हम पहले इसी का विचार करते हैं। सतरहवीं सदी मे अंगरेज़ और दूसरे योरुपियन भारतवर्ष आये। उस समय यहाँ प्रायः मुग़ल सम्राट् देश की रक्षा सम्बन्धी व्यवस्था करते थे। अठारहवीं सदी में उनकी शक्ति क्षीण होने लगी। देश के भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग राज-सत्ताएं स्थापित हो गयीं और उनका आपस में संघर्ष होने लगा। योरुपियनों ने भी अपनी अलग सेना रखने का निश्चय किया। हिन्दुस्तानियों को पलटनों में भरती करके योरुपीय ढंग से लड़ना सबसे पहले फ्राँस वालों ने सिखाया; पीछे अंगरेज़ भी ऐसा करने लगे। सन् १७४८ में मेजर लारेन्स ने भारतीय सिपाहियों को भरती करके, कम्पनी की बस्तियों की फ्राँसीसियों से रक्षा की।

सन् १७८१ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पार्लियामेंट के एक्ट से भारतवर्ष मे सिपाही भरती करने और फ़ौज रखने का अधिकार मिल गया, और बम्बई, बंगाल तथा मदरास अहातों

(प्रेसीडेन्सियों) में अलग-अलग सेना रहने लगी। इनके अलावा देशी रियासतें भी अपने-अपने खर्च से कुछ पलटनें रखती थीं। तोपखाना अक्सर भारतीयों के ही हाथ में रहता था।

सेना के संगठन मे समय-समय पर परिवर्तन होता रहा। सन् १८५७ की भारतीय राजक्रान्ति के बाद इसमें विशेष परिवर्तन किया गया। अब सेना प्रान्तीय सरकारों के अधीन नहीं रहती, सारी सेना भारत-सरकार की निगरानी में रहती है। कुछ सेना तो पूर्व और पश्चिम की सीमा के प्रान्तों में रहती है, और कुछ जहां तहां छावनियों में रहती है, जहां से ज़रूरत होने पर आसानी से इकट्ठी की जा सके। पहले सेना मे योरुपियनों की संख्या प्रायः पांचवां हिस्सा होती थी, पीछे वे एक-तिहाई रहने लगे। उस समय तोपखाना भारतीयों के हाथ मे नहीं रहता था, प्रायः अङ्गरेजों के हाथ मे रहता था।

सहायक सेना में रिज़र्व सैनिक होते हैं। ये सेना सम्बन्धी शिक्षा पाने और निर्धारित समय तक नौकरी कर चुकने के बाद अपना निजी कार्य करते रहते हैं। जब ज़रूरत होती है तब ये सेना का काम करने चले जाते हैं। इस सेना में अधिकतर अङ्ग-रेज़ या ऐंग्लो-इण्डियन भरती किये जाते थे।

'इण्डियन टेरिटोरियल फोर्स' का संगठन पिछले योरुपीय महायुद्ध के समय (१९१४-१८) से हुआ है। इसका उद्देश्य यह है कि कुछ भारतवासी अपना दूसरा कार्य करते हुए, सैनिक-शिक्षा पा लें। विश्वविद्यालयों के विद्यार्थी अपनी पढ़ाई के समय में शिक्षा पा सकें, इसके लिए भी प्रबन्ध किया गया है। ये अपने कालिज या विश्वविद्यालय की टुकड़ी या टोली मे नाम दर्ज करा

लेते हैं। विद्यालय में शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद ये सैनिक सेवा करने की जिम्मेवारी से मुक्त हो जाते हैं, जबकि दूसरे आदमियों को सैनिक शिक्षा पाने के बाद निर्धारित समय तक सैनिक सेवा करनी होती है। सैनिक शिक्षा प्राप्त करने और सैनिक सेवा करने के दिनों में हर आदमी को निर्धारित रकम मिलती है।

इंडियन स्टेट-फोर्सेज़—

वह सेना है जिसे कुछ बड़ी बड़ी देशी रियास्तें भरती करती हैं और अपने खर्च से रखती हैं। इसकी शिक्षा और कवायद केन्द्रीय अफसरों की देख-रेख में होती है। जरूरत होने पर देशी रियासतें इस सेना से भारत-सरकार की सहायता करती हैं।

जल-सेना—

सोलहवीं सदी से योरुप के राष्ट्रों ने जहाजी विद्या में उन्नति की और अपनी जल-सेना बढ़ायी। उसके बाद भारतवर्ष में आक्रमण की आशंका खास कर समुद्र की तरफ से रहने लगी और यहाँ जल-सेना की व्यवस्था करना जरूरी हो गया। जल-सेना का काम सिपाही तथा युद्ध का सामान लाना-लेजाना, समुद्र में पहरा देना समुद्री डाकुओं का दमन, बन्दरगाहों की रक्षा, और समुद्री नाप, जोख करना आदि है। पहले भारतवर्ष, ब्रिटिश सरकार को उसकी जल-सेना की सेवा के लिए हर साल कुछ धन देता था। सन् १६२६ ई० से भारतवर्ष की शाही जल-सेना संगठित की गयी ।

हवाई-सेना—

यह सेना हवाई जहाजों से बम बरसा कर शत्रु को या उसके सामान को नष्ट करती है। यह खासकर इसी जमाने में काम करने

लगी है। पर इसका महत्व बराबर बढ़ता जा रहा है। भारतवर्ष की हवाई-सेना 'रायल इंडियन एअर फोर्स (आर. आई. ए. एफ.) कहलाती है। इसके संचालक को एअर-कमॉडर कहते है। हवाई जहाजों पर बैठकर उड़ने की शिक्षा देने के लिए कुछ स्थानों में 'मिलटरी फ्लाइंग स्कूल' खोले गये है। भारतवर्ष में हवाई-सेना का उपयोग अधिकतर पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त मे होता है।

सैनिक शिक्षा—

भारतवर्ष के लिए ब्रिटिश सिपाहियों और अफसरों की शिक्षा अधिकतर इंगलैंड मे ही होती थी। उसके लिए खर्च भारतवर्ष से ही लिया जाता था। कुछ हिंदुस्थानी भी वहाँ शिक्षा पा सकते थे। अब सिपाहियों और अफसरों की शिक्षा की व्यवस्था भारत मे ही होने लगी है। देहरादून में तो सैनिक शिक्षा का कार्य वर्षो से हो रहा है। सैनिक शिक्षा सम्बन्धी कुछ बातें ऊपर 'इंडियन टेरीटोरियल फोर्स' के प्रसंग मे कही जा चुकी है। अब प्रान्तीय सरकारे भी इस ओर ध्यान दे रही हैं।

पिछले योरुपीय महायुद्ध (१६३६-४५) से पहले भारतवर्ष में कुल रेग्यूलर या स्थायी-सेना मे लगभग अढाई लाख अफसर और सिपाही थे। युद्ध के समय मे सैनिकों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई। सन् १६४२ में स्थल-सेना में लगभग बीस लाख, जल-सेना मे २०,०००, हवाई सेना मे ३०,००० और स्त्रियों की सहायक-सेना मे ८,००० व्यक्ति काम करते थे। इसके बाद इनकी संख्या और भी वढ़ी। ये अंक असाधारण अवस्था के है, पर इनसे अनुमान हो सकता है कि आवश्यकता होने पर थोड़े समय मे ही यही सैनिकों

की संख्या कहाँ तक बढ़ सकती है। फिर, जब देश मे राष्ट्रीय सरकार हो तब तो कहना ही क्या है।

सेना का प्रबन्ध—

सारी सेना का सब से ऊँचा अधिकारी जंगीलाट या कमाँडर-इन चीफ होता है। वह भारत-सरकार का एक असाधारण सदस्य होता है। उसे सलाह देने के लिए एक सभा रहती है सेना का हेडक्वार्टर (सदर मुकाम) शिमला है। उस के मुख्य कर्मचारियों के छः भाग होते हैं, जो सैनिक शिक्षा, रंगरूटों की भरती, छावनियों का प्रबन्ध, गोले बारूद और फौजी सामान तैयार करने, फ़ौजी इमारते बनाने तथा सैनिकों के इलाज आदि का कार्य करते हैं।

सैनिक व्यय—

सन् १८५७ की राज्यक्रान्ति के समय से यहाँ सैनिक व्यय प्रायः बढ़ता ही रहा है। प्रथम योरुपीय महायुद्ध (१६१४-१८) के समय यह खर्च सालाना ३२ करोड़ तक पहुँच गया था। सन् १६२१-२२ में तो सत्तर करोड़ रुपये से अधिक खर्च हुआ। यह रकम भारत-सरकार की कुल आय की आधे से अधिक थी। उस वर्ष किफायत-कमेटी नियुक्त हुई, पीछे कुछ खर्च घटा। शान्ति के समय मे यह लगभग पचास करोड़ रुपये वार्षिक होने लगा। लेकिन सेना के यंत्रीकरण की योजना अमल में आने से ख़र्च फिर बढ़ गया। सन् १६३७-३८ में किफ़ायत-कमेटी की सिफारिश के अनुसार खर्च में कमी करने की कोशिश की गई। परन्तु सन् १६३६ में द्वितीय महा-युद्ध छिड़ जाने के कारण सेना का व्यय फिर बढ़ने लगा। १६४४-४५ (युद्ध-काल)

में सेना का व्यय यहाँ २७६ करोड़ रुपये था। इस समय अभी काश्मीर का युद्ध जारी है। देश की वर्तमान स्थिति में भी अभी व्यय में किसी कमी की सम्भावना नहीं।

राष्ट्रीय मांग—

ब्रिटिश सरकार की सेना सम्बन्धी नीति से भारतीय जनता के प्रतिनिधि बहुत समय से असन्तुष्ट थे। उनकी मुख्य-मुख्य मांगें यह थीं—

१—भारतीय सेना का पूरा प्रबन्ध भारत-सरकार के हाथ में हो, जो भारतीय व्यवस्थापक मंडल के प्रति उत्तरदायी हो; अर्थात् सेना-विभाग (और उससे सम्बन्ध रखने वाला विदेश-विभाग) भारत-सरकार के अधीन हो।

२—अंगरेज़ सैनिक जितने दिन यहाँ नौकरी करें, उतने दिन का उन्हें उचित वेतन दिया जाय। उनकी शिक्षा के व्यय का भार ब्रिटिश सरकार अपने ऊपर ले, क्योंकि उनका अधिकांश लाभ इंगलैंड को ही मिलता है।

३—सेना का भारतीयकरण हो। न केवल सिपाही, सब अफसर भी जल्दी से जल्दी भारतीय ही नियुक्त होने लगें। उनकी शिक्षा आदि की यथेष्ट व्यवस्था और सुविधा हो। पहले अफसर दो तरह के होते थे—(१) जिन्हें 'बादशाह का कमीशन' दिया जाता था, और (२) जिन्हें 'वायसराय का कमीशन' दिया जाता था। 'वायसराय का कमीशन' घटिया माना जाता था, और प्रायः भारतवासियों को यही दिया जाता था, यह अनुचित था।

४—सेना उतनी ही रखी जाय, जितनी भारतवर्ष के हित के लिए आवश्यक हो। १५ अगस्त १९४७ से प्रथम सेना का अधिकांश भाग इसलिए रखा जाता था कि उससे ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा

और वृद्धि में सहायता मिले। भारतीय सैनिक दूसरे देशों को इंगलैंड के अधीन रखने में सहायक हों, यह बात भारतवासियों के स्वाधीन-प्रेम से भी मेल नहीं खाती, और उन्हें बहुत अखरती थीं। आज यह सारी स्थिति बदल चुकी है। १५ अगस्त १९४७ से भारत स्वाधीन हो गया है। ब्रिटिश सेना यहाँ से हटा ली जा चुकी है। सैनिक शिक्षा के लिये अनिवार्य कुछ ब्रिटिश अफसर शेष रह गये है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता—

देश-रक्षा के लिए सैनिक व्यवस्था का विचार ऊपर किया गया है। एक बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि विविध राज्यों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़े। हम अपने स्वार्थ को नियंत्रित रखें, दूसरे देशों के उचित स्वार्थों, हितों और स्वाधीनता का आदर करें। कोई देश दूसरे को अपने अधीन करने या व्यापार आदि के द्वारा उसका शोषण करने का विचार मन में न लावे। इसका एक उपाय यह है कि हरेक देश जहाँ तक बन सके, अपने यहाँ के तैयार माल से ही काम चलावे। जो देश विदेशी माल अधिक खपाते हैं, उन पर सभी बलवान् राष्ट्र अपना अधिकार जमाने की चेष्टा करते ह। जो देश बहुत कुछ स्वावलम्बी जीवन बिताने का निश्चय कर लेते हैं, उनसे दूसरे देशों को लाभ उठाने का अवसर कम आयेगा, और उनका स्वाधीन बना रहना अधिक स्वाभाविक होगा। इसलिए हमें सब देशों से सहयोग, मित्रता, भाई-चारे का भाव बढ़ाना चाहिये, और इसके साथ हमें स्वावलम्बन और समानता का लक्ष्य रखना चाहिये। ऐसे विचारों के प्रचार से संसार में शान्ति अधिक स्थायी होगी और लोगों की देश-रक्षा की चिन्ता कम होगी।

पन्द्रहवाँ अध्याय

शान्ति और सुव्यवस्था

[पुलिस, न्यायालय और जेल]

कानून का महत्व—

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि बाहरी आक्रमणों से राज्य की रक्षा करने के लिए सेना की व्यवस्था की जाती है। राज्य के भीतर भी शान्ति रखने की आवश्यकता होती है। कुछ लोगों का आपस में वैर-विरोध या लड़ाई-झगड़ा होता है, कुछ आदमी दूसरों को सताते हैं और उन्हें हानि पहुंचाते हैं। इन बातों को रोकने के लिए, समाज में सुव्यवस्था रखने के लिए कानून बनाने होते हैं। इन कानूनों में समय-समय पर आवश्यकतानुसार सुधार या संशोधन होता रहता है। कानून बनाने और उनमें संशोधन करने का काम व्यवस्थापक सभाएँ करती हैं। इन के बारे में पहले लिखा जा चुका है।

कानून से नागरिकों के अधिकार स्पष्ट किये जाते हैं; शासक और शासित का कार्यक्षेत्र निर्धारित किया जाता है। नागरिकों को अपने अधिकार की सीमा में रहना चाहिए, और दूसरों के

अधिकारों की रक्षा और आदर करना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरे के अधिकारों मे दखल देता हुआ मालूम होता है; उसका कानून के अनुसार विचार होता है, और अगर वह दोषी पाया जाता है तो उसे दण्ड दिया जाता है, या उसे सुधारने की कोशिश की जाती है। इस तरह अपराधियों को नियन्त्रित करके या उनका सुधार करके समाज मे शान्ति और सुव्यवस्था रखी जाती है। राज्य मे पुलिस रखने का उद्देश्य यही होता है कि देश के अन्दर शान्ति रखे और चोर डाकू आदि अपराधियों की खोज करके उन्हें न्यायालय पहुँचावे।

१ पुलिस

पुलिस का संगठन—

पुलिस का वर्तमान संगठन सन् १८६० के कमीशन की सिफारिशों के आधार पर है। इस में सन् १६०२ के कमीशन की सिफ़ारिशों के अनुसार कुछ फेर-बदल हुए है। अब हर प्रान्त में पुलिस का विभाग है, उसका सबसे बड़ा अफसर 'इन्स्पेक्टर-जनरल' कहलाता है। वह साधारण तौर से इंडियन-सिविल-सर्विस का मेम्बर होता है। उसके नीचे डिप्टी-इन्स्पेक्टर-जनरल होते हैं। ये एक-एक रेंज का नियन्त्रण करते है, जिसमें आठ-दस ज़िले होते हैं। हर जिले में एक 'पुलिस सुपरिन्टेंडेन्ट' रहता है। यह जिले की शान्ति के लिए जिला-मजिस्ट्रेट के अधीन, और अपराधियों की खोज और निवारण के लिए डिप्टी-इन्स्पेक्टर-जनरल के अधीन होता है। इसके नीचे एक या अधिक असिस्टेंट या डिप्टी-सुपरिन्टेन्डेन्ट रहते हैं।

हर ज़िला चार छः सर्कलों या हल्कों में, और हरेक हल्का ८-१० पुलिस-स्टेशनों या थानों में बंटा होता है। थाने का अनुमानित क्षेत्रफल २०० वर्गमील है; इसमें पुलिस की चौकियाँ होती है। प्रत्येक हल्का एक इन्स्पेक्टर के और थाना सब-इन्स्पेक्टर (थानेदार) के अधीन होता है। सब-इन्स्पेक्टर अपराधों की खोज तथा जाँच करता है, और अपने थाने की शान्ति का जिम्मेवार है, इन्स्पेक्टर का काम देख-रेख करना है। सब-इन्स्पेक्टर के नीचे एक हेड-कान्स्टेबल और कई कान्स्टेबल रहते हैं। थाने मे एक-एक मुन्शी या दीवान भी रहता है। उसका काम थाने की रिपोर्ट लिखना और काग़ज़ रखना है। 'ज़िले का शासन' अध्याय मे यह बताया जा चुका है कि चौकीदार अपने-अपने गाँवों की रिपोर्ट हर सप्ताह थाने मे लिखाते हैं। चोरी आदि की रिपोर्ट पाने पर थानेदार उसकी जाँच करता है। ज़िले में कुछ रक्षित या रिज़र्व पुलिस भी रहती है, इसके कुछ सिपाही हथियार-बन्द होते हैं। जब कहीं किसी थाने मे वहाँ की पुलिस काफ़ी नहीं होती, तो ज़िले की रिज़र्व पुलिस में से कुछ वहाँ भेज दी जाती है।

शहरों मे कोतवाल होते हैं। इनके अधीन कुछ पुलिस और कुछ छोटे-छोटे थाने होते है। कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर मे पुलिस का प्रधान अफ़सर कमिश्नर होता है। इसके दो या अधिक सहायक होते हैं। बड़े-बड़े शहरों में सड़कों की भीड़ का प्रवन्ध करने के लिए ट्रैफिक पुलिस के कान्सटेबल रहते हैं। रेलवे पुलिस का संगठन अलग है, उसका ज़िला-पुलिस से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पुलिस के आदमी रेलवे-स्टेशनों पर काम करते हैं तथा रेलगाड़ियों मे मुसाफ़िरों के साथ जाते हैं।

खुफिया-पुलिस—

हरेक प्रान्त में राजद्रोह, षड्यंत्र, जालसाज़ी, नकली सिक्के बनाने या डकैती आदि के बड़े अपराधों की खोज के लिए सी० आई० डी० या ख़ुफ़िया-पुलिस नाम का विभाग रहता है। इस पुलिस की कोई खास वर्दी नहीं होती। ये साधारण आदमियों जैसे कपड़े पहने रहते हैं, जिससे वे अलग पहचान में न आवें। इस पुलिस के प्रधान अफसर का दर्जा पुलिस के डिप्टी-इन्सपेक्टर जनरल के बराबर होता है। इसके अधीन कुछ इन्स्पेक्टर और सब-इन्स्पेक्टर होते हैं। इस पुलिस का लोगों पर बड़ा आतंक-सा रहता है, क्योंकि कभी-कभी भोले-भाले आदमी केवल सन्देह के आधार पर ही इसके चंगुल में फंस जाते हैं।

पुलिस का काम—

जिला-पुलिस के दो भाग हैं—सशस्त्र या हथियार बन्द और अशस्त्र या बिना हथियार वाली। हथियारबन्द पुलिस का काम सरकारी कोष का पहरा देना, खज़ाने और कैदियों के साथ जाना, रात को गश्त लगाना और पहरा देना, तथा डाकुओं के दल पर चढ़ाई करना है। इसलिए उसे फौजी ढंग पर क़वायद करना और गोली चलाना सिखाया जाता है। आसाम तथा अन्य सीमा-प्रान्तों में फौजी पुलिस ख़ास तौर से रखी जाती है। अशस्त्र पुलिस का काम जुर्माना वसूल करना, सम्मन या वारंट की तामील करवाना, सड़कों की भीड़ का बन्दोबस्त करना, आवारा कुत्तों को मारना, आग बुझाना, और अपराधियों को गिरफ्तार करना है। अदालत में मामूली मामलों की, इन्स्पेक्टर या सब-

इन्स्पेक्टर पैरवी करता है; यदि मुकद्मा संगीन होता है तो सरकारी वकीलों की सलाह से काम किया जाता है। अपराधियों को पकड़ने के सिवाय, पुलिस का काम अपराधों को रोकना भी है। इसलिए वह पुराने अपराधियों और ऐसे आदमियों पर नज़र रखती है, जिन पर संदेह हो। थाने मे वदमाश, गुंडों और दागियों का रजिस्टर रखा जाता है।

पुलिस का खर्च और सुधार—

ब्रिटिश भारत मे थानों या पुलिस-स्टेशनों की संख्या लगभग दस हज़ार थी। सब प्रान्तों की पुलिस में लगभग अढाई लाख आदमी हैं और इनका सालाना खर्च करीब पन्द्रह करोड़ रुपये हैं। सुधार करने के लिए पुलिस की मद्द में काफी खर्च वढ़ता जा रहा है। लेकिन जनता को पुलिस के सिपाहियों पर प्रायः विश्वास नहीं है। साधारण आदमियों की उससे सहानुभूति होना तो दूर रहा, उलटा वे उसे देख कर ही घवरा जाते है। इसका कारण यह है कि वहुत से पुलिस कर्मचारी जनता पर विना वात अपना रोव गांठा करते है, उन पर झूठा मुकद्मा चला कर उन्हें परेशान करते हैं और कभी-कभी उन्हें वहुत शारीरिक कष्ट दिया करते हैं। वे भूल जाते है कि उनका कर्त्तव्य जनता की सेवा और सहायता करना है। उच्च अधिकारियों का समर्थन और प्रोत्साहन पाते रहने से पुलिस कर्मचारी और भी अधिक वेपरवाह और उद्दंड हो जाते है। अव इन वातों में वहुत कुछ सुधार हो रहा है।

२ न्यायालय

न्याय-कार्य—

पुलिस अपराधियों को केवल तलाश और गिरफ्तार कर सकती है। किसी आदमी पर लगाये हुए अपराध के बारे में विचार करने और अगर वह अपराधी ठहरे तो उसे दण्ड देने या उसे सुधारने के उपाय बताने का काम न्यायालय का ही है। न्यायालय मुकदमों का फैसला राज्य के कानून के अनुसार करते हैं। वास्तव में दण्ड का उद्देश्य किसी आदमी को कष्ट देना नहीं है, उसका उद्देश्य यही है कि आदमी सुधर जाय; आगे ऐसा काम न करे, जिससे समाज की हानि हो, इसके अलावा यह भी उद्देश्य होता है कि दूसरे आदमियों को शिक्षा मिले, वे अपराध करने से रुकें।

संघ-न्यायालय—

भारतवर्ष में सबसे बड़ा न्यायालय संघ-न्यायालय है। यह भारतवर्ष के हाईकोर्टों या दूसरी ऊँची अदालतों के फ़ैसलों की अपील सुनता है, और इसे शासन-विधान के नियमों का अर्थ लगाने का भी अधिकार है। यह न्यायालय देहली में है। इसमें एक चीफ़-जस्टिस और छः तक दूसरे जज रहते हैं।

हाईकोर्ट—

संघ-न्यायालय के नीचे, प्रांतों की ऊँची अदालतें हैं—ये कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना, नागपुर के हाईकोर्ट है। विभाजन से पहिले ही अवध के चीफकोर्ट तथा पश्चिमोत्तर

सीमाप्रांत और सिंध के जुडीशल कमिश्नरों के कोर्टों को भी हाईकोर्ट का दर्जा मिल गया था। इन अदालतों मे दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के कुछ नये मुकदमों तथा सब अपीलों का फैसला होता है। हाईकोर्ट की अनुमति बिना किसी अपराधी को फांसी नहीं दी जाती। हाईकोर्ट के जज अपने-अपने क्षेत्र में दौरा करके यह देखते रहते हैं कि जिले की अदालतें अपना न्याय-कार्य ठीक करती हैं या नहीं।

अन्य अदालतें—

हाईकोर्ट के नीचे ज़िले की अदालते हैं, ये खासकर दो तरह की होती हैं—(१)फौजदारी और (२) दीवानी। ज़िले की सब से बड़ी फौजदारी अदालत सेशनकोर्ट और दीवानी अदालत ज़िला-जज की कोर्ट है। आमतौर से दोनों मे एक ही जज काम करता है। जब वह फौजदारी का काम करता है तो उसे ज़िला-जज कहते हैं, और जब वह दीवानी का काम करता है तो उसे ज़िला-जज कहते हैं। इसके नीचे फौजदारी के लिए मजिस्ट्रेटों की अदालतें और दीवानी के काम के लिए मुन्सिफों की अदालतें होती हैं। मजिस्ट्रेटों के तीन दर्जे होते है—अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट को एक अपराध पर एक हजार रुपये तक जुर्माना और दो साल तक की कैद की सज़ा करने का अधिकार होता है। दूसरे दर्जे का मजिस्ट्रेट २००) जुर्माना और छः महीने तक की सज़ा और तीसरे दर्जे का मजिस्ट्रेट ५०) जुर्माना और एक माह तक की सजा कर सकता है। कुछ मजिस्ट्रेट आनरेरी या अवैतनिक भी होते हैं। ज़िलाधीश को अव्वल दर्जे की मजिस्ट्रेटी के अधिकार हैं। यह पहले बताया जा चुका है।

पंचायतें—

इन अदालतों के अलावा और भी छोटी-छोटी अदालतें हैं। गाँवों में साधारण मामलों का फैसला करने के लिए ग्राम-पंचायतों को अधिकार दिया गया है। यदि पंचायतें अच्छी तरह काम करें, उसमें योग्य आदमी हों, और सरकार की ओर से इन्हें यथेष्ट अधिकार हों तो न्याय-संबन्धी बड़ा महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

३ जेल

ऊपर कहा गया है कि न्यायालयों से अपराधियों को क़ैद की भी सज़ा मिलती है। कैदी रखने के लिए जिन मकानों की व्यवस्था की जाती है उन्हें जेल कहते हैं।

जेलों के भेद—

भारतवर्ष में जेलों के ये भेद हैं—(१) सेन्ट्रल जेल, इसमें साल भर या इससे अधिक समय के कैदी रहते हैं। (२) जिला-जेल; इसमें पन्द्रह दिन से लेकर साल भर तक के कैदी रहते हैं। (३) छोटे जेल या हवालात, इनमें वे कैदी रहते है जिन्हें १५ दिन से कम की सज़ा हुई हो, या कुछ दशाओं में जिन पर मुकदमा चल रहा हो। देश में इन तीनों तरह के जेलों की संख्या क्रमशः ५१, १८२, ६७० है।

जेलों का संगठन—

प्रान्त भर के जेलों का प्रधान अफ़सर इन्सपैक्टर जनरल होता है। वह अपने प्रान्तों की सब जेलों की निगरानी रखता है।

जिला-जेल के कर्मचारियों के चार भेद होते हैं—(१) सुपरिन्टेंडेंट जो साधारण प्रबन्ध, कैदियों की मेहनत और सज़ा की देखरेख करता है। (२)मैडिकल अफसर, यह स्वास्थ्य आदि का ध्यान रखता हैं। (३) सहायक मैडिकल अफसर, और (४) जेलर। इनमें से सुपरिन्टेंडेंट और मैडिकल अफसर के काम बहुधा सिविल सर्जन के सुपुर्द होते हैं। वार्डर्ज़ अर्थात् जेल के पहरुए और कैदी अफसर का काम अधिकतर अपराधियों मे से कुछ चुने हुए आदमी करते है, इन्हे कुछ मासिक वेतन दिया जाता है।

कैदियों का जीवन—

स्त्री-कैदियों को पुरुषों से अलग रखा जाता है। इसी तरह राजनीतिक, दीवानी के, फौजदारी के, बूढ़े और नौजवान कैदी अलग-अलग रखे जाते है। सख्त कैद वालों को प्रायः नौ घंटे काम करना होता है। प्रायः जेल में कैदी कपड़ा बुनना, मरम्मत करना, आटा पीसना, पानी भरना, आदि काम करते हैं। सन् १९३० से कैदियों की उनकी हैसियत के अनुसार तीन श्रेणियां की जाती है—'ए' 'बी' और 'सी'। 'ए' श्रेणी वालों को भोजन वस्त्र आदि की कई तरह की सुविधाएं दी जाती है, 'बी' श्रेणी वालों को उनसे कम, और 'सी' श्रेणी वालों को सब से कम।

कहीं-कहीं कैदियों को धार्मिक ग्रंथों की बाते सुनाने का प्रबन्ध हुआ है। कुछ सेन्ट्रल जेलों मे स्कूल और पुस्तकालय खोले गये हैं। तो भी अभी तक कैदियों का सुधार बहुत कम हुआ है। बहुत से साधारण अपराधी जेलों से पक्के और होशियार चोर डाकू या दुराचारी होकर निकलते हैं। प्रायः वहाँ की

व्यवस्था का उन पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। बहुत से आदमी जब जेल से निकलते हैं तो इच्छा होते हुए भी धनाभाव के कारण कोई काम-धन्धा नहीं कर पाते। ऐसे लोगों की सहायता के लिए कुछ स्थानों में सोसायटियाँ कायम की गई हैं। इन बातों में अभी कुछ सुधार होने की आवश्यकता है।

छोटे अपराधी—

पन्द्रह वर्ष से कम आयु के बालक, अपराधी साबित होने पर या तो किसी सुधारशाला (रिफार्मटरी) में भेजे जाते हैं (जिस में शिक्षा पाकर वे कोई उद्योग धन्धा करने योग्य हो जायें) या उन्हें ताड़ना देकर उनके माता पिता को ही सौंप दिया जाता है। इनमें लड़कियों की संख्या कम ही होती है, और मजिस्ट्रेटों को इस बात की हिदायत रहती है कि जहां तक बने अपराधी लड़कियों को धमका कर या समझा-बुझाकर उनके रक्षकों के ही सुपुर्द कर दें।

सोलहवाँ अध्याय

स्वास्थ्य और चिकित्सा

स्वास्थ्य का महत्व—

संस्कृत मे कहावत है कि 'शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्'। इसका मतलब यह है कि धर्म अर्थात् कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए सबसे प्रथम या प्रमुख साधन शरीर है। जो आदमी बीमार या रोगी रहता है वह अपने काम ठीक तरह नहीं कर सकता। इसके अलावा जिन-जिन व्यक्तियों से वह अपनी सेवा-शुश्रूषा कराता है उनके भी काम में हर्ज होता है। इससे आदमियों के लिए स्वास्थ्य का महत्व स्पष्ट है। हरेक राज्य के लिए भी यह आवश्यक है कि उसके नागरिक स्वस्थ वा तन्दुरुस्त हो। अस्वस्थ या रोगी नागरिक अपने राज्य के लिए भार स्वरूप हो जाते हैं, क्योंकि वे उसकी उन्नति मे भाग लेने की बजाय उसमें बाधक होते हैं। इसलिए प्रत्येक राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिकों का स्वास्थ्य बढ़ावे, ऐसी व्यवस्था करे कि रोगी आदमियों का जल्दी से जल्दी इलाज हो सके।

भारतवासियों का स्वास्थ्य—

भारतवासियों की अनुमानित आयु केवल २३ वर्ष है। यहां कुल आदमियों की मृत्यु की औसत इंगलैंड से दूनी है, और बालकों की मृत्यु तो वहाँ से तिगुनी है। हैजा, प्लेग, चेचक, मलेरिया आदि का तो भारतवर्ष घर ही हो गया है। यहाँ दस लाख आदमियों को कुष्टरोग है और पंद्रह लाख को अन्धापन। पागलों की संख्या एक लाख से अधिक है। प्रसूति के समय दो लाख माताएं प्रतिवर्ष काल का ग्रास हो जाती है और पचीस लाख बच्चे प्रति वर्ष पांच साल के होने से पहले ही इस संसार से चल बसते हैं। ये थोड़े से अङ्क भली-भांति साबित करते हैं कि भारतवासियों का स्वास्थ्य बहुत हीन दशा में है।

रोगों का कारण—

प्राय: 'मनुष्य अपने अज्ञान, गरीबी, दुर्व्यसन या शौकीनी आदि के कारण बीमार पड़ते है। भारतवर्ष में शिक्षा की कितनी कमी है यह दूसरी जगह बताया गया है। यहाँ गरीबी भी [बहुत बढ़ी हुई है, करोड़ों आदमियों को कभी भी भरपेट भोजन और आवश्यकतानुसार वस्त्र नहीं मिलता। कितने ही आदमी बहुत घटिया और खराब अन्न आदि खाकर अपना निर्वाह करते है, जिसके फलस्वरूप उनका बीमार पड़ना अनिवार्य है। बाल-विवाह और पर्दे आदि की कुरीतियाँ भी सर्वसाधारण के स्वास्थ्य को भारी बाधा पहुँचा रहीं है। कितने ही आदमी अपनी शौकीनी के कारण ही बड़ा कष्ट पाते हैं, चटपटी मसालेदार, तली हुई चीजें या मिठाई आदि अधिक खाते है।

कुछ आदमी गरीब होते हुए भी पान-बीड़ी, चाय या नशीली चीजों का सेवन करते है । इस तरह की चीजों मे पैसा खर्च हो जाने के कारण उन्हे अपने जीवन-रक्षक पदार्थों की ओर भी कमी हो जाती है। इन बातों के अलावा रोगों का एक खास कारण यह भी है कि लोगों मे सार्वजनिक सफाई रखने की भावना बहुत कम है। जिस कुएँ या तालाब का पानी पीने के काम आता है; इसमें आदमी नहाते धोते है । गली मे, सड़क पर, अथवा नदी के किनारे चाहे जहाँ थूकना, पेशाब करना, कूड़ा कचरा डालना आदि मामूली बात है। गाँवों में तो घरों के पास ही गोबर और कूड़े के बदबूदार ढेर लगे रहते है। इस तरह की सब बातों को दूर करने की आवश्यकता है। साथ ही औषधालय, दवाईखाने अस्पताल आदि की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि किसी भी गाँव या नगर मे रहने वाले आदमी वहाँ तक आसानी से पहुंच सके, और उससे लाभ उठा सकें। पहले कहा गया है कि रोगों का एक कारण जनता की गरीबी है, इसे दूर करने के लिए उद्योग धन्धों, कलाकौशल और व्यापार की उन्नति होनी आवश्यक है।

स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी सरकारी व्यवस्था—

भारतवर्ष मे स्वास्थ्य विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी 'पब्लिक-हेल्थ-कमिश्नर' है । यह जन्म और मृत्यु सम्बन्धी आंकड़े तथा इस विषय की जानकारी संग्रह करता है कि देश मे किस-किस मुख्य बीमारी का प्रकोप अधिक है, और उसे किस तरह हटाया जा सकता है। उस अधिकारी के नीचे प्रान्तों में सेनिटरी-कमिश्नर या सार्वजनिक स्वास्थ्य का डायरेक्टर रहता है और उसके नीचे जिलों मे डिप्टी-सेनिटरी कमिश्नर या जिला-

चिकित्सा-प्रबन्ध—

बीमारियों के इलाज के लिए शहरों और कस्बों में सरकारी अस्पताल हैं, उनमें दवाई अक्सर बिना मूल्य दी जाती है, तथा फोड़ों आदि चीरफाड़ या जर्राही का भी इन्तज़ाम है। कुछ खास नगरों में कुछ रोगों की चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध है। उदाहरण के तौर पर क्षय या तपेदिक, पागलपन, और कोढ़ के रोगियो के लिए व्यवस्था है, अथवा आँखों, दाँतों और कानों आदि के तथा छूत के रोगों के इलाज का प्रबन्ध है। कुछ स्थानों मे स्त्रियों के इलाज के लिए ज़नाना अस्पताल हैं। कहीं-कहीं बच्चा जनने के लिए सरकारी अथवा गैर-सरकारी खर्च से प्रसूति-गृह (मातृ-मंदिर) खोले गये हैं। ट्रेण्ड (शिक्षा पाई हुई) दाइयां करीब-करीब हरेक म्युनिसिपेलिटी में है। परन्तु जनसंख्या को देखते हुए यह सब व्यवस्था बहुत कम और दूर दूर है। बहुत से आदमी अपने स्थान से दूर जाकर अपनी बीमारी का अच्छा इलाज नहीं करा सकते। देहातों में तो चिकित्सा-प्रबन्ध बहुत ही कम है, कहीं-कहीं गश्ती शफाखाने हैं, अर्थात् डाक्टर घूम फिर कर दवाई देता है, आज एक जगह कल किसी दूसरी जगह। बहुत स्थानों में तो मामूली वैद्य या हकीम भी नहीं है।

यह सरकारी संस्थाओं की बात हुई। इनके अलावा बहुत से स्थानों में जनता की ओर से भी चिकित्सा का प्रबन्ध है। खास कर ईसाई-मिशन, रामकृष्ण-मिशन, आर्य-समाज, सनातन-धर्म-समाज, जैन-समाज तथा सेवा-समितियां, रेडक्रास-सोसायटी और सेंटजान एम्ब्यूलेंस-संस्था काम कर रही हैं। परन्तु जैसा कि पहले सूचित किया गया है, भारतवर्ष में कुल मिलाकर चिकित्सा-प्रबन्ध

बहुत कम है। कितने ही आदमी साधारण रोगों को निवारण करने के साधनों से भी वंचित हैं।

विद्यार्थियों के लिए—

कुछ समय से विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। कुछ स्थानों में उनके लिए अलग अस्पताल कायम किये गये हैं। समय-समय पर विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की जाँच होती है, उनकी ऊँचाई, छाती का माप, शरीर का वज़न आदि देखा जाता है, और उसे नोट किया जाता है जिससे तुलना हो सके, और इस बात का विचार किया जा सके कि विद्यार्थी अपने स्वास्थ्य में उन्नति कर रहा है या नहीं। जब कोई विद्यार्थी बीमार होता है तो उसे उपर्युक्त अस्पताल से दवाई दी जाती है। गरीब विद्यार्थियों को स्वास्थ्य सम्बन्धी मोटी बातों का ज्ञान कराया जाता है। उनके इस ज्ञान की परीक्षा लेने की व्यवस्था है; परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उन्हें सर्टिफिकट दिये जाते हैं। उन्हें छूत की बीमारियों से बचाने के लिए टीका लगाया जाता है।

अधिक सुविधाओं की आवश्यकता—

दूसरे योरुपीय महायुद्ध से पहले (सन् १९३९ में) ब्रिटिश भारत में कुल ७३०० अस्पताल और दवाखाने थे, जिनमें लगभग ७४ हज़ार बिस्तर (बेड्स) थे अर्थात इतने रोगियों को अस्पतालों में रहकर इलाज कराने की सुविधा थी। इस प्रकार ४१,००० आदमी पीछे एक अस्पताल या दवाखाना है, तथा हर ४०० आदमी पीछे अस्पताल की एक खाट की औसत है। भारतवर्ष में डाक्टरों की

संख्या ४२,००० और नर्सों की ४५,०० है अर्थात् हर नौ हजार आदमी पीछे एक डाक्टर और ८६,००० हजार आदमी पीछे एक नर्स है, जब कि इगलैंड मे हर ७७६ आदमियों पीछे एक डाक्टर और ४३५ आदमी पीछे एक नर्स है।

आवश्यकता है, हर गॉव मे एक डाक्टर या वैद्य, दवाखाना और लेडी डाक्टर हो। नगरो मे इनकी संख्या नगर के विस्तार या आवादी के अनुपात से हो, इसके अलावा यहॉ यथेष्ट प्रसूति-गृहों की भी स्थापना हो। छूत की वीमारियों को रोकने के लिए भा काफी प्रवन्ध होना चाहिए। पीने के पानी के लिए, तथा गंदा पानी वहने के वास्ते समुचित व्यवस्था होनी आवश्यक है।

सरकार अधिकतर पश्चिमी चिकित्सा पद्धति (डाक्टरी) को ही प्रोत्साहन देती है। यह वहुत खर्चीली है, और भारतवर्ष के साधारण हैसियत के आदमी इससे लाभ नहीं उठा सकते। इधर कुछ वर्षो से वैद्यक और हकीमी की सरकारी एवं गैर-सरकारी परीक्षाएं होने लगी हैं। कुछ योग्य वैद्य और हकीम म्युनिसिपेलिटियों और जिला वोर्डों की ओर से नियुक्त भी किये जाते हैं। देश, काल के विचार से, इस दिशा में अधिक उन्नति होनी चाहिए।

की ज़रूरतें भी कम थीं; देश में शिल्पकला और उद्योग-धंधों की काफी उन्नति हो गई थी, आदमी तैयार माल के लिए दूसरे देशों के आश्रित नहीं रहते थे, वे अपनी बनाई हुई चीज़ों से ही काम चला लेते थे। प्रायः हरेक गाँव बहुत कुछ स्वावलम्बी थी; जो चीज़ें एक गाँव में नहीं होती थीं, वे कई गांवों के केन्द्रीय स्थान में या किसी मेले आदि के अवसर पर ले ली जाती थीं। निदान, लोगों का काम बहुत-कुछ स्वदेशी पदार्थों से ही चलता था, उन्हें विदेशी चीज़ें खरीदनी नहीं होती थीं। इसलिए यहाँ की अन्न आदि की पैदावार बाहर भेजने की जरूरत नहीं होती थी। और यहाँ इस पैदावार की कमी होने का प्रसंग बहुत कम आता था, बल्कि कुछ समय आगे तक के लिए उसका संग्रह रहता था।

हाँ, कभी कभी ऐसा हो जाता था कि लगातार एक दो साल वर्षा न होने से या बाढ़ आदि के आ जाने से कुछ हिस्सों में अकाल पड़ जाता था। और क्योंकि उन दिनों यातायात की सुविधाएँ बहुत कम थीं, सौ पचास मील के फासले पर अनाज आदि का परिमाण मालूम करना, और यदि वहाँ अधिक हो तो उसे ढोकर लाना कठिन था, इसलिए प्रायः जिस क्षेत्र में फसल न होती, वहाँ वालों को बहुत ही कष्ट होता था, उन्हें अपने पास के दूसरे आदमियों से समय पर अच्छी सहायता नहीं मिल पाती थी। इस तरह प्राचीन काल में अकाल बहुत कम होते थे, उनका क्षेत्र बहुत परिमित रहता था, यद्यपि कुछ दशाओं में उन स्थानों से थोड़े फासले पर ही खाद्य पदार्थों की काफी बहुतायत होती थी।

अब परिस्थिति बहुत बदल गई है। यहाँ विदेशी तैयार माल बहुत अधिक आता है, और बदले में यहाँ से अन्न, रूई आदि

कच्चा माल बहुत बड़े परिमाण में बाहर जाता है। जनसंख्या बहुत बढ़ गयी है, और बढ़ती जाती है। पैदावार के बंटवारे (वितरण) में भी बड़ी विषमता है। कुछ थोड़े से आदमी खूब धनवान् हैं, जब कि करोड़ों आदमियों को अपने जीवन-निर्वाह के योग्य भी भोजन-वस्त्र नहीं मिल पाता। ऐसी दशा में जब किसी साल फ़सल अच्छी पैदा न हो, या नष्ट हो जाय तो अकाल की विकरालता बहुत बढ़ जाती है। और आजकल माल लाने लेजाने के साधनों की पहले से बहुत उन्नति हो जाने से अब अकाल का असर दूर दूर के स्थानों पर भी पड़ता है। यह ठीक है कि अब पैदावार का परिमाण पहले से बढ़ा हुआ होने से प्रायः लोगों को चीज़ों का इतना अभाव नहीं होता, जितना उन्हें खरीदने के लिए पैसे का अभाव होता है। इसलिए आजकल अकाल से अधिकतर गरीबों की ही मौत आती है; धनवानों पर उसका विशेष असर नहीं पड़ता।

अकाल के कारण—

अकाल के कारणों के दो भेद किए जा सकते हैं—(१) प्राकृतिक और (२) मनुष्यकृत। आँधी-तूफान, बाढ़, भूकम्प, वर्षा बहुत अधिक होना, वर्षा बहुत कम होना, ओले या पाला पड़ना, टिड्डी आदि से फ़सल का नष्ट किया जाना पहले प्रकार के उदाहरण हैं। पर आजकल अकाल मनुष्य का भी पैदा किया हुआ होता है। जैसे युद्ध से, अनाज का सट्टा होने से, अधिक मुनाफ़ेखोरी आदि से। विज्ञान की सहायता से आदमी धीरे-धीरे प्रकृति पर विजय पा रहा है, यह दूसरी जगह विस्तार से बताया गया है। इस तरह अब प्राकृतिक कारणों से पैदा होने वाले अकालों को बहुत अंश में रोका जा सकता है, और उन्नत राज्यों

ने इसमें बहुत सफलता पा ली है। फिर भी कभी-कभी कुछ दशाओं मे प्रकृति के आगे मनुष्य का वश नहीं चलता और प्राकृतिक कारणों से काफी हानि हो ही जाती है। राज्य का कर्तव्य है कि उसे रोकने का भरसक उपाय करे। जिन दिशाओं में अकाल मनुष्य द्वारा पैदा होता है उन्हे तो दूर किया ही जाना चाहिए। देशवासियों के लिए स्वास्थ्यप्रद भोजन की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व राज्य पर है। यदि वह उचित व्यवस्था करे तो अकाल का प्रसंग ही न आने पावे, और यदि कभी आवे भी, उसका रूप बहुत गम्भीर न हो, उसका जल्दी से जल्दी नियन्त्रण किया जाय।

भारत-सरकार का अनुभव—

अंगरेजों के आने के बाद, खासकर पिछले सौ वर्ष से यहाँ अकाल अधिक पड़ने लगे। इनके कारणों का पता लगाने के लिए सरकार ने समय-समय पर कमीशन नियुक्त किये। सन् १८६५-६७ के उड़ीसा के अकाल पर नियुक्त कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में अकाल के कारणों के साथ उन्हे दूर करने के उपायों तथा अकाल-पीडितों की सहायता की विधियाँ भी सुझायीं। किसानों को दूसरे काम पर लगाना, निश्शुल्क भोजनालय खोलना, लगान कम करना या माफ करना, खेती के लिए रुपया उधार देना। सरकार ने इन पर विचार किया और एक अकाल-पीडित सहायक-फंड की भी स्थापना की। सन् १८९६-९७ के अकाल में उपर्युक्त रिपोर्ट की बातें काम में लाई गईं। सात करोड़ मनुष्य अकाल-पीड़ित थे। उनमें से ७५ लाख की मृत्यु हो गयी। सरकार ने सवा करोड़ रुपये का कर माफ कर दिया, पौने दो करोड

रुपया कर्ज़ दिया और सवा सात करोड़ रुपये भोजन वस्त्र बांटने में ख़र्च किये। सन १८९९-१९०० में मध्यप्रान्त-बरार, मध्यभारत, राजपूताना आदि में फिर अकाल पड़ा, पशुओं के चारे की बहुत कमी हो गयी। हैज़े और मलेरिए का भी प्रकोप हुआ। दस लाख आदमी मर गये। सरकार की ओर से १५ करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस अकाल पर विचार करने के लिए 'सर एंथानी मेक्डानल्ड' कमीशन बैठा। इसने सिफारिश की कि अकाल के लक्षण मालूम होते ही परिस्थिति संभालनी चाहिये, किसानों को क़र्ज़ और तकाबी दी जावे, उनके जानवरों की रक्षा हो, नये काम-धंधे खोल कर किसानों को उचित वेतन पर उनमें लगाया जाय। सरकार ऐसी बातों की ओर ध्यान तो देती थी, पर इन्हें काफी अमल में नहीं लाती थी। कारण यह था कि वह भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

बंगाल के अकाल की जांच—

हाल की बात लीजिये। बङ्गाल का सन् १९४३ का अकाल केवल भारतवर्ष की ही नहीं, संसार की एक असाधारण घटना है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इसमें १५ लाख आदमियों की मृत्यु हुई—दूसरे हिसाब लगाने वालों के मत से तो यह संख्या और भी अधिक थी, यहाँ तक कि कुछ सज्जनों का विचार है कि इस अकाल में ३५ लाख आदमियों ने अपने प्राण गँवाये। जो आदमी इस अकाल में रोग-ग्रस्त होकर कष्ट पाते रहे, उनकी संख्या रही अलग। इसकी जाँच करने वाले 'वुडहेड-कमीशन' ने अकाल के जो कारण बताये हैं, उनमें से कुछ ये हैं—(१) बर्मा पर जापान का अधिकार हो जाने से वहाँ से चावल भारत-

वर्ष के लिए नहीं आया। (२) बङ्गाल सरकार प्रान्त में अनाज के संग्रह और वितरण पर नियंत्रण करने में असफल रही। (३) जनता का बंगाल की सरकार में विश्वास नहीं रहा था। (४) भारत-सरकार ने अपनी अनाज-नीति निर्धारित करने में गलती की। (५) भारत और बंगाल की सरकारों ने जनता को अकाल के बारे में चेतावनी न देकर भयंकर भूल की। जनता को अनाज काफी परिमाण में देने का झूठा आश्वासन दिया। (६) कलकत्ता में अनाज का राशन करने में देरी की गई और अनाज साम्प्रदायिक अनुपात से वितरण किया गया। (७) बंगाल में अनाज की कमी होते हुए भी चावल बाहर भेजा गया। (८) सरकार जरूरत के समय जनता को अनाज न दे सकी, इससे अनाज की कीमत छः गुनी बढ़ गई। (९) अनाज खरीदने के लिए प्राइवेट एजन्टों को नियुक्त किया गया। (१०) सरकार ने अकाल शुरू होने पर अनाज के बड़े-बड़े निजी भण्डारों पर अधिकार नहीं जमाया, चोर-बाज़ार (ब्लैक मार्केट) का ज़ोर रहा। (११) जनता को दवाइयां प्राप्त होना कठिन हो गया, इसलिए भी हज़ारों आदमी काल के गाल में समा गये। (१२) जापानी आक्रमण के भय से नाव आदि पर सरकारी क़ब्ज़ा हो जाने से भीतरी व्यापार चौपट हो गया। (१३) सन् १९४२ की अमन की फसल अच्छी न थी।

सुधार के उपाय—

कमीशन की इस जांच से बहुत शिक्षा ली जा सकती है। उसने देशवासियों की भोजन व्यवस्था के लिए राज्य का उत्तर-दायित्व स्वीकार किया है, और रूस का उदाहरण दिया है। वास्त-

विक सुधार करने के लिए आवश्यक है कि जमींदारी प्रथा का अन्त किया जाय, किसानों को महाजनों के चंगुल से मुक्त किया जाय, वैज्ञानिक उपायों से और सहकारी पद्धति से खेती करके पैदावार बढ़ायी जाय, और उसका समुचित वितरण हो, ग्रामीण उद्योग-धन्धों की उन्नति करके जनता को अधिक-से-अधिक जरूरतों के लिए स्वावलम्बी बनाया जाय। इसके साथ ही जनता मे नागरिक भावना जाग्रत की जाय, मुनाफेखोरी करके अपने भाइयों का कष्ट बढ़ाने वालों का अच्छी तरह नियन्त्रण किया जाना चाहिये।

अठारहवाँ अध्याय

सरकारी आय-व्यय

पहले कहा जा चुका है कि सरकार का एक कार्य देश की वाहरी आक्रमणों से रक्षा करना और देश के भीतर भी शान्ति और सुव्यवस्था रखना है; इसके अलावा वह कई लोकहितकारी कार्य करती है। वह जनता के स्वास्थ्य और चिकित्सा का प्रवन्ध करती है। शिक्षा-प्रचार के लिए विविध प्रकार की संस्थाएँ स्थापित करती है, देश मे अकाल को रोकने का उपाय करती हैं, और यदि अकाल हो जाय तो इस बात की व्यवस्था करती है कि लोगों का कष्ट यथा-संभव कम हो। इसी तरह के दूसरे भी काम करना उसका कर्तव्य है। ये काम ऐसे हैं कि कोई आदमी या संस्था इन्हे अच्छी तरह नही कर सकती। इसलिए सरकार का ही इन्हे करना ठीक रहता है। इन कामों के लिए रुपये की आवश्यकता होती है। सरकार इस के वास्ते लोगों पर कर या टैक्स लगाती है। कर लगाने के कुछ नियम होते हैं। इस अध्याय मे इस बात का विचार किया जायगा कि सरकार भारतवर्ष मे कौन कौन से कामों मे रुपया खर्च करती है। वह रुपया किस-किस प्रकार वसूल होता है और उससे जनता का कहाँ तक हित होता है।

भारतवर्ष में आय-व्यय की दृष्टि से सरकारी साल अप्रैल महीने की पहली तारीख से आरम्भ होता है और ३१ मार्च को समाप्त होता है। उदाहरणतया १ अप्रैल १६४६ से ३१ मार्च १६५७ तक सरकार का एक आर्थिक वर्ष हुआ, इसे सन् १६४६-४७ कहते हैं।

भारतवर्ष का सरकारी हिसाब—

भारतवर्ष में केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय विषयों के लिए, जिनका सम्बन्ध सारे भारतवर्ष या उसके कई प्रान्तों से होता है, खर्च करती है। प्रान्तीय सरकारें केवल अपने अपने प्रान्त सम्बन्धी कामों के लिए खर्च करती है। [हाँ चीफ़-कमिश्नरों के प्रान्तों में जो खर्च होता है वह केन्द्रीय सरकार के ही हिसाब में शामिल किया जाता है, क्योंकि इन प्रान्तों के शासन-प्रबन्ध की वही ज़िम्मेवार है।] आर्थिक वर्ष आरम्भ होने से पहले यह अनुमान किया जाता है कि अगले वर्ष कौन कौन से काम करने है और उनके लिए कितना खर्च होगा तथा किन-किन करों से रुपया वसूल करना ठीक होगा। आय-व्यय के इस अनुमान को बजट या बजट-एस्टीमेट कहते हैं।

केन्द्रीय बजट अर्थात् केन्द्रीय सरकार का बजट भारतीय व्यवस्थापक-मंडल में और हरेक प्रान्तीय बजट उस प्रान्त के व्यवस्थापक-मंडल में पेश किया जाता है, यह पहले बताया जा चुका है। बजट पेश करते समय पिछले वर्ष के आय-व्यय के अनुमान का संशोधन भी कर लिया जाता है। उस समय लगभग ११ महीने का असली हिसाब और साल के बाकी समय का अन्दाज़ रहता है। इसे आय-व्यय का संशोधित अनुमान कहते है। कुछ

समय पीछे वर्ष भर आय-व्यय के ठीक-ठीक अंक मिल जाने पर असली हिसाब प्रकाशित होता है।

भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों की कुल वार्षिक आय, महायुद्ध (१९३९-४५) से पहले लगभग दो सौ करोड़ रुपये होती थी—भारत-सरकार की १२० करोड़ रु० और प्रान्तीय सरकारों की ८० करोड़ रु०। प्रायः इनका व्यय भी लगभग इतना ही होता था। युद्ध-काल मे तो ये अंक बहुत बढ़ गये। केन्द्रीय आय पहले से चौगुनी तक वसूल की गई, और केन्द्रीय खर्च छः गुना तक हो गया। खर्च की मद्दों में खास वृद्धि सेना की मद्द मे हुई यह कहने की आवश्यकता नहीं। जब कि सन् १९३८-३९ मे सैनिक व्यय ४६ करोड़ रुपये था, सन् १९४४-४५ मे यह खर्च ३९३ करोड़ रुपये था।

सरकारी खर्च की मद्दें—

केन्द्रीय सरकार के खर्च की मुख्य मुख्य मद्दें निम्न-लिखित हैं—

(१) सेना (२) कर वसूल करने का खर्च (३) सिविल-शासन (४) सिविल-निर्माण-कार्य (५) रेल (६) डाक, तार (७) मुद्रा और टकसाल और (८) सूद।

प्रान्तीय सरकारों के खर्च की मुख्य-मुख्य मद्दें निम्न-लिखित हैं—(१) कर वसूल करने का खर्च (२) शासन-व्यवस्था, (३) न्याय (४) जेल (५) पुलिस (६) शिक्षा (७) स्वास्थ्य और चिकित्सा (८) कृषि (९) उद्योग (१०) सिविल-निर्माण-कार्य। सैनिक व्यय के बारे मे आवश्यक बात पहले कही जा चुकी है।

कर वसूल करने के केन्द्रीय खर्च में केन्द्रीय सरकार का आयात-निर्यात-कर, आय-कर (इन्कमटैक्स), अफ़ीम और नमक आदि विभागों के खर्च के अलावा अफ़ीम और नमक तैयार करने का भी खर्च सम्मिलित है। प्रांतीय सरकारें मालगुज़ारी, स्टाम्प, रजिस्टरी और आबकारी आदि विभागों में खर्च करती हैं।

शासन-व्यवस्था सम्बन्धी केन्द्रीय खर्च मे गवर्नर-जनरल, उसकी प्रबन्धकारिणी कौंसिल के सदस्यों, भारतीय व्यवस्थापक मण्डल, और अन्य केन्द्रीय कार्यालयों और कर्मचारियों का खर्च शामिल है। इस मद के प्रांतीय खर्च मे गवर्नर, उसके मन्त्री, कमिश्नर, डिप्टी-कमिश्नर, तहसीलदार, नायब-तहसीलदार आदि का वेतन और भत्ता और इनके विविध दफ्तरों का खर्च गिना जाता है।

सिविल-निर्माण-कार्य के व्यय की मद में सरकारी दफ्तर आदि इमारतें और सड़कें बनवाने तथा उनकी मरम्मत करवाने का खर्च शामिल है।

सूद की मद मे खासकर वह खर्च शामिल है, जो भारत-सरकार के यहाँ के सरकारी ऋण (पब्लिक डेट) पर व्याज के रूप मे देती रही है। इसके अलावा सरकार कुछ सूद प्राविडेन्ट फण्डों या (डाकखानों के) सेविंग बैंकों के अस्थायी ऋण पर भी देती है।

खर्च की अन्य मदें स्पष्ट हैं। उनके विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। खर्च की रकमों में हर साल कुछ न्यूनाधिकता होती रहती है; आगे दिये हुए नक्शे से साधारण अनुमान करने मे सहायता मिलेगी। प्राँतों में नमूने के तौर से केवल पंजाब के ही अंक दिये जाते हैं।

केन्द्रीय सरकार के व्यय का अनुमान
सन् १९४४-४५

संख्या	मद	लाख रुपये
१	कर-प्राप्ति का खर्च	७,२२
२	सूद	२०,३२
३	सिविल शासन	१८,७३
४	मुद्रा और टकसाल	२,३४
५	सिविल-निर्माण-कार्य	२,४६
६	सेना	२,७६,६१
७	विविध	८,१२
८	असाधारण	२२,८६
	योग	३,५८,६७

पंजाब सरकार के व्यय का अनुमान
(लाख रुपयों में)

संख्या	मद	सन् १९४५-४६	सन् १९४४-४५
१	कर-प्राप्ति का "	१,७०,०८	१,९३,१६
२	आबपाशी	२,२६,७९	२,०२,६१
३	शासन	१,८८,४२	१,७५,४१
४	न्याय	६५,११	६२,६१
५	जेल	६४,२९	६२,५०
६	पुलिस	२,८२,०४	२,७२,३७
७	शिक्षा	२,४६,०६	२,२४,४०
८	स्वास्थ्य-चिकित्सा	१,०८,८०	१,०८,५८
९	कृषि	१,२७,७१	१,०५,०८
१०	सहकारिता	३९,८६	२९,७२
११	उद्योग-धंधे	३५ १८	३१,३१
१२	सिविल-निर्माण-कार्य	२,५६,१२	२,२८,३०
१३	अकाल-निवारण	३,००	१३,१६
१४	पेन्शन	९७,६२	९८,२५
१५	स्टेशनरी प्रिंटिंग	२१,२४	२५,२४
१६	विविध	६१,६१	३,३५,५२
	योग	१९,६५,९३	२१,६८,८२

कर-सम्बन्धी सिद्धान्त—

सरकार अपने कामों के लिए रुपया, लोगों पर कर या टैक्स लगा कर, वसूल करती है। कर लगाने के मुख्य-मुख्य सिद्धान्त ये हैं—

१—कर हरेक आदमी को सामर्थ्य के अनुसार लगाये जाने चाहिएँ, जिससे सब आदमियों पर उनका बोझ यथा-सम्भव बराबर पड़े। यह हो सकता है कि एक ग़रीब आदमी को एक रुपया देना भी बहुत अखरे, जब कि एक धनवान् आदमी पचास रुपये देने में भी कुछ असुविधा का अनुभव न करे। निर्धन आदमियों या उनके काम आने वाले जीवन-रक्षक पदार्थों पर कर न लगना चाहिए। विलासिता के सामान पर भारी कर लगाना भी उचित है।

२—कर देने वाले को कर की मात्रा तथा उसे चुकाने का समय निश्चित रूप से ज्ञात होना चाहिए, जिससे उस को देने में सुविधा हो, और कोई अधिकारी उससे अधिक न ले सके।

३—प्रत्येक कर ऐसे समय में और ऐसी रीति से वसूल किया जाना चाहिए, जो कर-दाता को सुविधाजनक हो।

४—कर वे ही लगाये जाने चाहिएँ, जिनके वसूल करने में खर्च तथा परिश्रम कम पड़े।

५—कर निर्धारित करने में देश के आदमियों के प्रतिनिधियों का यथेष्ट भाग होना चाहिए। उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई कर

न लगाया जाना चाहिए, और न करों से होने वाली आय का कोई हिस्सा खर्च किया जाना चाहिए।

प्रत्यक्ष और परोक्ष कर—

करों के मुख्य दो भेद हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष-कर उसे कहते हैं जिसका भार उसी आदमी या संस्था पर पड़ता है, जिस पर वह लगाया जाता है। ऐसे कर को देते समय, देने वाला यह अच्छी तरह जान लेता है कि वह सरकार को कितना कर, किस रूप में देता है। उदाहरण के लिए आय-कर या इन्कमटैक्स लोगों की आमदनी पर लगता है, यह प्रत्यक्ष कर है।

परोक्ष कर उस कर को कहते हैं, जिसको चुकाने वाला उसका भार पीछे दूसरों पर डाल देता है। उदाहरण के तौर पर व्यापारी अपने माल की आयात पर जो महसूल देते हैं, उसे वे माल बेचने के समय अपने ग्राहकों से वसूल कर लेते हैं। यह परोक्ष कर है।

प्रत्यक्ष कर लोगों को बहुत अखरते हैं, लेकिन परोक्ष कर भी अधिक होने से बहुत हानिकारक होते हैं।

सरकारी आय की मदें—

केन्द्रीय सरकार की मुख्य-मुख्य मदें ये हैं—(१) आयात-निर्यात-कर (२) उत्पादन-कर (३) आय-कर (४) अफीम की आय (५) सूद (६) रेल (७) डाक और तार (८) टकसाल (९) सिविल-शासन, (१०) सिविल-निर्माण-कार्य और (११) सेना।

इनके अतिरिक्त ब्रिटिश राज्य में नमक-कर भी था। महात्मा गांधी सदैव इसके विरुद्ध थे। इसे हटाने के लिये उन्होंने सत्याग्रह भी किया था। भारत के स्वाधीन होने पर महात्मा जी के जीवन-काल में ही यह कर हटा दिया गया था।

प्रान्तीय सरकारों की आय की मुख्य मदें निम्नलिखित हैं—(१) मालगुज़ारी (२) आबकारी (३) स्टाम्प (४) रजिस्ट्री (५) जङ्गल (६) आबपाशी और (७) सूद।

आयात-निर्यात-कर। यह केन्द्रीय आय की सबसे बड़ी मद है। यह कर उन चीज़ों पर लगता है, जो भारतवर्ष से विदेशों को जाती है, या वहाँ से यहाँ आती है। इस कर का देशी व्यापार और उद्योग-धन्धों पर बड़ा असर पड़ता है, क्योंकि विदेश से आने वाली किसी चीज़ पर भारी कर लगा कर उसकी आयात घटायी जा सकती है, इससे स्वदेशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलता है।

उत्पादन-कर। यह भारतवर्ष में बनने वाली चीनी और दियासलाई पर लगता है। विदेश से आने वाली इन वस्तुओं पर भारी कर लगने के कारण वहाँ से इन वस्तुओं का आयात कम होता है, इस लिए सरकार को उस मद से आय कम होती है। उसकी पूर्ति के लिए भारत-सरकार ने यहाँ बनी हुई इन चीज़ों पर यह कर लगाया है।

कारपोरेशन-कर। कम्पनियों की आय पर लगने वाला कर कारपोरेशन-कर कहा जाता है।

आय-कर। यह कर प्रायः दो हज़ार रु० से कम की आमदनी पर नहीं लिया जाता, कारण इतनी आय एक परिवार

के निर्वाह के लिए बहुत आवश्यक समझी जाती है। इससे अधिक आय पर, जैसे-जैसे आय की रकम बढ़ती है, इस कर की दर भी बढ़ती जाती है।

अफीम की आय। भारत-सरकार को इस मद की आय इस पदार्थ को विदेशों के लिए नीलाम करने से होती है। भारत-वर्ष के लिए भारत सरकार इसे एक निर्धारित दर से प्रान्तीय सरकारों के हाथ बेचती है। कुछ अफीम तो दवाइयों के काम आती है, शेष का सेवन आदमी नशे के लिए करते हैं, जो बहुत हानिकारक है।

मालगुजारी। यह प्रान्तीय सरकारों की आमदनी की सब से बड़ी मद है। इसके सम्बन्ध में जुदा-जुदा प्रान्तों में वहाँ की स्थिति के अनुसार अलग-अलग नियम हैं।

आबकारी। इस मद मे शराब, गांजा, अफीम आदि नशे के पदार्थों पर लगाये हुए सरकारी करों की आय सम्मिलित है। इनका प्रचार बहुत हानिकारक है।

सिविल-निर्माण-कार्य की आय में सरकारी मकानों का किराया, तथा उनकी बिक्री आदि से होने वाली आय शामिल है। टकसाल की आय मे खास कर पैसा, इकन्नी आदि सिक्के तथा कुछ देशी रियासतो के सिक्के ढालने का लाभ सम्मिलित है।

सैनिक आय में सैनिक स्टोर, कपड़े, दूध, मक्खन तथा फौज के पशुओं की बिक्री से होने वाली आय गिनी जाती है।

सूद की आय मे केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को, और प्रान्तीय सरकारें किसानों तथा म्युनिसिपैलिटियों आदि को जो रुपया उधार देती है, उसके सूद की रक़म सम्मिलित है।

सरकारी आय की रकमों का कुछ मोटा अन्दाज हो सके, इसके लिए आगे केन्द्रीय सरकार की सन् १९४४-४५ की और पञ्जाब प्रान्त की सन् १९४४-४५ और १९४५-४६ की आय के अङ्क आगे दिये जाते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि हर साल इन अङ्कों में कुछ न्यूनाधिक होता रहता है। स्थानाभाव के कारण अन्य प्रान्तों की आय के अङ्क न देकर, एक ही प्रान्त के अङ्कों से संतोष करना है।

केन्द्रीय सरकार की आय का अनुमान

सन् १९४४-४५

संख्या	मद	लाख रुपये
१	आयात-निर्यात-कर	२८,००
२	उत्पादन-कर	४०,६०
३	कारपोरेशन कर	८१,६१
४	आय-कर (कारपोरेशन के अतिरिक्त)	१००,८९
५	अफीम-कर	८०
६	सूद	१,४५
७	सिविल शासन	१,४४
८	मुद्रा और टकसाल	९,६६
९	सिविल-निर्माण-कार्य	५७
१०	युद्ध सम्बन्धी आय	११,३१
११	डाक और तार	११,३१
१२	रेल	३१,३७
१३	अन्य आय	३,२७
	योग	३२२,९१
	प्रान्तों को दी जाने वाली आय-कर की रकम	२३,६९
	शेष	२९९,२२

पंजाब सरकार की आय का अनुमान

(लाख रुपयों में)

संख्या	मद	सन् १९४५-४६	सन् १९४४-४५
१	मालगुजारी	३,३३,३२	३,५८,१३
२	आबकारी	३,२८,१६	३,२५,५२
३	स्टाम्प	१,२३,४०	१,२३,१३
४	जंगल	८३,७३	१,०५,६६
५	रजिस्ट्री	२०,३५	२०,७१
६	आबपाशी	६,०५,५८	६,२६,६४
७	सूद	३२,४७	२०,४१
८	न्याय	१६,२५	१९,६०
९	जेल	४,८५	४,८६
१०	पुलिस	८,१४	१४,७५
११	सिविल शासन सम्बन्धी विविध आय	७,४९	७,२२
१२	शिक्षा	२५,५४	२५,३७
१३	स्वास्थ्य और चिकित्सा	१९,५९	२१,४५
१४	कृषि, सहकारिता और उद्योग धन्धे	७५,१४	७२,९७
१५	सिविल-निर्माण-कार्य	४५,९१	५२,८१
१६	विविध(स्टेशनरी, प्रिंटिंग, पेन्शन का चन्दा)	९९,४०	९,३९,८५
१७	मोटर आदि कर	१२,६५	१२,८६
१८	मनोरञ्जन आदि कर	८५,०७	८४,११
१९	आय कर (कारपोरेशन कर छोड़कर)	१,८६,३२	२,०६,४८
२०	असाधारण आय	४,७०,५२	६,०५,४८
	योग	२५,८३,८८	२८,५१,०१

सरकारी आय-व्यय और लोक-हित—

यदि सरकार लोकहित का ध्यान रखे तो वह न तो कोई ऐसा कर लगाये, जिससे जनता को हानि पहुँचे, और न वह आमदनी का कोई हिस्सा इस तरह खर्च करे, जिससे जनता को अधिक-से-अधिक लाभ न पहुँचे। सरकार का कर लगाना, या करों को बढ़ाना आपत्तिजनक नहीं है, पर इसमें शर्त यह है कि करों से प्राप्त आय से इतना लोकहित होना चाहिए; जितना उस रुपये के जनता द्वारा खर्च किये जाने से नहीं हो सकता। सरकारी आय-व्यय पद्धति की कसौटी यही है कि जनता की दशा कैसी है? भारतवर्ष के विषय में स्वयं अङ्गरेजों या सरकारी अधिकारियों का कथन है कि यहाँ करोड़ों आदमियों को दो वक्त भरपेट भोजन नहीं मिलता, और बहुत से आदमी बड़े कष्ट और सङ्कट का जीवन बिताते हैं। शिक्षा, और स्वास्थ्य आदि की यहाँ कितनी कमी है, यह दूसरी जगह बताया गया है। इससे प्रत्यक्ष है कि भारतवर्ष में सरकारी आय-व्यय की पद्धति बहुत दूषित है। सेना की मद में कितना अधिक खर्च किया जाता है, यह हम पहले लिख आये हैं। अन्य उच्च अधिकारियों का वेतन और भत्ता भी भारतीय जनता की गरीबी को देखते हुए, अत्यधिक है। वायसराय और गवर्नरों के वेतन के अंक यथा-स्थान दिये गये हैं। भत्ते की भारी-भारी मकमें रहीं अलग। इसी तरह दूसरे अधिकारियों की बात है। जरा भी विचार करने से यह मालूम हो जाता है कि यहाँ ब्रिटिश राज्य में सरकारी आय-व्यय में मुख्य विचार इङ्गलैंड के हित का रहता था; और उस पर भारतीय जनता के प्रतिनिधियों का नियंत्रण बहुत

कम था। प्रान्तों के लिए उत्तरदायी शासन का विधान बन जाने पर भी खर्च की कितनी मद्दों पर प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का मत नहीं लिया जाता था। केन्द्रीय शासन मे उत्तरदायित्व था ही नही। वर्षों के संघर्ष के बाद अब भारत ब्रिटिश नियंत्रण से मोक्ष प्राप्त कर चुका है। हमारी राष्ट्रीय सरकार अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी अदम्य उत्साह के साथ लोकहितों के रक्षा-कार्य में अग्रसर हो रही है।

जाता है। हम यह भी कह सकते हैं कि शिक्षित व्यक्ति वह है, जिसकी संस्कृति या संस्कार अच्छे हों, जो सुसंस्कृत हो। इस लिए संस्कृति शब्द पर विचार करने से हम शिक्षा का आशय अच्छी तरह समझ सकते हैं।

संस्कृति—

संस्कृति के लिए अंगरेज़ी शब्द 'कलचर' है। यह उसी धातु से बना है जिसका अर्थ है—काश्त या खेती का कार्य, अथवा दशा। खेती करने में बहुत सी क्रियाएँ की जाती हैं। ज़मीन साफ़ की जाती है, उसमे हल चलाया जाता है, कंकर पत्थर आदि हटाये जाते हैं, घास-फूँस अलग किया जाता है, ज़मीन मे खाद और पानी दिया जाता है, और उसे ऐसा बनाया जाता है कि उसमें बीज बोने पर अच्छी फ़सल पैदा हो। फ़सल तैयार होने तक उसकी देख-भाल की जाती है, और जिन बातों से फ़सल को नुक़सान पहुँचने की आशंका हो उनसे रक्षा करने का प्रयत्न किया जाता है। ऐसा करने से फसल (अथवा पेड़-पौधे आदि) की पैदावार अच्छी होती है। इस तरह खेती के लिए एक प्रकार से भूमि का संस्कार या सफाई करते रहना होता है। और, इसके फलस्वरूप पैदावार अच्छी और अधिक परिमाण में होती है।

यही बात मनुष्य के संस्कार या संस्कृति के विषय में है। आदमी अपनीप्राकृतिक या स्वाभाविक दशामें पशु के समान होता है। यदि उसकी शिक्षा या संस्कार न हो तो उसका आचार-व्यवहार, रहन-सहन आदि पशुओं की तरह रहे। न उसे अपने कर्तव्य का ज्ञान हो और न दूसरों के अधिकारों का। वह मन-

माना आचरण करे, उसे दूसरों के दुःख-सुख का कुछ विचार न हो। धीरे-धीरे शिक्षा के द्वारा इन बातों में सुधार होता है। आदमी अपने वातावरण से प्रभावित होता है। वह माता-पिता, रिश्तेदार, मित्रों और अध्यापकों आदि से अनेक बातें सीख कर सुयोग्य नागरिक बनता है।

माता-पिता द्वारा शिक्षा—

आदमी के सबसे पहले शिक्षक या आचार्य उसके माता-पिता ही होते हैं। बालक उनकी बातें देख सुन कर बहुत सी बातें सीखता है। उन बातों का प्रभाव उसके मन पर बहुत अधिक पड़ता है। यहाँ तक कि कुछ अंश में वह प्रभाव जन्म भर तक बना रहता है। इसलिए यह आवश्यक है कि माता-पिता अपने उत्तरदायित्व को समझें और अपनी सन्तान को स्वस्थ, सदाचार सत्यवादी, दयालु, लोकसेवी और परोपकारी बनने की शिक्षा दें। यह शिक्षा उन्हें उपदेशों द्वारा ही नहीं देनी है, बल्कि अपने आचरण और उदाहरण से भी देनी है। इस शिक्षा में माता-पिता के अलावा; बालक के दूसरे रिश्तेदार—चाचा, चाची, ताऊ, ताई, बड़ा भाई या बड़ी बहिन आदि भी भाग लेतें हैं। प्रायः ये सम्बन्धी इस बात को जानते नहीं हैं, उनके बिना जाने बूझे, किसी प्रयत्न के बिना ही, उनके कार्यों द्वारा बालक को शिक्षा मिलती रहती है। यह शिक्षा अच्छी भी हो सकती है, और बुरी भी। इसलिए इन सम्बन्धियों को कोई कार्य ऐसा न करना चाहिए जिसका बालक के कोमल मन पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़े। माता-पिता और रिश्तेदारों के बहुत सावधान रहने से, बालक की यह

शिक्षा निर्दोष और गुणकारी हो सकती है। और उसे भविष्य में समाज का एक उपयोगी अंग बनने में सहायक हो सकती है।

अध्यापकों द्वारा शिक्षा—

बालक की शिक्षा में माता-पिता आदि के बाद अध्यापकों का नम्बर आता है। अच्छे अध्यापक केवल इस बात का ही प्रयत्न नहीं करते कि विद्यार्थी लिखना पढ़ना सीख लें, कुछ पुस्तकों का अर्थ समझ ले, और कुछ बाते कंठ करके परीक्षा में पास हो जायँ, वे विद्यार्थियों की मानसिक उन्नति के साथ उनकी शारीरिक और नैतिक उन्नति का भी ध्यान रखते हैं, वे उनमें अच्छी भावनाएँ पैदा करते हैं और अपने उदाहरण से उनके सामने ऊँचा आदर्श रखते हैं। इससे स्पष्ट है कि भावी नागरिकों को सुयोग्य बनाने में, अथवा समाज का सुन्दर निर्माण करने में अध्यापकों का भाग कितना महत्वपूर्ण है। खेद है कि खासकर छोटी श्रेणियों के अध्यापकों का वेतन प्रायः कम होने से, और आजकल दुनियाँ में पैसे का महत्व बहुत अधिक होने से, समाज में प्रायः अध्यापकों को उचित आदर-मान नहीं मिलता और उन्हें कष्टमय जीवन बिताना होता है। इसमे सन्देह नहीं कि किसी देश का भविष्य बनाने वाले बहुत कुछ अध्यापक ही होते हैं। ये भावी नागरिकों के विकारों को दूर करके उन्हें उसी तरह गुणवान् बनाते है, जैसे धातु-विज्ञान-वेत्ता खान से निकले हुए सोना चांदी आदि धातुओं के मैल को दूर कर उन्हें उजला, चमकीला और कीमती तथा उपयोगी बनाते हैं।

समाज का वातावरण—

ऊपर माता-पिता और अध्यापकों से मिलने वाली शिक्षा की बात कही गयी है। इनके अलावा आदमी पर दूसरे लोगों के

कार्यों और विचारों का भी प्रभाव पड़ता है। उपदेशक, लेखक, सम्पादक, आदि हर समय अपने विचार हमें देते रहते है, और हम उनसे किसी-न-किसी रूप में प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। यही नहीं, हमारे पड़ोसी, हमारे साथ खेलने वाले, व्यापारी दूकानदार और राजकर्मचारी आदि भी अपने अपने व्यवहार से हमे कुछ सोचने-विचारने की सामग्री देते रहते हैं। यह ठीक है कि शक्तिमान् या प्रतिभावान् आदमी समाज पर अपना प्रभाव डालता है, और उसमें कुछ सुधार वा परिवर्तन करने में सहायक होता है, परन्तु साधारणतया कोई आदमी सामाजिक वातावरण के प्रभाव से बच नहीं पाता। समाज मे अपने व्यक्तियों का संस्कार करने की अद्भुत शक्ति है। यह भी एक कारण है कि हर एक आदमी को इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि जहाँ तक हो सके वह समाज की उन्नति मे भाग ले—जिस समाज में भावी नागरिक अपना जीवन बिता रहे है, और जो समाज हमारे बाद आने वाली पीढ़ियों को बनाने मे महत्वपूर्ण भाग लेने वाला है।

आत्म-सुधार और समाज-सुधार—

समाज की उन्नति या सुधार करने का सब से प्रभावशाली उपाय यह नहीं है कि हम दूसरों को उपदेश देते फिरें कि ऐसा काम करो, और इस तरह के काम मत करो। जिन व्यक्तियों के मन में बहुत प्रबल प्रेरणा हो, वे लेखक, सम्पादक और उपदेशक आदि का काम कर सकते है, पर वास्तव में ऐसे आदमी किसी भी समाज में थोड़े से ही हो सकते है, और थोड़े से ही होने चाहिएं। साधारण व्यक्तियों का काम तो यह है कि वे अपने आप को सुधारने की ओर ध्यान दे। वे अपने कार्यों और व्यवहारों की स्वयं आलोचना

आर परीक्षा करें। जहाँ उन्हें कोई अपनी गलती मालूम हो, तुरंत उसका सुधार करें, और उसका सुधार होने तक चैन न लें। वे अपने जीवन को आदर्श बनावें। जिस काम को वे चाहते हैं कि समाज करने लग जाय, उसे सब से पहले वे स्वयं करके दिखावें। यदि ऐसा करने में उन्हें दूसरों से निन्दा या अपमान मिले तो वे उसे सहन करे। उनमे इतना आत्म-बल या साहस होना चाहिए कि किसी के बुरा-भला कहने या उपहास उड़ाने से वे अपने कर्त्तव्य से न हटें। इस प्रकार हम आत्म-सुधार करते हुए समाज सुधार में अच्छा भाग ले सकते हैं, और अपनी संस्कृति को उन्नत कर सकते हैं

संस्कृति की कसौटी—

संस्कृति का उद्देश्य व्यक्ति या समूह की स्वाभाविक शक्तियों का अधिक-से-अधिक विकास करना है। किसी की संस्कृति का पता हमें इस बात से मिलता है कि वह दूसरों के प्रति अपना कर्तव्य कहाँ तक पालन करता है। संस्कृत व्यक्ति ज्ञान से प्रेम इस लिए नहीं करता कि वह इसके द्वारा बहुत धन कमायेगा, वरन् इसलिए करता है कि वह इसके द्वारा समाज की खूब सेवा कर सकेगा, और इस सेवा करने में ही उसे आनन्द मिलेगा। हमारी संस्कृति की कसौटी यही है कि हम अपनी शक्तियों का उपयोग स्वार्थ-साधन के लिए करते है अथवा समाज के हित या कल्याण के लिए करते है। संस्कृत में किसी ने क्या ही अच्छे भाव वाला श्लोक कहा है—असाधु (असंस्कृत) व्यक्ति अपनी विद्या का विवाद या झगड़े मे, धन का अहंकार मे, और शक्ति का दूसरों को सताने मे, उपयोग करता है, जब कि साधु (संस्कृत) सज्जन इन का उपयोग क्रमशः ज्ञान, दान और रक्षा में करता है। अस्तु, हम सबको सुसंस्कृत होने का प्रयत्न करना चाहिए।

अनपढ़ों की यहाँ भरमार है। और पढ़े-लिखे आदमी अधिकतर अस्वस्थ, दुर्बल या रोगी रहते हैं। प्रायः वे नौकरी के सिवाय और कुछ काम-धन्धा करने के योग्य नहीं होते, और जब उन्हें नौकरी नहीं मिल पाती तो बेकारी का दुख भोगते हैं। इस दुरवस्था का मुख्य कारण हमारी राजनैतिक पराधीनता थी। विदेशी सरकार की कृपा से अन्य शिक्षा का माध्यम भारत में सर्वत्र अंग्रेजी भाषा थी। विविध वर्गों की शिक्षा की ओर ध्यान बहुत कम दिया जाता था। शारीरिक और नैतिक शिक्षा की भी उपेक्षा की जाती थी। अब राष्ट्रीय सरकार बरसों से प्राप्त इस दुःखद अवस्था को सुलझाने में प्रयत्नशील है।

प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य होनी चाहिए—

इस विषय में पहले तो यही बात सामने आती है कि प्रारम्भिक शिक्षा देश भर में लाजमी या अनिवार्य होनी चाहिए, और वह निःशुल्क या बिना फीस दी जानी चाहिए। सन् १९११ में माननीय श्री गोखले ने इसके लिए भारतीय व्यवस्थापक-सभा में एक बिल (कानूनी मसविदा) पेश किया था लेकिन सरकार ने उसे आर्थिक कठिनाइयों के आधार पर अस्वीकार किया। पीछे सन् १९१८-२० में विविध प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभाओं ने समय समय पर इसके सम्बन्ध में कानून पास किया। प्रायः जो म्युनिसिपैलिटियाँ इस शिक्षा के लिए एक-तिहाई खर्च देना स्वीकार करें, उन्हें शेष खर्च के लिए सरकारी सहायता मिलती है। लेकिन इससे भी शिक्षा का प्रचार बहुत कम बढ़ा है। आवश्यकता है कि पढ़ने

की उम्र वाले प्रत्येक बालक-बालिका की शिक्षा की व्यवस्था हो, और उनको देखने-सुनने, छूने आदि का अच्छा अवसर दिया जाय, जिससे उनकी ज्ञानेन्द्रियों का खूब विकास हो। हमें देश के प्रौढ़ व्यक्तियों को भी न भूलना चाहिए। इन्हें भी पढ़ना-लिखना सिखा कर इनके काम-काज सम्बन्धी बातों का, तथा नागरिक विषयों का अधिक ज्ञान कराया जाना चाहिए।

शिक्षा, जीवन से सम्बन्धित होनी चाहिए—

शिक्षा विशेष उपयोगी तभी हो सकती है, जब उसका हमारे जीवन से यथेष्ट सम्पर्क हो, वह कोरी किताबी शिक्षा न हो। इस लिए हमारी शिक्षा मे हमारी नित्यप्रति की उपयोगी बातों का समुचित समावेश रहना चाहिए। छोटे बालकों को भूगोल, गणित, इतिहास आदि की ऐसी बातें कंठ करने के लिए वाध्य न किया जाना चाहिए जिनसे उनका विशेष सम्बन्ध नहीं है, और जिन्हें वे अच्छी तरह समझ भी नहीं पाते। इसी तरह अर्थशास्त्र या राजनीतिशास्त्र के गूढ़ सिद्धान्त या विवादग्रस्त बातों को छोड़कर विद्यार्थियों को गाँवों या नगरों के आर्थिक या राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। किसान बालकों को खासकर कृषि सम्बन्धी बातों की जानकारी करायी जानी चाहिए, जिससे वे अच्छी फ़सल पैदा कर सकें, अपने पशुओं को बीमारी से बचा सकें। लड़कियों की शिक्षा में पाक-शिक्षा, सेवा-शुश्रूषा, प्रारम्भिक चिकित्सा, कला-कौशल और गृह-प्रबन्ध आदि विषयों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। नागरिकता की मोटी-मोटी बातों की शिक्षा तो सभी को मिलनी आवश्यक है, जिससे विद्यार्थी अपने परिवार, ग्राम, नगर, समाज

और देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को समझें और उसका अच्छी तरह पालन करें।

शारीरिक शिक्षा—

शिक्षा में प्रायः मानसिक उन्नति की ओर ही विशेष ध्यान दिया जाता है। पर वास्तव में उसके साथ विद्यार्थियों की शारीरिक उन्नति भी काफी होती रहनी चाहिए। अन्यथा उनका स्वास्थ्य खराब होने से मानसिक उन्नति भी रुक जाने की सम्भावना रहती है। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अच्छे सात्विक भोजन के अलावा व्यायाम, खेल-कूद और शुद्ध आचार-विचार की आवश्यकता है। प्रायः स्कूलों में विदेशी खेलों का प्रचार बढ़ता जा रहा है, पर उनमें खर्च बहुत पड़ता है, और थोड़े से ही विद्यार्थी उनसे लाभ उठा सकते हैं। जरूरत है कि 'कम खर्च बालानशीं' देशी व्यायाम-शालाओं की यथेष्ट व्यवस्था हो। विद्यार्थियों के लिए व्यायाम और खेल-कूद अनिवार्य होने चाहिएँ, और अध्यापकों को भी मैदान में उपस्थित होकर, तथा स्वयं भाग लेकर विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

नैतिक शिक्षा—

युवावस्था में विद्यार्थियों को अच्छी संगति और शुद्ध विचारों की खास जरूरत होती है। शिक्षा में इस ओर काफी ध्यान दिया जाना चाहिए। नैतिक कहानियों और महापुरुषों के जीवन-चरित्रों को सुनना-सुनाना बहुत उपयोगी होता है। इसके साथ आवश्यक है कि अध्यापक सुयोग्य और सच्चरित्र हों, जो अपने उपदेशों से बढ़कर, अपने कार्य और उदाहरण से विद्यार्थियों पर अच्छा प्रभाव डाल सकें। स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था रहनी

चाहिए। धार्मिक शिक्षा से अभिप्राय किसी खास मत, मज़हब या सम्प्रदाय सम्बन्धी शिक्षा से नहीं है, वरन् लोक-सेवा, दया, उदारता, परोपकार, सहानुभूति और प्रेम-भाव आदि की उन बातों से है, जिनके सम्बन्ध में सभी धर्म एकमत हैं। विद्यार्थियों को विविध धर्मों की अच्छी-अच्छी बातों का ज्ञान कराया जाना चाहिए, जिससे उनमें धार्मिक पक्षपात या द्वेष-भाव न होकर, सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता और समभाव पैदा हो, वे व्यापक या बड़े संगठनों में भाग ले सकें।

सेवा और परोपकार आदि की व्यावहारिक शिक्षा के लिए बालचर या 'स्काउट' संस्थाएँ बहुत उपयोगी है। इनकी व्यवस्था स्थान-स्थान पर होनी चाहिए और विद्यार्थियों को इनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इनसे स्वावलम्बन, किफायतशारी और सहकारिता या मेल-जोल का भाव बढ़ता है।

शिक्षा और आजीविका-प्राप्ति—

वर्तमान दशा में शिक्षित व्यक्ति प्रायः इस योग्य नहीं होते कि स्वतंत्र रूप से आजीविका प्राप्त कर सकें। वे अधिकांश में नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटकते फिरते हैं। नौकरियों की संख्या किसी देश में बहुत परिमित ही होती है। और जब हमारे पढ़े-लिखे युवक नौकरी पाने में असफल होते हैं, तो उन्हे बड़ी निराशा होती है। इसे दूर करने के लिए शिक्षा का आजीविकोपयोगी होना बहुत आवश्यक है। प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि विद्यार्थियों को हाथ के काम में रुचि रहे, और वे इसका अभ्यास करते रहें। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद विद्यार्थियों को व्यापार, विज्ञान, कला-कौशल, हुनर आदि की

ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे उन्हे अपनी आजीविका प्राप्त करने मे सुविधा हो। विज्ञान की शिक्षा से यह भी लाभ है कि वह आदमी के अंधविश्वास को दूर करके, तथा उसे तर्कशील या विचारशील बनाकर जीवन-यात्रा के लिए अधिक योग्य बनाती है।

शिक्षकों का चुनाव—

आजकल अधिकतर ऐसे ही आदमी शिक्षक का काम करते हैं, जो इस काम मे ख़ास रुचि या उत्साह नहीं रखते, और जो अपने भाग्य की परीक्षा मे, दूसरे कामों मे, निराश हो चुकते है। फिर, खासकर छोटी क्लासों के अध्यापकों का वेतन कम रहने से, वे अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए दूसरे सहायक काम करते है, और जब उन्हे दूसरे काम से स्थायी रूप से अच्छी आमदनी की आशा होती है, तो वे जल्दी ही अध्यापक का कार्य छोड़ देते है। इसका परिणाम यह होता है कि बालकों की शिक्षा की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता। आवश्यकता ऐसे अध्यापकों की है, जो शिक्षा देने का काम करने के योग्य हों, जो खूब मन लगाकर, प्रेम-पूर्वक पढ़ावें, और विद्यार्थियों को न केवल बौद्धिक वरन् शारीरिक और नैतिक शिक्षा देना भी अपना कर्तव्य समझें। साथ ही अध्यापकों को वेतन भी इतना दिया जाना चाहिए कि उनका निर्वाह अच्छी तरह हो सके, और उन्हें दूसरे कामों में अपनी शक्ति और समय न लगाना पड़े। वे अपनी पूरी शक्ति विद्यार्थियों के हित लगा सकें, और इसके लिए समय-समय पर विद्यार्थियों के संरक्षको या अभिभावकों से मिलते रहकर, उनका भी सहयोग प्राप्त करते रहे। ऐसे सुयोग्य शिक्षक ही भावी नागरिकों को अच्छे नागरिक बना सकते हैं।

अँगरेज़ी शिक्षा का आरम्भ—

आधुनिक काल की शिक्षा सम्बन्धी एक मुख्य घटना यहाँ अंगरेज़ी शिक्षा का प्रचार होना है। पहले-पहल यह काम ईसाई पादरियों ने किया, इनका प्रधान उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था। श्री राजा राममोहन राय आदि समाज-सुधारकों ने भी अंगरेज़ी शिक्षा के प्रचार मे योग दिया। ईस्ट-इंडिया-कम्पनी ने पहले प्राचीन शिक्षा-प्रणाली प्रचलित रखने में ही सहायता दी। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ (सन् १८१३) में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने निश्चय किया कि कम्पनी हर साल कम-से-कम एक लाख रुपया शिक्षा की उन्नति में लगावे। इसके बाद सन् १८२३ मे देहली और आगरे में कालिज खोले गये, जिनमें अंगरेज़ी भी पढ़ाई जाती थी। धीरे-धीरे यहाँ सरकार शिक्षा-प्रचार की समर्थक हो गयी। बात यह हुई कि कम्पनी को अपना कारोबार चलाने के लिये दफ्तरों के वास्ते क्लर्कों की बहुत जरूरत थी। उसने सोचा कि यदि यहाँ शिक्षा ऐसी दी जाय जो क्लर्क बनाने में सहायक हो तो नौकर आसानी से और सस्ते मिल जाया करेंगे। कम्पनी को यह भी आशा थी कि अंग्रेजी शिक्षा पाकर युवकों में फैशन या शौकीनी बढ़ेगी, और वे हमारा सामान अधिक खरीदेंगे। इसके अलावा कम्पनी ने अनुभव किया कि अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीयों की संख्या जितनी अधिक होगी, उतना ही हमारा राज्य अधिक टिकाऊ या मज़बूत होगा। सरकार के कानूनी सलाहकार मेकाले के ये शब्द बहुत महत्त्व के हैं—"हमें अपनी सारी शक्ति लगा कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हम भारतवासियों की एक ऐसी श्रेणी तैयार कर सकें, जिसके आदमी हमारे, और हमारी लाखों प्रजा के बीच दुभाषिये का काम कर सकें,

जो जाति और रंग में तो भारतीय ही रहें, परन्तु रुचि, विचार, भाषा और भावों में पूरे अंगरेज़ हों।"

इस पृष्ठ-भूमि को ध्यान में रखकर हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि क्यों सन् १८३५ में लार्ड विलियम बेंटिंक की सरकार ने निश्चय किया कि देशी भाषाएँ केवल प्रारम्भिक शिक्षा के काम में लाई जायँ; ऊँची शिक्षा का माध्यम अंगरेज़ी हो। सन् १८५३ ई० से शिक्षा का प्रचार बढ़ाने की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। सन् १८५७ ई० में कलकत्ते, बम्बई और मदरास में विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। सन् १९१० से सरकार का एक अलग शिक्षा-विभाग बनाया गया।

वर्तमान व्यवस्था—

अब देश की अधिकतर शिक्षा-संस्थाओं पर सरकारी देख-रेख या नियन्त्रण है। कुछ संस्थाएँ ऐसी भी हैं; जिन्हें जनता अपने खर्च से चलाती है, और जो सरकार से कुछ सम्बन्ध न रखकर अपना कार्य स्वतन्त्र रूप से चलाती हैं। प्रस्तुत संस्थाओं के मुख्य भेद ये हैं—

१. प्राइमरी या प्रारम्भिक स्कूल

२. सेकेंडरी या माध्यमिक स्कूल

३. कालिज या महाविद्यालय

४. उद्योग-धन्धों के स्कूल और कालिज

अब हम इनके संगठन आदि के विषय में कुछ आवश्यक बातें बतलाते हैं।

प्राइमरी शिक्षा—

प्राइमरी स्कूल बहुत से बड़े-बड़े गॉवों में तथा सब शहरों में हैं। इनमे हिन्दी, बंगला, या मराठी आदि देशी भाषाओं में लिखना-पढ़ना तथा कुछ भूगोल और हिसाब सिखाया जाता है। इनकी पढ़ाई प्रायः चार वर्ष की होती है। गाँवों के प्राइमरी स्कूल ज़िला-बोर्ड (या ज़िला-कौंसिल) के खर्च से, और शहरों के प्राइमरी स्कूल म्यूनिसिपैलिटियों के खर्च से चलते हैं। अभी बहुत से गॉव ऐसे हैं, जिनमे एक-एक भी प्राइमरी स्कूल नहीं है। कुल प्राइमरी स्कूलों मे १,५७,८२७ स्कूल तो लड़कों के, और २४,१४१ स्कूल लड़कियों के हैं।

माध्यमिक शिक्षा—

प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई समाप्त करके विद्यार्थी वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल मे प्रविष्ट हो सकता है, और उसकी पढ़ाई पूरी करके तथा अंगरेजी मिडिल क्लास की अंगरेज़ी की पढ़ाई करने पर वह हाई-स्कूल मे प्रवेश कर सकता है। अथवा, यदि विद्यार्थी चाहे तो वह प्राइमरी क्लास पास करके अंगरेज़ी मिडिल स्कूल में जा सकता है, और उसकी शिक्षा पूरी करके हाई-स्कूल में प्रवेश कर सकता है। हाई-स्कूलों तक शिक्षा प्रायः देशी भाषाओं द्वारा दी जाती है। हाई-स्कूल की अन्तिम परीक्षा को एन्ट्रेंस, मेट्रीक्यूलेशन, स्कूल-लीविंग या "हाई-स्कूल-सर्टिफिकेट" परीक्षा कहते हैं। हाई-स्कूल की अन्तिम क्लास कुछ प्रांतों मे दसवीं और कुछ में ग्यारहवीं होती है। मिडिल स्कूलों में ६८७१ तो लड़कों के हैं, और १२६१ है लड़कियों के। हाई-स्कूलों की कुल संख्या ४०३५ है, जिनमें से ३४६६ लड़कों के और शेष लड़कियों के हैं।

कुछ प्रान्तों में मिडिल और हाई-स्कूल की शिक्षा का क्रम निश्चित करने और इनकी अन्तिम परीक्षा लेने का प्रबन्ध करने के लिए 'हाई-स्कूल बोर्ड' बनाये गये हैं। संयुक्तप्रान्त आदि कुछ स्थानों में हाई-स्कूल की अन्तिम दो, तथा कालिजों की प्रथम दो श्रेणियों की शिक्षा के लिए इंटरमीडियट कालिज खोले गये हैं। इनका शिक्षा-क्रम निश्चित करने और परीक्षा का प्रबन्ध करने का कार्य 'हाई-स्कूल और इंटरमीडियट शिक्षा-बोर्ड' करता है।

उच्चशिक्षा—

हाई-स्कूल के आगे की पढ़ाई कालिज में होती है। कालिज की दो वर्ष की पढ़ाई पूरी करने पर एफ. ए., और एफ ए. के दो वर्ष बाद बी ए. की परीक्षा होती है। बी. ए. पास को 'ग्रेजु-एट' (स्नातक) कहते हैं। इसके दो वर्ष बाद की परीक्षा पास करने वाले एम. ए. कहलाते हैं। उच्च शिक्षा का माध्यम अभी तक अधिकांश के अंगरेज़ी रहा है। परन्तु अब यूनिवर्सिटियों के अधिकारी भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने के सिद्धान्त को स्वीकार कर चुके हैं। एप्रिल १९४८ में देहली में वाइसचांसलरों की एक बैठक हुई थी, जिसमें यह निर्णय किया गया था कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में यूनिवर्सिटी-शिक्षा स्थानीय भाषाओं (Regional Languages) में होनी चाहिये। इसके आधार पर केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तीय शिक्षा विभागों को आदेश किया है कि ५ वष के अन्दर यूनिवर्सिटी-शिक्षा में अंगरेज़ी का स्थान स्थानीय भाषाओं को मिल जाना चाहिये। निस्सन्देह अब

जब कि भारत स्वराज्य प्राप्त कर चुका है, यह अत्यन्त आवश्यक है कि अब अंगरेजी का मोह कम हो, और भारतीय भाषाओं को यथेष्ट महत्व दिया जाय।

उच्चशिक्षा का क्रम निश्चित करने और उसकी परीक्षा लेने का प्रवन्ध विश्वविद्यालय या 'यूनिवर्सिटी' करती है। भारतवर्ष में सब मिलाकर १६ विश्वविद्यालय थे, इनमें से पाँच तो संयुक्त प्रान्त मे ही है—इलाहाबाद, बनारस, आगरा, लखनऊ और अलीगढ़ में। मध्यप्रान्त का विश्वविद्यालय नागपुर में, बिहार का पटना में, और पूर्वी पंजाब का सोलन में है। हरेक विश्वविद्यालय मे कुछ कालिज हैं। अखंड भारत मे सब आर्ट्स (साहित्य) कालिज ३३८ थे—२६१ तो पुरुषों के, और ४७ स्त्रियों के।

स्त्री-शिक्षा—

भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा का प्रचार बहुत कम है। ऊपर प्राइमरी स्कूलों, मिडिल-स्कूलों, हाई-स्कूलों और आर्ट्स कालिजों की संख्याएँ दी गयी हैं, उनसे स्पष्ट है कि पुरुषों की संस्थाओं की अपेक्षा स्त्रियों की संस्थाएँ कितनी कम है। इस समय जब कि ११६ लाख लड़के शिक्षा पा रहे हैं, शिक्षा पाने वाली लड़कियों की संख्या केवल ३६ लाख है। बाल-विवाह, तथा पर्दे की कुरीतियाँ लड़कियों की उच्च-शिक्षा मे बहुत ही बाधक हैं। इसलिए अधिकांश लड़कियाँ प्राइमरी शिक्षा पाकर ही रह जाती हैं। इसमें क्रमशः सुधार हो रहा है; आशा है पढ़ने वाली बालिकाओं की संख्या बढ़ती जायगी, और उनमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाली भी अधिकाधिक होंगी।

व्यवसाय-धंधों की शिक्षा—

देश में साधारण शिक्षा तो कम है ही, औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था उससे भी कम है। थोड़े से ही नगरों में सरकार की ओर से ऐसे स्कूल खुले हुए हैं, जिनमें दस्तकारी, धातु का काम, जेवर बनाना, जवाहरात का काम, कपड़े और दरी बुनना, मिस्त्री का काम, मिट्टी के खिलौने बनाना, लकड़ी लोहे आदि का, या दर्जी का काम सिखाया जाता है।

कुछ स्थानों में व्यापारिक शिक्षा भी दी जाती है। कई प्रान्तों के अंगरेजी स्कूलों में चित्रकारी, कृषि, बुककीपिंग, (अंगरेजी ढंग का बहीखाता) शार्टहैंड (शीघ्रलिपि) और टाइप करना आदि सिखाया जाता है।

कुछ बड़े-बड़े नगरों में चिकित्सा, एंजिनियरिंग, कृषि, कामर्स (शार्टहैंड, टाइप और बुककीपिंग) और शिल्प के स्कूल और कालिज हैं। चिकित्सा और कानून की शिक्षा पाकर विद्यार्थी डाक्टर और वकील बनते हैं। अध्यापक का कार्य सीखने के लिए नार्मल स्कूल, ट्रेनिंग स्कूल और ट्रेनिंग कालिज हैं।

कानपुर, नागपुर, अमृतसर और पूसा (बिहार) आदि में कृषि-कालिज हैं। उनके साथ कृषि-विज्ञानशाला तथा पशु-शाला हैं। उनमें अनुभव प्राप्त करने के लिए खेती के तरह-तरह के प्रयोग किये जाते हैं, जिससे नयी-नयी खोज हो, और खेती के रोग दूर करने के उपाय मालूम हों। कृषि-कालिजों में शिक्षा अंगरेजी भाषा द्वारा दी जाती है, इससे विद्यार्थियों को यथेष्ट लाभ नहीं होता और वे देश की समुचित सेवा करने योग्य

नहीं होते। शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएं होने की बहुत आवश्यकता है।

शिक्षा-संगठन—

शिक्षा-विभाग का मंत्री शिक्षा-मंत्री कहलाता है। उसके नीचे प्रान्त में एक डायरेक्टर होता है, जिसका पूरा पद 'डायरेक्टर-ऑफ-पबलिक इन्स्ट्रक्शन' (डी. पी. आई.) है। यह प्रान्त भर के शिक्षा-कार्य की देख-रेख करता और शिक्षा-मंत्री को उचित परामर्श देता है। इसके अधीन कुछ इन्स्पेक्टर होते हैं, जो प्रायः एक डिविजन या सर्किल के स्कूलों का निरीक्षण करते हैं। इन्स्पेक्टर की सहायता के लिए असिस्टेंट इन्स्पेक्टर तथा डिप्टी-इन्स्पेक्टर या जिला-इन्स्पेक्टर होते हैं। डिप्टी-इन्स्पेक्टर के अधीन सब-डिप्टी-इन्स्पेक्टर काम करते है।

योरुपियन स्कूलों की देख-रेख के लिए अलग इन्स्पेक्टर होते है। जो स्कूल किसी विशेष दस्तकारी अथवा कृषि आदि की शिक्षा देते हैं, उनकी देख-रेख उन उन विषयों के सरकारी विभागों के अधिकारी करते हैं। सरकार कुछ संस्थाओं को स्वयं चलाती है, और कुछ को सहायता देती है। ऐसी सब संस्थाओं को अपना पाठ्य-क्रम निश्चित करने, तथा अध्यापकों को रखने या अपनी इमारतें आदि बनवाने मे सरकारी नियमों का पालन करना होता है। सरकारी इन्स्पेक्टर समय-समय पर उनका निरीक्षण करते हैं।

जैसा पहले संकेत कर दिया गया है, देश में कुछ संस्थाएँ ऐसी भी हैं, जो न तो सरकारी सहायता लेती हैं, और न

सरकारी शिक्षा-विभाग के नियमों से बंधी हैं। इन संस्थाओं में मुख्य गुरुकुल, ऋषिकुल, विद्यापीठ आदि के अतिरिक्त राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाएं है, जो धार्मिक संस्थाओं, उदार सज्जनों या सार्वजनिक चन्दे आदि से चलायी जाती है। कुल मिला कर भी शिक्षा-प्रचार की अभी बहुत गुञ्जायश है। शिक्षा-प्रेमियों को ध्यान देना चाहिए।

आधुनिक सुधार और उनका प्रभाव

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि इस समय देश में शिक्षा की व्यवस्था कैसी है। अब हम प्रमुख सुधारों का विचार करते हैं। इसके लिए हमें ख़ासकर पिछले तीस वर्ष की घटनाओं पर नज़र डालनी चाहिए।

कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-कमीशन—

पहली मुख्य बात कलकत्ता-यूनिवर्सिटी-कमीशन की स्थापना है। इसकी जाँच का कार्य सन् १९१७ से १९१९ तक हुआ। इसकी सिफारिशों के अनुसार बहुत से स्थानों में इंटरमीडियट कालिज खोल कर इंटर तक की क्लासों को विश्वविद्यालय से जुदा रखने की व्यवस्था की गयी। अब इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, अलीगढ़, ढाका, कलकत्ता आदि के कई एक विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने वाले न रहे, वे पढ़ाई की भी व्यवस्था करने लगे। उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थी उनकी देख-रेख में, यथा-सम्भव छात्रालयों (होस्टलों या बोर्डिङ्ग-हाउसों) में रहने लगे। अध्यापकों को ट्रेन्ड करने और मुसलमानों का शिक्षा में उत्साह बढ़ाने की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

सन् १६१६ के शासन-सुधार—

सन् १६१६ में जो शासन-विधान बना, उसके अनुसार शिक्षा का विषय प्रांतीय सरकारों को सौंप दिया गया; भारत-सरकार का इसमें हस्तक्षेप करना बन्द हो गया। प्राँतों में भी शिक्षा का विषय 'समर्पित' या 'ट्राँसफर्ड' ठहराया गया; अर्थात् यह विषय मंत्रियों के सुपुर्द किया गया जो अपने कार्य के लिए प्राँतीय व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होने लगे। इस प्रकार मंत्रियों को यह अवसर दिया गया कि वे प्राँतीय परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा-संस्थाओं में सुधार करें। यद्यपि आर्थिक कठिनाइयों के कारण, सुधार-कार्य जितना चाहिये था, न हो सका, तथापि उक्त व्यवस्था से बहुत कुछ लाभ उठाया गया।

सन् १६२७–२८ में एक कमीशन नियुक्त किया गया, जिसके सभापति सर फिलिप हरजोग थे। इस कमीशन ने भारतीय शिक्षा की जांच करके कुछ उपयोगी सिफारिशें कीं।

इंटरमीडियट कालिजों का प्रभाव—

इंटरमीडियट कालिजों की स्थापना की बात ऊपर कही गई है। इसका प्रभाव यह पड़ा कि विश्वविद्यालय इंटर तक पढ़ाई करने वाली संस्थाओं के शिक्षा तथा परीक्षा-कार्य से मुक्त होकर अब स्नातक (ग्रेजुएट) तथा स्नातकोत्तर परीक्षाओं के पाठ्यक्रम आदि की ओर अधिक ध्यान देने लग गये। इससे उनके कार्य में बेहतरी और सुधार का अवसर मिला। इसके अलावा बहुत से हाई-स्कूल जब इंटर कालिज बन गये तो उन स्थानों के विद्यार्थियों को, जो अधिकांश में हाई-स्कूल परीक्षा के बाद ही अपनी पढ़ाई

बन्द कर देते, अब इंटर तक पढ़ने के लिए सुविधा और प्रोत्साहन मिला। फिर हाईस्कूल क्लासों के विद्यार्थियों को इंटर के विद्यार्थियों के सम्पर्क मे आने से उनका दृष्टिकोण और विचार-धारा पहले से अधिक विकसित होने लगी, और उच्चशिक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार होने मे सहायता मिली।

सन् १६३५ के शासन-सुधारों के बाद; शिक्षा-प्रचार—

सन् १६३५ के शासन-विधान से प्रांतों में प्रजातन्त्रात्मक सरकारों की स्थापना हुई। इससे प्रांतों के, खासकर कॉग्रेसी मंत्रिमंडल वाले प्रांतों के शिक्षा-कार्य मे विशेष स्फूर्ति मिली। अब शिक्षा के हरेक अङ्ग के सम्बन्ध मे गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाने लगा। प्राईमरी शिक्षा पाने वाले बालकों की ओर भी ध्यान दिया गया; और बुनियादी शिक्षा जारी की गई, जिसके विषय में विशेष आगे लिखा जायगा। जगह-जगह पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित किये गये, जिनसे लोगों को सामयिक विषयों की जानकारी हो, और उनमे ज्ञान प्राप्त करने का शौक बना रहे। शिक्षा-प्रचार के लिए स्थान-स्थान पर शिक्षा-सप्ताह मनाये गये। निरक्षरता दूर करने के लिए संयुक्तप्रान्त की सरकार ने प्रौढ़ शिक्षा की योजना जारी की; स्थान-स्थान पर रात्रि-पाठशालाएँ कायम की गईं। विविध शिक्षा संस्थाओं से प्रार्थना की गई कि वे अपने-अपने क्षेत्र में बड़ी उम्र के आदमियों को भी पढ़ाने का कार्य करें। यह निश्चय किया गया कि जो अध्यापक इस कार्य मे विशेष उत्साह दिखाएँगे, उन्हें सरकार यथाशक्ति पुरस्कार देगी। बहुत से ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों तथा अन्य शिक्षा-प्रेमी सज्जनों ने अपने अवकाश का समय इस

काम में लगाया, और बड़े उत्साह से शिक्षा की प्रगति मे भाग लिया। यह काम एक सीमा तक ही हो पाया था कि प्रांतो की कॉंग्रेसी सरकारों ने सन् १९३९ मे इस्तीफा दे दिया। पीछे इन प्रांतों के गवर्नरों का एक-छत्र-शासन रहा, इनमे एवं अन्य प्रांतो मे सरकारों का ध्यान विशेपतया युद्ध सम्बन्धी विपयों की ओर रहा और शिक्षा की प्रगति प्रायः रुकी ही रही।

शिक्षा का माध्यम—

पहले विश्वविद्यालयों मे ही नहीं, हाई-स्कूल क्लासों मे भी शिक्षा-माध्यम अंग्रेजी भापा थी। विद्यार्थियो को भूगोल, इतिहास आदि यहॉ तक कि संस्कृत और फ़ारसी आदि विषय भी अंग्रेजी मे पढ़ने होते थे। इससे विद्यार्थियो को विपय का वास्तविक ज्ञान बहुत कम होता था, और वे किसी तरह पास होने की योग्यता प्राप्त करने मे लगे रहते थे। यह वात सर्वथा अस्वाभाविक और विद्यार्थियों पर बहुत अधिक भार डालने वाली थी। सभी शिक्षा-विशेपज्ञ यह स्वीकार करते है कि भारतवासियों के लिए एक भापा के तौर पर अंग्रेज़ी का ज्ञान चाहे जितना आवश्यक हो, उन्हे विविध विषयो की शिक्षा तो अपनी प्रान्तीय भापा मे ही मिलनी चाहिए। सन् १९३७ मे प्रान्तो में जब लोकतंत्रात्मक सरकारे स्थापित हुईं तो उन्होंने इस ओर ध्यान देना आवश्यक समझा। कई प्रान्तों मे हाई-स्कूल तक शिक्षा का मधयम देशी भाषाएँ निर्धारित की गईं। संयुक्तप्रांत की सरकार ने इंटर (एफ० ए०) मे भी शिक्षा का माध्यम घोषित कर दिया। विद्यार्थियों को यह अधिकार दिया गया कि वे परीक्षा मे विविध विषयों के प्रश्नों का उत्तर हिन्दी या उर्दू में

भी दे सकते हैं। पंजाब के एफ़० ए० और बी० ए० के छात्रों को भी कुछ विषयों में यह अधिकार प्राप्त हुआ। उसमानिया यूनिवर्सिटी ने सर्वप्रथम अंग्रेजी के स्थान उर्दू को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया। धीरे-धीरे काशी, लखनऊ और नागपुर के विश्वविद्यालयों में भी स्थानीय भाषाओं को उत्तरोत्तर उन्नत स्थान मिलने लगा। तो भी विदेशी सरकार के समय में इस ओर कोई क्रांतिकारी पग उठाया नहीं जा सकता था। अब हमारी राष्ट्रीय सरकार बड़ी तन्मयता से शिक्षा-माध्यम तथा राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार कर रही है और जल्दी-से-जल्दी अंग्रेज़ी को वर्तमान पद से हटाकर उसके स्थान पर प्रान्तों मे स्थानीय भाषाओं और केन्द्र मे राष्ट्रभाषा को स्थान देने का प्रयत्न कर रही है।

बुनियादी शिक्षा—

भारतवर्ष में जो शिक्षा-प्रणाली प्रचलित है, इसमें आमूल परिवर्तन करने के लिए समय-समय पर नेताओं ने विचार किया है। सन् १६३७ में म० गांधी ने 'हरिजन' में लेख लिखकर यह सूचित किया कि शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने से ही यहाँ प्रारम्भिक शिक्षा का यथेष्ट प्रचार हो सकता है, इसके लिए किसी उत्पादक उद्योग या दस्तकारी को आधार मानकर शिक्षा दी जानी चाहिये, शिक्षा सात वर्ष तक हो, और उसमें अंग्रेज़ी को छोड़कर मैट्रिक तक की योग्यता का समावेश हो, उसका माध्यम मातृ-भाषा हो, वह अनिवार्य और निःशुल्क हो। महात्मा जी के इन विचारों की विवेचना करने के लिए उनके सभापतित्व में एक अखिल-भारतीय-शिक्षा-परिषद् का आयोजन हुआ, जिसमें अनेक

शिक्षा-विशेषज्ञों के अतिरिक्त कॉग्रेसी प्रान्तों के शिक्षा-मंत्रियों ने भी भाग लिया। इस परिषद् ने महात्मा जी के विचारों का समर्थन करते हुए कुछ प्रस्ताव पास किये। इन प्रस्तावों को सामने रख कर बुनियादी-शिक्षा की योजना तैयार करने के लिए शिक्षा-विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की गई, जिसे उसके सभापति के नाम पर 'जाकिरहुसेन समिति' कहा जाता है। इसने दिसम्बर १६३७ में बुनियादी शिक्षा की योजना प्रकाशित की। इसमें महात्मा जी के विचारों को स्वीकार करते हुए बताया गया कि शिक्षा का आधार या केन्द्र किसी प्रकार की उत्पादक दस्तकारी होनी चाहिए, शिक्षा के दूसरे विषय—भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान और ड्राइंग (आलेख्य) आदि—का सम्बन्ध उस दस्तकारी से होना चाहिए, उस दस्तकारी का चुनाव बालकों के वातावरण, और उस जगह की परिस्थिति को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। प्रयोग के लिए कताई-बुनाई, बुनियादी दस्तकारी मानी जाय; और नागरिक-ज्ञान (सिविक्स) आदि समाज-शास्त्र की शिक्षा दी जाय।

विशेष वक्तव्य—

जगह-जगह बुनियादी शिक्षा-संस्थाएँ कायम की गईं, और खूब उत्साह से काम होने लगा था। लेकिन सन् १६३६ में कॉग्रेसी मंत्रि-मण्डलों के इस्तीफे दे देने के बाद इस ओर उपेक्षा की जाने लगी। पीछे, तो सिर्फ संयुक्त-प्रान्त में ही इस शिक्षा का काम कुछ चलता रहा; अन्य प्रान्तों में बिल्कुल ही रुक गया। सन् १६४४ में म० गांधी ने देशवासियों की पूरी शिक्षा का विचार प्रगट किया—सात वर्ष से पहले की पूर्व-बुनियादी शिक्षा;

सात वर्ष से १४ वर्ष तक की बुनियादी शिक्षा; और चौदह वर्ष से बाद की उत्तर बुनियादी शिक्षा; और इन तीनों के अलावा दूसरे नागरिकों के लिए प्रौढ़-शिक्षा है। सरकार ने भी भारतवर्ष में व्यापक रूप से शिक्षा का प्रचार करने के लिये एक विशाल योजना बनाई, जिसे भारत-सरकार के शिक्षा-कमिश्नर सर जान सार्जेंट के नाम पर 'सार्जेंट योजना' कहा गया। परन्तु किसी भी योजना को अच्छी तरह अमल में नहीं लाया गया—अब हमारी स्वाधीन सरकार इस ओर प्रयत्नशील हो रही है। समग्र शिक्षा के सम्बन्ध में विचार हो रहा है। अभी थोड़े दिन हुए हमारी सरकार ने देश में नवीन स्थिति के अनुकूल यूनिवर्सिटी शिक्षा की रूप-रेखा निर्धारित करने के लिये एक अखिल-भारतीय यूनिवर्सिटी कमीशन की नियुक्ति की है। यह कमीशन सभी विश्व-विद्यालयों की देख-भाल के अनन्तर केन्द्रीय-सरकार को शिक्षा-सम्बन्धी समुचित सुझाव उपस्थित करेगा। विश्व-विख्यात विद्वान् डा० सर राधाकृष्णन् इस कमीशन के सभापति हैं।

तेईसवाँ अध्याय

विज्ञान और सेवा-भाव

विज्ञान का मूल कारण: जीवन-रक्षा—

यद्यपि विज्ञान की विशेष प्रगति पिछले दो सौ वर्ष मे हुई है, तथापि यह बहुत प्राचीन समय से है और इसकी धीरे-धीरे उन्नति होती रही है। विज्ञान का विकास मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ होता रहा है, और मस्तिष्क के विकास का मुख्य कारण जीवन-रक्षा है। आदमी को अपने जीवन की रक्षा करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचने पड़े, और उसमे सोचने की शक्ति और योग्यता थी, उसका मस्तिष्क पशुओं के मस्तिष्क से अधिक बड़ा था। इसलिए विज्ञान का जन्म और विकास हुआ। मनुष्य ने आरम्भ मे अपने जीवन की रक्षा के लिए दूसरे प्राणियों को ही नहीं, अपने सरीखे अन्य मानव-प्राणियो को भी मारने मे संकोच नहीं किया। उस समय विज्ञान मे किसी भी प्रकार मनुष्य की आत्म-रक्षा करने के साधनों का समावेश था। धीरे-धीरे सामाजिक जीवन का प्रादुर्भाव और सभ्यता का विकास होने लगा। मनुष्य ने प्रेम से मिलकर रहने का महत्त्व समझा। लोगों ने देखा कि बग़ैर

खून-खराबी किये ही हम अधिक आराम से रह सकते है। इस तरह विज्ञान के आविष्कार समाज की सेवा के लिए होने लगे। इससे शत्रु मनुष्यों के बजाय प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाने लगा। पर इसके साथ ही कुछ जंगली, स्वार्थी, या लोभी आदमी दूसरों के आराम के साधन को देखकर ईर्ष्या करने लगे। इन्होंने विज्ञान का उपयोग सामूहिक रूप से लड़ाई मे किया। इस प्रकार विज्ञान का दो प्रकार से उपयोग होने लगा। जो लोग समाज मे शान्ति और सभ्यता का विकास चाहते थे, वे विज्ञान का उपयोग शान्ति के कार्य मेंकरने लगे और असभ्य, लोभी या महत्त्वाकांक्षी आदमी इसका उपयोग युद्ध में करने लगे।

वैज्ञानिक की भावना—

विज्ञान का आधार वैज्ञानिक हैं, जो तरह-तरह के आविष्कार करते है, और प्रकृति के रहस्यों को मालूम करने या सचाई की खोज करने मे लगे रहते हैं। प्रश्न यह है कि उन्होंने विज्ञान की उन्नति किस प्रेरणा से की। अच्छे और बुरे लोग प्रत्येक क्षेत्र में होते हैं, इसी प्रकार वैज्ञानिकों मे भी दोनों प्रकार के आदमी हैं और रहेगे। पर अधिकांश वैज्ञानिकों ने, मानव-सेवा की भावना से ही, इस रास्ते को पकड़ा। इसे उन्होंने सत्य का मार्ग समझा। उन्होंने बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी, यहाँ तक कि अपने जीवन का भीं बलिदान किया। अपने निजी स्वार्थ या सुख के विचार से, वैज्ञानिकों ने इस प्रकार का कार्य नहीं किया। साथ यह भी कठोर सत्य है कि कोई भी विलासी व्यक्ति वैज्ञानिक नहीं हो सकता। अपने सब आराम और सांसारिक सुख की ओर उदासीन होकर वैज्ञानिकों को विज्ञान की धुन में लगना होता है। भारत में बड़े-बड़े

ऋषियों ने, जिन्होंने विज्ञान और दर्शन के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, कठोर संयम का जीवन बिताया। उन्होंने विज्ञान का प्रयोग केवल मनुष्य जाति की सेवा के लिए किया। योरुप में भी गेलिलियो कगनट, गोल्डसवर्दी आदि अनेक आविष्कारों ने भयङ्कर यातना और समाज की लांछना सहन की। उनके मन में आविष्कार करने के पूर्व कभी यह भावना नही हुई कि हम धनवान बनें।

मनुष्य जाति की सेवा—

बहुत स्वाभाविक सा प्रश्न है कि विज्ञान ने मनुष्य जाति की क्या सेवा की? इसके उत्तर मे यही कहना होगा कि मनुष्य जाति का जीवन भूतल पर इसी विज्ञान की बदौलत है। मनुष्य शारीरिक बल और अङ्गों की बनावट के हिसाब से अन्य जीवों की अपेक्षा कहीं कमजोर है। प्राकृतिक आपदाओं को सहने की शक्ति भी अपेक्षाकृत कम है, परन्तु विज्ञान की कृपा से उसने केवल अपने जीवन की ही रक्षा नहीं की, वरन् सारे जीवों और प्राकृतिक शक्तियों पर भी विजय प्राप्त कर ली। वह प्रकृति को अपने अधिकार में करता जा रहा है।

वैज्ञानिक का स्थान; विविध समस्याओं का हल—

विज्ञान ने आज इतनी उन्नति कर ली है कि आदमी टेलीफून द्वारा अपने इष्ट मित्रों से अपनी भाषा में बात कर ले। वे रेडियो द्वारा संसार भर के समाचारों को क्षण भर में जान लें और चलती-फिरती गायन-वादन करती हुई तसवीरों से मनोरंजन कर सकें। वायुयान द्वारा आदमी संसार भर में आराम से यात्रा कर सकते हैं, पहले बड़े-बड़े गगनचुम्बी पर्वत, अथाह सागर और

भयंकर जंगल मनुष्यों को एक-दूसरे से अलग किये हुए थे, अब आदमी ने इन सब पर विजय प्राप्त कर ली है। महामारी और अनेक संक्रामक रोगों पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त हो चुकी है। विज्ञान ने अपने साधनों की पूर्णता से समय और दूरी का प्रश्न एक प्रकार से मिटा-सा दिया है और सारे संसार को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न कर रहा है। आज संसार के प्रत्येक हिस्से से एक दूसरे का सम्बन्ध है। संस्कृति और रंग-भेद अवश्य है पर धीरे-धीरे यह निश्चित रूप से मिट जायगा। संसार को विज्ञान ने यहाँ तक पहुँचाया है, आगे भी बढ़ायेगा; और सम्भव है सारा संसार एक परिवार का रूप धारण कर ले। ग़रीबी और अन्य समस्याएँ हैं; वे भी धीरे-धीरे मिटती जायंगी। अभी बीच की अवस्था है इसलिए कमी है। परन्तु निश्चित रूप से वह दिन आने वाला है जब संसार में से दुःख, ग़रीबी और रोग उठ जायंगे।

दूसरा पहलू—

विज्ञान का यह तो उज्ज्वल रूप हुआ, पर इसका अन्धकारमय और भयानक पहलू भी है, जिसका प्रदर्शन समय-समय पर युद्ध के रूप में होता है। मनुष्य ने अपनी आदिम अवस्था में अपनी जीवन-रक्षा के साथ-ही-साथ दूसरे जीवों के मारने के उपाय भी सोच निकाले थे। बहुत से आविष्कार मनुष्य ने इसी दृष्टि से करना हितकर समझा कि वह आसानी से दूसरों के प्राण हरण कर सकें। संभव है ये आविष्कार पहिले दूसरे जीवों के लिए निकाले गये हों और बाद में मनुष्य ने आपस के युद्ध में इनका प्रयोग किया हो। कुछ भी रहा हो पर मनुष्य की सभ्यता के साथ ही साथ युद्ध सम्बन्धी आविष्कारों की वृद्धि होती गई। आरम्भ में

बरछा, तलवार, काफ़ी वड़े हथियार थे पर बाद में धनुष वाण का महत्त्व बढ़ा। बारूद का आविष्कार हो जाने पर तो लड़ने की रीति ही बदल गई। युद्ध सम्बन्धी विज्ञान में युगान्तर आ उपस्थित हुआ। इसके उपरांत भयंकर विस्फोटक और घातक पदार्थों का आविष्कार हुआ और अब तो इससे भी अधिक शक्तिशाली और विध्वंसक परमाणु बम का आविष्कार होगया है। इस प्रकार जैसे-जैसे विज्ञान का विकास हुआ वैसे-वैसे युद्ध की भयानकता भी बढ़ी और इस बात का ख़तरा पैदा हो गया है कि इन युद्धों के परिणाम-स्वरूप मानव-सभ्यता का नाश न हो जाय।

विशेष वक्तव्य—

प्रत्येक वस्तु का दुरुपयोग किया जा सकता है और किया गया है। विज्ञान का भी यही हाल है। मूल वैज्ञानिक कभी भी संसार के अहित की कल्पना से आविष्कार नहीं करते। वारूद के आविष्कार से युद्ध की भयंकरता बढ़ गई है। परन्तु बारूद का आविष्कार भी युद्ध के लिये नहीं; वरन् बड़े-बड़े पहाड़ों के बीच रास्ता निकालने के लिए किया गया था। डाईनामाइट, नाइट्रोग्लेसरीन आदि का भी आविष्कार पहाड़ों के बीच रास्ता बनाने के लिए तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिए किया गया था। कुछ स्वार्थी लोगों ने उसका दुरुपयोग किया।

वायुयान का आविष्कार जो इस युद्ध के भयानक अस्त्रों में है, कभी भी इस विचार से नहीं किया गया था कि इसका इस प्रकार दुरुपयोग किया जाय। इस युद्ध की सबसे बड़ी विभीषिका, परमाणु बम, में रेडियम और युरेनियम का उपयोग किया जाता है। रेडियम की खोज मैडम क्यूरी ने की थी और उसका उपयोग

चिकित्सा-कार्य में लिया गया। लार्ड रदरफोर्ड आदि का ध्यान इस ओर नहीं गया था कि युरेनियम के परमाणु को तोड़ने से जो शक्ति उत्पन्न हो, उसको विनाशक कार्य में लगाया जाय। उसका विचार यही था कि इससे भारी शक्ति उत्पन्न की जाय। मूल-वैज्ञानिकों की कृति का लाभ कुछ स्वार्थी लोगों ने उठाया। पर इससे चिन्ता का कोई कारण उपस्थित नहीं होता, क्योंकि यह अवस्था अस्थायी है, कुछ समय में निकल जायगी। तब विज्ञान के दुरुपयोग के स्थान पर इसका सदुपयोग होगा। वह किसी एक देश या किसी विशेष जाति का स्वार्थ सिद्ध न कर, संसार भर का कल्याण करेगा; उससे मानव-समाज की यथेष्ट सेवा और उन्नति होगी।

उससे बचकर निकलने की कोशिश करेगा, लेकिन आदमी उस बाधा पर भी विजय पाने की कोशिश करेगा। आदमी ने अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए और विविध बाधाओं पर विजय पाने के लिए तरह-तरह के अनुभव और प्रयोग किये। अन्य प्राणियों से मनुष्य का मस्तिष्क अधिक विकसित अवस्था में था। मनुष्य के मस्तिष्क में विशेषता यह थी कि वह पूर्व-स्मृति को ध्यान में रखकर वर्त्तमान स्थिति से आगे भी अपनी कल्पना कर सकता था, और उस कल्पना को अंशतः या पूर्णतया कार्य-रूप में परिणत भी कर सकता था। यह पूर्व-स्मृति और वर्तमान स्थिति ही मिलकर आगे विचार-शक्ति को जन्म देती है। इस विचार-शक्ति से उसने धीरे-धीरे प्रकृति के रहस्यों का पता लगाया। अनुभवों और प्राप्तज्ञान को उसने तर्क की कसौटी पर कसा, और उस पर व्यवस्थित रूप से विचार किया, इस तरह उसने सत्य की खोज की। उसका यह कार्य विज्ञान कहलाता है। विज्ञान शब्द का अर्थ है—विशेष ज्ञान। किसी भी विषय के क्रम-बद्ध विशेष ज्ञान को उस विषय का विज्ञान कहते हैं।

विज्ञान का आरम्भ—

आरम्भ में मनुष्य को प्रकृति के बारे में कुछ भी ज्ञान न था। सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि देखकर वह आश्चर्य करता था। आँधी तूफान क्यों आता है, धूप क्यों निकलती है, वर्षा का कारण क्या है, ओले क्यों पड़ते हैं, आदमी बीमार क्यों होता है, किस बीमारी को कैसे दूर किया जा सकता है, ये सब बातें उसके लिए रहस्यमय थीं। उसने धीरे-धीरे इस तरह के रहस्यों को समझने की कोशिश की। उसके देखने में जो घटनाएँ आईं, उन पर

के भंडार मे कुछ-न-कुछ वृद्धि अवश्य की है। आरम्भ में ज्ञान बहुत थोड़ा था। विविध विपयों पर कुछ थोड़ी-थोड़ी बाते मालूम थीं, जिनका आपस मे कोई सम्बन्ध न था। जैसे-जैसे ज्ञान की वृद्धि होती गई, एक बात का दूसरी बात से सम्बन्ध मालूम होने लगा। धीरे-धीरे इस ज्ञान को, अध्ययन और खोज की दृष्टि से अलग-अलग भागों मे बॉटा गया। इन भिन्न-भिन्न भागों के सम्बन्ध मे जैसे-जैसे ज्ञान की वृद्धि हुई, वैसे-वैसे उसका विकास होता गया। अब तो इन भेदो के भी अनेक भेद है। प्रत्येक विज्ञान के एक-एक भाग के सम्बन्ध में, अनुभव और प्रयोगों की सहायता से काफी साहित्य तैयार किया गया है।

प्रकृति सम्बन्धी इस ज्ञान का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है, एक ढंग यह है—

(१) ज्योतिष शास्त्र या सौरमंडल-विज्ञान। इस मे सूर्य, पृथ्वी, अन्य ग्रह, आकाश गंगा के नक्षत्र, तथा दूसरे नक्षत्रों की स्थिति, आकार, चाल, आयु, पृथ्वी से दूरी आदि के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। किस नक्षत्र में क्या तत्त्व है, यह भी विचारा जाता है, इस दिशा में दूर-वीक्षण-यंत्र (स्पेक्ट्रसकोप—किरणों के विश्लेषण द्वारा तत्व-निर्धारित करने वाला यंत्र) से बहुत ही सहायता मिली है।

(२) भौतिक विज्ञान। इसके अन्तर्गत शक्ति संबंधी विविध बातों का समावेश है। शक्ति के विभिन्न रूप-ताप-विद्युत्, गति-ध्वनि, चुम्बकत्व आदि का वर्णन है। एक शक्ति का दूसरी शक्ति में कैसे रूपान्तर हो जाता है, शक्ति के विविध रूपों के क्या गुण है, उन्हें कैसे नापा जा सकता है, उनको किस प्रकार उपयोग मे लाया जा

सकता है—यही भौतिक विज्ञान है। शक्ति का उपयोग करने के लिए अनेक प्रकार के यन्त्र बनाये गये हैं।

(३) रसायन विज्ञान। इसके अन्तर्गत पृथ्वी के अनेक तत्वों सम्बन्धी विवेचन है। तत्वों के विभिन्न मिश्रण उनके गुण तथा उनका उपयोग आदि इसी विभाग के अङ्ग हैं। भौतिक विज्ञान और इसकी संयुक्त शक्ति द्वारा ही आज मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त कर पाया है।

(४) जीव विज्ञान। विभिन्न जीवों के जन्म, रहने-खाने, प्रजनन आदि सम्बन्धी ज्ञान इस विज्ञान के अन्तर्गत हैं। प्रस्तर युग के जीवों की ठठरियों से और अन्य सूत्रों से डर्विन ने विकासवाद का सिद्धान्त इसी विज्ञान के अन्तर्गत स्थापित किया था।

आविष्कार और विज्ञान का सम्बन्ध—

आविष्कार, खोज और विज्ञान में भारी सम्बन्ध है। आविष्कार और खोजों के आधार पर विज्ञान के सिद्धान्तों को स्थिर किया गया। बाद में इन सिद्धान्तों के आधार पर ही खोज और आविष्कार होते है। इस प्रकार नये आविष्कार और खोजों से नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। एक के बग़ैर दूसरा आगे नहीं बढ़ सकता। आधुनिक आविष्कार तो पूर्ण तथा विज्ञान के सिद्धान्तों पर ही आगे बढ़ सकते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि सारे आविष्कार पूर्वनिश्चित सिद्धान्तों पर ही होते हैं। बहुधा कुछ सिद्धान्तों के आधार पर आगे बढ़ा जाता है, और प्रयोगों के द्वारा आविष्कार हो जाता है; और इस आविष्कार के होने के उपरान्त उससे सम्बन्ध रखने वाले बहुत से सिद्धान्त स्थिर होते हैं।

विज्ञान का महत्व आविष्कारों के उपयोग में है। इस भौतिक जगत् की शक्तियों का यदि हम उपयोग न कर सकें तो केवल उनसे सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान निरर्थक है। थोथा ज्ञान मस्तिष्क का भार है इसलिए हमें जहाँ नये नये आविष्कार करने चाहिएँ वहाँ इस बात की भी जरूरत है कि उन आविष्कारों का उपयोग करें और उनके दुरुपयोग से बचें। प्रायः हरेक चीज़ का उपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। इस विषय पर पहले विचार किया जा चुका है।

पच्चीसवाँ अध्याय

भाप की शक्ति का उपयोग

आवश्यकताओं की वृद्धि—

आरम्भ में जब मनुष्यों की संख्या कम थी, और उनकी आवश्यकताएँ भी मामूली ही थीं, तो उनका काम कुदरती तौर से अर्थात् अपने आप पैदा होने वाली चीज़ों से चल जाता था। लेकिन ज्यों ज्यों आदमियों की संख्या बढ़ती गई, उन्हें अधिक परिमाण मे चीज़ों की जरूरत होने लगी। साथ ही ज्यों ज्यों आदमी जगली हालत को छोड़कर 'सभ्य' होता गया, उसे नयी-नयी बढ़िया चीज़ों की जरूरत होने लगी। चीज़ों को पैदा करने का काम प्रकृति कर देती है, मगर आदमी इस काम में प्रकृति की बहुत मदद कर सकता है। मिसाल के तौर पर हम जानते हैं कि अगर आदमी खेत में अच्छी तरह हल चलाकर बीज बोये, ठीक समय पर पानी दे, और वहाँ अपने आप उग आनेवाले घास फूस का दूर करे, तथा जङ्गली जानवरों से खेत की रक्षा करे तो यह निश्चय है कि पैदावार अधिक होगी और अच्छी भी। इसके अलावा, जैसा ऊपर कहा गया है, धीरे धीरे आदमी सभ्य होता गया, अब उसका काम प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाली चीज़ों

से न चल सका। उसकी ज़रूरतें बढ़ गईं। उसे प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाली चीज़ों का रूप आकार आदि बदलना था। एक चीज़ से दूसरी कई कई चीज़ें तैयार करने की आवश्यकता मालूम हुई। इस तरह दस्तकारी और उद्योग-धधों का प्रारम्भ हुआ।

पशु, पानी और हवा की शक्ति का उपयोग—

पैदावार बढ़ाने या उद्योग-धन्धों का काम करने के लिए परि-श्रम, शक्ति या ताकत की ज़रूरत होती है। पहले आदमी अपने शरीर की ही ताकत का उपयोग करना जानता था। उसकी ताकत बहुत मामूली ही है। जब वह पशुओं को पालने लगा तो वह उनसे काम लेने लगा। देश काल के अनुसार आदमी ने घोड़े, गधे, बैल, भैंसे, बारहसींगे, बकरे, ऊँट या कुत्ते आदि की शक्ति का उपयोग किया।

आदमी को अपनी बढ़ती हुई ज़रूरतों के मुकाबले में, इन जानवरों की शक्ति कम मालूम हुई। वह दूसरी ताकत की खोज में रहा। नदी या दरिया के पास रहनेवालों ने देखा कि पानी में लकड़ी आदि बहुत सी चीज़ें बही जाती हैं। इससे आदमी को, पानी को बहा कर ले जाने वाली शक्ति का ज्ञान हुआ। अब उसने नदी के बहाव में किश्ती चलाना शुरू कर दिया। पीछे धीरे-धीरे इस काम में उन्नति होती रही। आदमी ने पानी से पनचक्कियाँ भी चलायीं, जिन से आटा पीसा जाता है। घास-पात हवा मे उड़ते देख कर, आदमी का ध्यान हवा की शक्ति की ओर गया। उसने इस शक्ति का उपयोग अपनी किश्ती चलाने में किया; वह पाल या बादबान के सहारे किश्तियों और जहाज़ों को दूर-दूर तक आसानी से ले जाने लगा।

अधिक शक्ति की आवश्यकता; बारूद का प्रयोग—

ज्यों ज्यों आदमी की जरूरतें बढ़ती गई', उसे अधिकाधिक शक्ति की आवश्यकता होने लगी। उसके सामने कई काम ऐसे आ गये जिन्हें करने में बहुत अधिक शक्ति की जरूरत थी, और जो स्वयं उसके शारीरिक बल से नहीं हो सकते थे, और पशुओं के सहारे, अथवा पानी या हवा की ताकत से भी होने कठिन थे। ऐसी दशा में यह आवश्यकता प्रतीत हो रही थी कि कोई ऐसा यन्त्र बनाया जाय जिस से शक्ति काफ़ी परिमाण में पैदा की जा सके।

बारूद का आविष्कार तेरहवीं सदी में हो चुका था। इसका उपयोग बन्दूक या तोपे चलाने के ही कार्य में किया जाता था। कुछ लोगों के विचार में आया कि यदि इस बारूद की शक्ति से भारी गोला इतनी दूर तक फेका जा सकता है तो कोई एंजिन भी चलाया जा सकेगा। यह विचार काफी समय तक कार्यान्वित न किया जा सका। अन्त में सबसे पहले १६८० में हालेंड निवासी ह्यूजिन ने विचार किया कि जब बारूद हवा से मिल कर जलती है तो गैस के रूप में परिणत हो जाती है। यह गैस अपने बारूद के आकार से हजारों गुना अधिक होती है और यदि यह बारूद किसी बन्द बरतन में जलाई जाय तो उस बरतन के भीतर भयंकर दबाव पैदा करती है। यदि इस दबाव की शक्ति का उपयोग किया जा सके और बार बार इस शक्ति को उत्पन्न किया जा सके तो भारी शक्ति उत्पन्न करने वाला यन्त्र बनाया जा सकेगा। उसने एक एंजिन बनाया, पर यह प्रयोग असफल हुआ क्योंकि बारूद के एंजिन में बार बार इस प्रकार बारूद को जलाना

सम्भव न था और इससे एञ्जिन भी बहुत देर तक नहीं चल सकता था।

भाप की शक्ति का उपयोग—

इस असफल प्रयोग के दस वर्ष बाद फ्रॉस में डेनिस पेपिन नामक व्यक्ति के मन मे एक विचार आया कि बारूद के स्थान पर जल की भाप का उपयोग किया जाय। मनुष्य हमेशा ही देखता है कि पानी के काफी गर्म होने पर उसकी भाप बनती है, वह ऊपर उड़ने लगती है, और अगर उसके रास्ते मे कोई बाधा आती है, तो वह उसे बलपूर्वक दूर करने की कोशिश करती है। यही कारण है कि डेगची या पतीली में जब कोई चीज उबाली या पकायी जाती है तो उसके ऊपर का ढक्कन भाप के बल से उठता है। इस तरह की शक्ति होने की बात मामूली सी जान पड़ती है लेकिन इसकी ओर ध्यान देकर, इस शक्ति का उपयोग करने के लिए वैज्ञानिक बुद्धि की आवश्यकता थी। पेपिन और इसके बाद जेम्सवाट आदि वैज्ञानिकों को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने मनुष्य जाति के उपयोग के लिए इस शक्ति का आविष्कार किया। प्रयोगों से मालूम हुआ कि किसी निश्चित परिमाण वाले जल के आकार से बनी भाप उससे १६०० गुना स्थान घेरती है। इससे अनुमान हो सकता है कि जब पानी की भाप बनकर फैलने लगेगी तो उसमें कितना बल होगा। इससे निश्चय हुआ कि बारूद के स्थान पर भाप का भी प्रयोग किया जा सकता है। इसी सिद्धांत पर डेनिस पेपिन ने एक एञ्जिन बनाया पर वह अपने कार्य में विशेष सफल न हुआ।

भाप का एंजिन—

पहला एंजिन जो किसी कार्य में लाया जा सका सन् १७०४ में इङ्गलैंड निवासी न्यूकोमन द्वारा बनाया गया। इसमें उसने काफी सुधार किया था और इसका पिस्टन निरंतर चल सकता था। यह एंजिन भी काफ़ी दोषपूर्ण था, क्योंकि इसमें सिलिंडर को ठंडा करने के लिए ऊपर से पानी छोड़ना पड़ता था। इससे यह अधिक समय तक कार्य में नहीं लाया जा सका। बाद में इसमें और भी सुधार किये गए। लोगों को एक ख़ास काम करने की चिन्ता थी। कोयलों की खानों में खुदाई होते होते वे इतनी गहरी हो गई थीं कि उनमें पानी निकल आता था और इससे कोयला निकालना असंभव हो जाता था। उपर्युक्त एंजिन का उपयोग खानों से पानी निकालने में ही किया गया।

न्यूकोमन का भाप का एंजिन बहुत मन्द गति से चलने वाला और कम शक्ति वाला था, पर आदमी इसी एंजिन से सन् १७६३ तक काम लेते रहे। सन् १७६३ में जेम्सवाट ने ऐसा एंजिन बनाया जो न्यूकोमन के एंजिन की अपेक्षा १० गुनी तीव्र गति से चल सकता था।

इस एंजिन में यह विशेषता थी कि इसमें सिलिंडर को बार-बार ठंडा नहीं करना पड़ता था। जेम्सवाट को भी आरंभ में सफलता नहीं मिल सकी थी। निरन्तर उद्योग और परिश्रम के उपरान्त बोल्टन नामक व्यक्ति की आर्थिक सहायता से वह इस प्रयत्न में सफल हो सका। इससे बाद में वाट को काफी आर्थिक लाभ भी हुआ। क्रमशः भाप के एंजिनों में अनेक सुधार हुए। फिर ऐसे भी एंजिन बनने लगे जो न सिर्फ़ सामान को नीचे से ऊपर

उठा सकें बल्कि एक जगह से दूसरी जगह भी पहुँचा सकें। अब एक-एक एंजिन में हज़ारों घोड़ों की ताक़त होती है। 'एक घोड़े की ताक़त' एक पारिभाषिक शब्द है। वैज्ञानिक भाषा में इसका अर्थ है—उतनी ताक़त, जिससे ५५० पौंड वज़न एक सेकिंड में एक फुट उठाया जा सके। आम बोलचाल में एक-एक घोड़े की ताकत का मतलब बीस आदमियों की ताकत समझा जाता है। हम नित्य देखते हैं कि रेलगाड़ी में लगा हुआ एंजिन कितनी सवारियों को या कितने वज़न के माल को कितनी तेज़ी से ले जाता है। रेल महीनों की यात्रा दिनों में, और दिनों की यात्रा घंटों में तय कर डालती है।

विशेष वक्तव्य—

रेल के एंजिन के बाद भाप के बल से पानी पर चलने वाला जहाज़ (स्टीम-शिप) बनाया गया। इसने किश्तियों और दूसरे जहाज़ों को पुराने ज़माने की चीज़ बना दिया। धीरे-धीरे तरह-तरह के यन्त्रों को चलाने के लिए भाप की शक्ति का उपयोग किया जाने लगा। नित्य नयी-नयी चीज़ों को, अधिकाधिक परिमाण में बनाने वाले कल-कारख़ाने खुलने लगे। पीछे कोयले की गैस, पेट्रोल, बिजली आदि की शक्तियों का आविष्कार होकर इनका उपयोग होने लगा, और धीरे-धीरे बढ़ता गया। तो भी अभी तक भाप की शक्ति का बड़ा महत्व है। भाप के एंजिन के आविष्कार से कल-कारख़ाने की तो हालत ही बदल गई और औद्योगिक क्षेत्र में १०० साल में इतने परिवर्तन हुए कि इन परिवर्तनों का नाम ही औद्योगिक क्रांति रख दिया गया। औद्योगिक क्रांति का वर्णन अगले अध्याय में किया जायगा।

औद्योगिक क्रान्ति से पहले की दशा—

भाप के एंजिन के बारे में पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है। उसका आविष्कार होने के पहले अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक सारे संसार में बड़े-बड़े कारखानों का सर्वथा अभाव था। इङ्गलैंड और योरुप के अन्य देशोंमें भी अधिकांश जनता ग्रामों में निवास करती थी। लोगों का मुख्य पेशा खेती तथा पशुपालन ही था। ऊन का व्यवसाय उन्नत दशा मे था, परन्तु ऊनी कपड़े बड़े-बड़े कारखानों मे तैयार नही किये जाते थे। कोयलों और लोहे का अधिक उपयोग नही होता था। योरुपवासियों में साहस बढ़ रहा था। भिन्न-भिन्न देशों ने सुदूर अमेरिका और भारत तक में अपनी व्यापारिक कम्पनियां स्थापित की थी। व्यापार से योरुप के देश, विशेषत: इङ्गलैंड, धनी हो चले थे। इङ्गलैंड में वस्तुओं के उत्पादन के तरीके सैकड़ों वर्ष पुराने थे। कारीगर साधारणतया अपने मकान मे ही काम करते थे; वे पूंजीपतियों के आश्रित नहीं थे। पनचक्कियों द्वारा कुछ काम इधर-उधर होता था परन्तु मशीनों का उपयोग बहुत कम होता था।

कल-कारखाने—

भाप के एञ्जिन का उपयोग मशीनें चलाने में भी होने लगा। इसके अलावा कातने और बुनने की ऐसी मशीनों के आविष्कार हुए, जिनके द्वारा एक मनुष्य एक ही समय में सैकड़ों तकुओं की देख-रेख कर सकता था। भाप के प्रयोग से चलाए जाने वाले कई करघों पर एक ही मनुष्य एक साथ कपड़ा तैयार कर सकता था। इन आविष्कारों से कपड़े का उत्पादन-ख़र्च बहुत

कम हो गया और लंकाशायर के आस-पास ऐसे कारख़ाने खुले जिन में भाप के उपयोग से करघे और तकुए चलने लगे।

इन कारख़ानों के खुलने से मशीनों और एञ्जिनों की मांग बहुत बढ़ी, जिस से लोहे के उद्योग की खूब उन्नति हुई। लोहे के उद्योग को बढ़ाने के लिए और कारख़ानों में एञ्जिन चलाने के लिए कोयले की भी मांग बहुत बढ़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि कोयले के उद्योग की भी काफ़ी उन्नति हुई। इङ्गलैंड में कोयले और लोहे की खानों की कमी नहीं थी इसलिए उसे इनको बाहर से नहीं मांगना पड़ा। कपास के लिए तो उसे अन्य देशों पर ही निर्भर रहना पड़ा; जैसे-जैसे कपड़ों के कारख़ानों की वृद्धि हुई, वैसे-वैसे कपास का आयात बढ़ता गया।

रेल और जहाज़—

भाप का उपयोग जहाज़ों के चलाने में भी होने लगा। अब जहाज़ पहले से बहुत बड़े बनने लगे, उनमें फ़ौलाद का उपयोग होने लगा और उनकी रफ्तार भी पहले से बहुत बढ़ गई। इससे इङ्गलैंड को अपना तैयार माल अन्य देशों में कम ख़र्च से भेजने में बड़ी सहायता मिली। स्वेज़ नहर के खुल जाने पर इङ्गलैंड से भारतवर्ष आदि देशों को आने वाले जहाज़ इधर आने लग गये। इससे माल भेजने में खर्च की बहुत कमी हो गई और समय भी कम लगने लगा। उधर इङ्गलैंड में रेल के एंजिन का आविष्कार हुआ और कुछ वर्षों बाद रेल द्वारा माल एक स्थान से दूसरे स्थान को कम ख़र्च से जाने लगा। दूसरे देशों मे भी रेल खुली, जिससे उन देशों का भी माल एक स्थान से दूसरे स्थान को कम ख़र्चे में जाने लगा।

औद्योगिक क्रांति का परिणाम, इङ्गलैंड में—

औद्योगिक क्रांति का परिणाम यह हुआ कि इङ्गलैंड में बड़े-बड़े कारखाने खुल गए, वस्तुओं की उत्पत्ति बड़ी मात्रा में होने लगी, उनका लागत-खर्च कम हो गया और वे कम दामों में बिकने लगीं। वस्तुओं के उपयोग करने वालों को लाभ हुआ और पूञ्जी-पतियों को अपनी पूञ्जी का अच्छा उपयोग करने का अवसर मिला। बड़ी मात्रा की उत्पत्ति की वृद्धि इङ्गलैंड में सूती कपड़े, ऊनी कपड़े, लोहा और फौलाद तथा कोयले के उद्योग में सबसे अधिक हुई। सन् १८८० में इङ्गलैंड-वासियों की प्रति मनुष्य वार्षिक आय ५००) रु० तक बढ़ गई।

वस्तुओं के लागत-खर्च कम होने पर उनकी कीमत कम हुई और इसलिए मांग पहले से अधिक हो गई। नई रेल की लाइनों के खुलने से और जहाजों में भाप का उपयोग किये जाने से उनकी रफ्तार बढ़ने के कारण दूर दूर माल भेजने की बड़ी सुविधा हुई। इस प्रकार विदेशी व्यापार बहुत बढ़ा; एक सदी के अन्दर इङ्गलैंड का विदेशी व्यापार करीब-करीब तीस गुना अधिक हो गया। गांवों की संख्या और आबादी में कमी हुई और नगरों की खूब वृद्धि हुई।

औद्योगिक क्रान्ति से पूँजीपतियों को विशेष लाभ हुआ। देश में धन की असमानता बढ़ गई। सन् १८८० में इंगलैंड की ४७ प्रतिशत आमदनी केवल चार प्रतिशत व्यक्तियों के हाथ में थी। मध्यम श्रेणी के भी कुछ लोगों की आर्थिक उन्नति हुई, पर बहुत थोड़े ही आदमियों की। साधारण श्रेणी के आदमियों को इससे कुछ हानि ही हुई है, क्योंकि घरू उद्योग-धन्धों का नाश हो गया

और बहुत से आदमी बेकार और ग़रीब हो गये। कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों का स्वास्थ्य ख़राब रहने लगा। इन बातों की रोक-थाम के लिये समाज और राज्य को समय-समय पर विशेष व्यवस्था करनी पड़ी। मज़दूरों की रक्षा के लिए कारखाना-कानून (फ़ैक्टरी लॉ) बनाये गये। बेकारों को आर्थिक सहायता देने के वास्ते दरिद्रालय स्थापित हुए, जहाँ कुछ समय तक काम करने पर उन्हें अपने निर्वाह-योग्य आमदनी हो जाय।

औद्योगिक क्रान्ति का अन्य देशों पर प्रभाव—

ब्रिटिश साम्राज्य के देशों को औद्योगिक क्रान्ति से यह लाभ हुआ कि अब उन्हें नयी नयी उपयागी वस्तुएँ, सस्ते मूल्य पर मिलने की सुविधा होगई। साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त देश अपनी व्यापार-नीति निर्धारित करने में बहुत कुछ स्वतन्त्र थे, इसलिए इङ्गलैंड के सस्ते तैयार माल की आयात वहाँ तक सीमित रख सके, जहां तक उनकी विशेष हानि न हो। पर साम्राज्य के पराधीन देशों में यह बात न हुई।

उदाहरण के तौर पर भारतवर्ष का विचार करें, जो इङ्गलैंड के अधीन रहा है। यहाँ की सरकार ने इङ्गलैंड के सस्ते माल को यहाँ के बाज़ारों मे आने की पूरी सुविधा दी। यही नहीं उसने विलायती माल की आयात को खूब प्रोत्साहित किया। इससे भारतवर्ष के घरू उद्योग-धन्धे चौपट हो गये और करोड़ों आदमियों को बेकारी और ग़रीबी का शिकार होना पड़ा। धीरे धीरे भारतीय नेताओं का ध्यान इस ओर गया। यहाँ स्वदेशी आन्दोलन चमका, और विदेशी बहिष्कार की भावना बढ़ी। इसके परिणाम-स्वरूप

कुछ तो यहाँ के कल-कारखानों के बने माल की मांग बढ़ी और कुछ देशी उद्योग धन्धे, शिल्प या कारीगरी को पुनर्जीवित करने के प्रयत्न होने लगे। इन कामों में सरकार को सहानुभूति न होने और कुछ दशाओं में तो बाधा होने पर आदमी अपनी राजनैतिक पराधीनता को दूर करने और स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्न में लग गये।

सत्ताईसवाँ अध्याय

थल पर विजय

यात्रा: पैदल और पशुओं पर—

ठीक समय तो नहीं बताया जा सकता पर उस बात को लाखों वर्ष अवश्य बीत गये हैं, जब मनुष्य ने पेड़ों पर से उतर कर पृथ्वी पर घर बना कर रहना और दो पैरों से चलना आरंभ किया। बहुत समय तक सिर्फ पैदल ही चला। धीरे-धीरे उसने पशु पालना आरभ किया। फिर वह अपने पैरों से चलने के अलावा दूसरे जानवरों पर भी सवारी करने लगा। अलग-अलग प्रदेशों में अलग-अलग जानवर सवारी के काम मे लाये जाने लगे। बाद में उन जानवरों से चलने वाली गाड़ियाँ बनाई गई। यह अवस्था हज़ारों वर्षों तक कायम रही। घोड़ों तथा ऊँटों पर भी हज़ारों मीलों की यात्रा की गई। व्यापार भी काफी हुआ। दूर-दूर रहने वालों से लड़ाइयाँ हुई, और उनका देश जीता गया। लेकिन यह साहस बड़े-बड़े शक्तिशाली सम्राटों, बड़े-बड़े व्यापारियों ने या ज्ञान की खोज करने वाले यात्रियों ने ही किया। साधारण आदमी के लिए यात्रा बहुत ही कष्ट-दायक और ख़तरे की बात थी। कुछ सौ मील की यात्रा में महीनों का समय लग जाता था। आपस में पत्र

व्यवहार करना भी बड़े व्यय का काम था। एक देश के निवासी दूसरे देश के निवासियों के संपर्क में नहीं आ पाते थे। सांस्कृतिक आदान-प्रदान के साधन नहीं थे। बड़ी बड़ी नदियों और पहाड़ों का पार करना जान की बाज़ी लगाना था। एक देश की वस्तुएँ दूसरे देशों में पहुँचाने में काफी समय और धन व्यय होता था। फल, और शीघ्र ही खराब होने वाली वस्तुएँ, बहुत से स्थानों में एक जगह से दूसरी जगह नहीं भेजी जा सकती थीं। प्रायः ऐसा होता था कि एक प्रदेश में खूब अनाज भरा हुआ है, और उससे कुछ फासले पर रहने वालों के लिए उसका अभाव है, और वे बड़े सङ्कट में हैं।

असुविधाओं के दूर करने के प्रयत्न—

पुरुष इन असुविधाओं को दूर करने के प्रयत्न में लगा रहा। उसके रास्ते में अनेक बाधाएँ थीं, पर वह धैर्यपूर्वक उद्योग करता ही रहा। इस तरह आज वह दिन आ गया है कि पृथ्वी के चप्पे-चप्पे पर मनुष्य ने अपना अधिकार कर लिया है। नदियों को बाँधकर उन पर बड़े पुल बनाये गये। पहाड़ों के बीच रास्ता निकाला गया। रेलों द्वारा एक देश को दूसरे देशों से मिला दिया। बाइसिकल, मोटर और ट्रामों द्वारा बड़े-बड़े शहरों में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाना कुछ मिनटों का काम हो गया। टैंक और फौजी गाड़ियाँ तो ऐसी बन गयी हैं कि इनके द्वारा दुर्गम से दुर्गम स्थान पर जाना सरल हो गया है। यह सब विज्ञान के चमत्कार हैं। इनके बारे में कुछ ब्यौरेवार बातें आगे लिखी जाती हैं। पहले रेल का विचार करते हैं। पृथ्वी पर आधिपत्य जमाने में इसका। मुख्य स्थान है।

रेलगाड़ी—

रेलगाड़ी का आविष्कार पश्चिमी देशों में हुआ। भाप के एंजिन के आविष्कार के पूर्व भी इंगलैंड में कोयले की खानों में कोयला ढोने की छोटी-छोटी गाड़ियाँ रेल की पटरियों पर चला करती थीं। इन पटरियों के ऊपर पहिएदार गाड़ियाँ रहती थीं, जिन्हें घोड़े खींचते थे। अठारहवीं शताब्दी में जेम्सवाट का भाप का एंजिन बन चुका था। इस एंजिन का उपयोग कल-कारखाने चलाने में और खानों से पानी निकालने में किया जाता था। कुछ मेधावी व्यक्तियों ने सोचा कि ऐसे भाप के एंजिन को गाड़ी में लगा कर उससे माल ढोने का काम लिया जाय तो अच्छा है।

परन्तु इतना सोच लेना पर्याप्त न था क्योंकि किसी वस्तु का आविष्कार करना इतना सुगम नहीं था। पहले तो रुपये की समस्या ही मुख्य थी। आविष्कार सबन्धी प्रयोगों के लिए धन की आवश्यकता रहती ही है; प्रयोगों के असफल होने पर परिश्रम के साथ धन भी नष्ट हो जाता है। दूसरी कठिनाई जन-साधारण का अन्ध-विश्वास था। आविष्कारक जन-साधारण के विचार से, नये और बहुधा बाइबिल के विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते थे। इस कारण आविष्कारक या तो जेलों में भेजे जाते, अथवा जनता में कोप के भागी होते थे। आविष्कारकों ने यह आपत्तियाँ सहीं पर अपने प्रयत्नों में कभी न आने दीं।

सबसे पहले फ्रॉस में निकोलस जोजेफ कगनट ने भाप की शक्ति से चलने वाली गाड़ी बनाई। यह तीन पहियों की गाड़ी चार आदमियों को अपने ऊपर बैठाकर सन् १७७० में पैरिस में

चलाई गई। लोगों ने इसे शैतान का खेल समझा और पुरस्कार-स्वरूप कगनट को जेल में वन्द कर दिया गया। लोग इस बात को भूल गये। १४ वर्ष वाद इगलैड में विलियम मरडक ने गुप्त रूप से एक भाप द्वारा चलने वाली गाड़ी वनायी। मरडक ने खान मे पानी खींचने वाले एंजिन के आधार पर ही यह एंजिन तैयार किया था। इस एंजिन की जानकारी उसके अलावा और किसी में नहीं थी। सन् १७८४ में यह पूर्ण रूप से वन कर तैयार हुआ। एक रात को एकान्त में उसने इस एंजिन को सड़क पर चलाकर देखा, पर उसी समय एक आदमी ने उसे देख लिया और प्रचार किया कि उसकी शैतान से भेंट हुई है। मरडक ने फिर कभी इस एंजिन को वाहर नहीं निकाला। वाट को इस आविष्कार का पता चला तो उसने मरडक को अपने यहाँ के कारखाने का मैनेजर वना दिया। पर इस के वाद उसने स्वयं आविष्कार सम्वन्धी कोई कार्य नहीं किया।

मरडक के वाद सन् १८०१ में ट्रेविथिक ने एक एंजिन वनाया जो सड़क पर चल सकता था। इसमें भाप वनाने में कोयले का व्यय कम हो गया। यह एञ्जिन एक मकान से टकरा गया। इससे मकान और एञ्जिन दोनों ही नष्ट हो गए। इसके वाद ट्रेविथिक ने दूसरी गाड़ी वनाई। पर इसका कोई ग्राहक ही न मिला। ट्रेविथिक ने ही पहले पहल यह सोचा था कि भाप से चलने वाली गाड़ी को रेल की पटरी पर चलाया जाय। यह गाड़ी सन् १८०४ ई० मे पांच मील की रफ्तार से चली। इसे कोई प्रोत्साहन न मिला। यह गाड़ी माल ढोने आदि के छोटे छोटे कामों मे आती रही।

कुछ वर्ष तक इस विषय में कोई नवीन आविष्कार नहीं हुआ। स्टीफनसन नामक व्यक्ति ने जो इगलैंड का निवासी था, खान में ट्रेविथिक के एञ्जिन को देखकर उससे अच्छा एञ्जिन बनाने का प्रयत्न किया। उसका एञ्जिन सन् १८१३ में बनकर तैयार हुआ जो बोझ से लदे हुए आठ डब्बों को खीच सकता था और कुछ चढ़ाई की ओर सड़क पर भी चार मील फी घंटे जा सकता था। स्टीफनसन के पहले एञ्जिन में बड़ी खराबी यह थी कि चलने पर इसमें बड़ा झटका लगता था जिससे रेल की पटरी बहुत शीघ्र उखड़ जाती थी। इस खराबी को दूर करने के लिए उसने पहियों के ऊपर कमानी लगाई और वे अच्छी तरह काम देने लगे।

इन दिनों खानों से समुद्र किनारे तक कोयला ढोने का काम बड़े ज़ोर से चल रहा था। कुछ खानवालों ने १८२६ में आठ मील लम्बी रेल की सड़क बनाई। इस सड़क पर कोयला ढोने वाले पांच एञ्जिन तैयार किए। धीरे-धीरे ऐञ्जिनों में सुधार हुआ और माल ढोने के स्थान पर सवारी लेजाने-लाने का कार्य भी ऐञ्जिनों द्वारा होने लगा। बीच में काफ़ी बाधाएँ आईं; उन्हें पार करके अंत में रेलगाड़ी का वर्तमान स्वरूप बना।

रेलों का प्रचार—

आरम्भ में इङ्गलैंड में रेलों के प्रचार का विरोध हुआ, परन्तु धीरे-धीरे उनकी वृद्धि होती गई और १८५० तक इङ्गलैंड में करीब नौ हजार मील की रेलवे लाइन बिछ चुकी थी। भारत में रेलों का आरम्भ १८४५ के बाद हुआ; सन् १८५२ मे बम्बई से थाना तक २१ मील की रेल की सर्वप्रथम लाइन खुली। ऐञ्जिनों में

सुधार भी क्रमशः होते गए जिसका परिणाम यह हुआ कि रेल-गाड़ी की रफ़्तार बढ़ती गई और माल ढोने और यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने के खर्च में कमी होती गई ।

अब तो भाप की शक्ति के अलावा बिजली की शक्ति से भी रेलें चलायी जाती हैं । इनके बारे में आगे लिखा जायगा । आज संसार के प्रत्येक देश के कोने-कोने में रेलगाड़ी चलती है ।

मोटर-गाड़ी—

थल पर विजय प्राप्त करने में दूसरा आविष्कार मोटरगाड़ी का हुआ । रेलगाड़ी के आविष्कार के सम्बन्ध में हम जान चुके हैं कि कई आविष्कारों के बाद स्टीफ़नसन ने रेलगाड़ी का सफल रूप से आविष्कार किया । लोगों ने भाप की गाड़ी को मामूली सड़क पर भी चलते देखा था । कुछ आदमी इस दिशा में उन्नति करने में लगे रहे । गोल्डसवर्दी गर्नी नामक व्यक्ति ने सन् १८२७ ई० में अपनी पहली गाड़ी जो भाप से चलती थी, तैयार की । यह १५ मील प्रति घंटा चल सकती थी और इसमें छः मुसाफ़िर गाड़ी के भीतर और १५ बाहर बैठ सकते थे । कुछ लोगों ने भाप से चलने वाली गाड़ियाँ बनाईं जो तीस मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चल सकती थीं । इङ्गलैंड में कानून द्वारा कुछ ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिए गए जिससे ऐसी गाड़ियों का चलना बन्द हो गया ।

हम पहले बता चुके हैं कि कुछ लोगों ने बारूद के धड़ाके से एञ्जिन को चलाने का प्रयत्न किया था । पीछे, लोगों ने पैट्रोल की गैस के धड़ाके से एञ्जिन चलाने की बात सोची । सिलिण्डर में पैट्रोल की गैस का धड़ाका किया जाय और उसके धक्कों से पिस्टन

आगे बढ़े। यह विचार इंगलैंड के जार्ज कैली के मस्तिष्क में आया। उसके इस विचार को लोगों ने कोरा पागलपन ही समझा; और उसने भी इस विषय में कोई उद्योग नहीं किया। राबर्ट स्ट्रीट नामक व्यक्ति ने सन् १७६४ में एक एंजिन बनाया; जिसके चलाने में उसे सफलता न हुई। बहुत समय तक इस विषय में कुछ भी प्रगति न हो पाई। आख़िर सन् १८६० में लेन्बायर ने पहला गैस-एंजिन बनाया। उसके पश्चात् जर्मनी के डाक्टर निकोलस ओटो ने सन् १८७६ में एक अच्छा एंजिन बनाया। इसके बाद सन् १८८७ ई० में जर्मनी देश के डैमलर नामक व्यक्ति ने इस में और सुधार कर पहले-पहल पैट्रोल की गैस से चलने वाली मोटरगाड़ी बनायी। पहले मोटर में टायर (पहिए की हाल) ठोस रबर की होती थी। अब गैस के एंजिन के साथ ही मोटरगाड़ी के पहिए के लिए हवा से भरी जाने वाली रबर की नली (ट्यब) और टायर का भी आविष्कार डनलप और डैमलर ने एक ही समय में किया। इससे मोटरगाड़ी की गति में काफी वृद्धि हुई। डनलप की भांति डैमलर ने भी पहिले एक तीन पहिए की साइकिल में पैट्रोल का एंजिन लगा कर उसे चलाया था।

बाद में तो मोटरगाड़ियों में बहुत सुधार हुए और आराम और सुविधा के प्रत्येक साधन मोटरगाड़ियों में लगाये गये।

पिछले महायुद्ध में टैंक या जंजीरदार पहिए की बख्तरबन्द गाड़ियों का आविष्कार हुआ। ऐसी गाड़ियाँ किसी भी प्रकार की ज़मीन में चल सकती हैं। दलदल और बर्फ़ पर चलने वाली गाड़ियों के भी आविष्कार हो चुके हैं, जिनमें पैट्रोल का एंजिन

ही रहता है। ज़मीन पर चलनेवाली गाड़ियों में रेल को छोड़ कर अधिकांश में पैट्रोल के एंजिन ही चलाये जाते हैं।

बिजली की रेल और ट्रामवे—

यात्रा के इन साधनों के अतिरिक्त आज बिजली की रेलगाड़ी और ट्रामवे चल गई हैं। ट्रामवे तो शहर के एक भाग से दूसरे भाग को जाती है और बिजली की रेलें दूर-दूर तक भी जाती हैं। बिजली की गाड़ियाँ अत्यन्त तीव्र गति से चलने वाली होती है। साथ ही साथ धुआँ आदि नही करती। इन रेलगाड़ियों और ट्रामों को चलाने मे भाप के स्थान पर बिजली की शक्ति का प्रयोग किया जाता है। इस शक्ति का आविष्कार कैसे हुआ ? अब इस पर प्रकाश डालते हैं।

आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व लोगों ने देखा था कि अंबर (एबोनाइट) या काँच की नली यदि सूखे ऊन या रेशम से रगड़ी जाय तो अरबर कागज़ के टुकड़े व तिनकों को अपनी ओर खींच लेता है। लाख आदि मे भी यही गुण है। गिल्वर्ट नामक वैज्ञानिक ने इस प्रकार की अनेक वस्तुएँ निकाली और मालूम किया कि कुछ चीजों में बिजली फैल जाती है, कुछ में नहीं फैल पाती। पहली प्रकार की वस्तुओं को चालक कहते हैं और दूसरी प्रकार की वस्तुओं को अचालक। इस प्रकार वस्तुओं के दो भेद मालूम होने से आगे बहुत भारी मदद मिली।

गिल्वर्ट का आविष्कार तो बच्चों का खेल था। इटली के एक वैज्ञानिक ने गन्धक के तेज़ाब मे जस्ते और ताँबे की पत्तियाँ डालकर बिजली की बैटरी का आविष्कार किया। इससे रोशनी

तो की जा सकती थी, पर अधिक बिजली पैदा करने में खर्च काफी बैठता था।

डेनमार्क के एक वैज्ञानिक ने पता लगाया कि यदि कुतुबनुमा के पास किसी तार में बिजली बहाई जाय तो सूई उत्तर की ओर नही रह सकती। इसके बाद एक दूसरे वैज्ञानिक ने पता लगाया कि य द साँप की गेंडरी की तरह तार की गेंडरी के अन्दर एक कच्चा लोहे का टुकड़ा रख दिया जाय और उस गेंडरी मे विद्युत्-धारा बहाई जाय तो जब तक विद्युत्-धारा बहती है तब तक के लिए लोहा चुम्बक हो जाता है। फैराडे नामके एक वैज्ञानिक ने तार की गेंडरी के भीतर एक चुम्बक रखकर गेंडरी को घुमाया तो उसमे विद्युत्-धारा का प्रवाह होने लगा, यही सब से पहला डायनमा था। आगे सुधार करके शक्तिशाली डायनमें बनाए गये। आरम्भ मे डायनमों का भाप या तेल की शक्ति से चलाया गया। बाद मे बड़े-बड़े जल-प्रपातों के किनारे बड़े-बड़े डायनमें लगाए गये। इन से उत्पन्न हुई बिजली का उपयोग कल-कारखाने, रेल, ट्राम तथा रोशनी आदि मे किया गया।

डायनमों के साथ 'मोटर' का भी आविष्कार हुआ, जो विद्युत्-शक्ति को चालक शक्ति मे बदल देती है। रेलों और ट्रामों में शक्तिशाली मोटर रहते हैं। जैसे ही रेल और ट्राम में लगी मोटर में विद्युत् का प्रवाह होता है 'मोटर' चलने लगती है और मोटर के चलने से रेल या ट्राम भी।

विद्युत्-शक्ति से ही टेलीफोन, तार, बे-तार-के-तार और समुद्री तार द्वारा समाचार भेजने मे सफलता प्राप्त हुई है। इनका वर्णन आगे किया जायगा।

साइकल और मोटर-साइकल—

अब से करीब अढ़ाई सौ वर्ष पहले एक फ्रांसीसी ने एक लकड़ी की साइकल बनायी थी। वह इसे अगले पहियों को पैर मार कर चलाता था। इस में बड़ी असुविधा तथा कष्ट होता था। धीरे-धीरे कुछ सुधार हुआ। पीछे, लगभग १३२ वर्ष हुए, लुईगोम्वर्ज ने आगे के पहिये को हाथ से चलाने की युक्ति निकाली। फिर इसमें पेडल का प्रयोग किया गया। लकड़ी और लोहे की हाल के स्थान पर रबर के टायर ट्यूब लगाये जाने लगे। इससे साइकल की रफ्तार तेज होने मे सहायता मिली। अब तो शहरों में ग़रीब अमीर सभी इससे लाभ उठाते हैं। पैर से चलायी जाने के कारण इसे चलाने में कुछ व्यय नही होता।

साइकल में गैस का एंजिन लगा कर मोटर-साइकल बनायी गयी, यह मोटर की रफ़तार से चल सकती है, और इसके मुकाबले इसमें खर्च बहुत कम पड़ता है।

इन विविध साधनों से आदमी ने अपनी यात्रा की कठिनाइयों को दूर किया है, और थल पर उत्तरोत्तर विजय प्राप्त की है।

———

अट्ठाईसवाँ अध्याय

जल पर विजय

पिछले अध्याय में मनुष्य के उन प्रयत्नों की चर्चा की गई है, जो उसने थल पर विजय पाने के लिए समय समय पर किए। अब जल-यात्रा की बात लें। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत सा समय ऐसा रहा है जब मनुष्य किसी नदी या समुद्र की ओर विवशता की दृष्टि से देखता था। वह पानी से डरता था। उसने कल्पना की कि यदि मैं इस जल-राशि को किसी प्रकार पार कर पाता तो उस पार का पता लगा सकता। नदी को पार करने का एक उपाय उस पर पुल बांधना था। कुछ स्थानों पर जैसे-तैसे पुल बनाए गए लेकिन इससे समस्या पूरी तरह हल नहीं हुई। बड़ी नदियों पर पुल बनाने में बहुत समय और रुपया लगता था। इसलिए पुल कुछ खास-खास स्थानों पर ही बनाए जा सकते थे। और बड़े-बड़े समुद्रों पर पुल बन ही नहीं सकते थे।

नाव और जहाज़ का प्रारम्भ—

जल-मार्ग को पार करने का दूसरा उपाय तैरना था। आरम्भ में आदमी ने हाथ पैर चला कर तैरना सीखा। कुछ समय बाद

उसने लकड़ी के लट्ठों को पानी पर बहते देखा और प्रयोग से मालूम किया कि ऐसे लट्ठे कुछ अधिक भार भी सम्हाल सकते हैं। इससे मनुष्य को काफी देर तक जल में रहना तो सम्भव हुआ पर दो असुविधाएँ थीं। पहले तो जल के प्रवाह की ओर जाना आवश्यक हो जाता था। अपनी इच्छित दिशा जल-प्रवाह के अनुकूल न हो तो जाना असम्भव था। दूसरे सारा शरीर गीला हो जाता था और कोई वस्तु साथ नहीं ले जाई जा सकती थी। कुछ समय बाद किसी पेड़ के तने को या किसी बड़ी लकड़ी को खोखला करके नाव बनाई गई। किसी चौड़ी लकड़ी से डांड (चप्पू) का काम लिया गया। आरम्भ में इन सब चीजों का स्वरूप बहुत ही बेढगा और अवैज्ञानिक था। धीरे-धीरे सुधार किया गया। डांड अच्छे बनाये गये। नावें भी बहुत बड़ी-बड़ी बनने लगीं। कुछ समय बाद नावों पर लट्ठा लगा कर पाल की मदद से वायु की शक्ति का उपयोग किया जाने लगा। ऐसी नाव जिन पर पाल चढ़ी रहती थी, बहुत बड़ी-बड़ी बनने लगी। इन नावों का आविष्कार आज से हजारों वर्ष पूर्व हुआ था। बहुत समय तक इन नावों से काम लिया गया। मिस्र, रोम, यूनान और भारत मे नाविक विद्या की आज से दो हजार वर्ष पूर्व भी काफी उन्नति हो चुकी थी। पर उस समय तक जहाजों में पाल और डांड का ही उपयोग किया जाता था।

भाप का उपयोग—

किसी मेधावी व्यक्ति ने सतरहवी शताब्दी में पहियेदार चरखी का आविष्कार किया, जिसे घुमाने से जहाज या नाव आगे की ओर बढ़ सकती थी। इस को घुमाने के लिए पहले-

पहल जानवर का उपयोग किया गया और इसमें सफलता मिली। यह जानवर नाव या जहाज़ के अन्दर रहता था। अस्तु, पीछे जान-पेपिन ने एक नाव में भाप से चलने वाली चरखी लगाई। उससे नाव चलने लगी। मल्लाहों ने अपनी रोज़ी (आजीविका) जाने के भय से इस नयी नाव को तोड़-फोड़ डाला। मल्लाहो ने पेपिन को मार डालने की भी कोशिश की थी; लेकिन किसी तरह उसने भागकर अपनी जान बचायी।

पेपिन के बाद सन् १७४३ में इङ्गलैड में जोनेथन हल नामक व्यक्ति ने भाप से चलने वाली नाव का आविष्कार किया और उसे पेटन्ट भी करा लिया। उसका नाव के सम्बन्ध में अब कोई विवरण नहीं मिलता।

हल के बाद फ्रॉस मे सन् १७८५ में जाफ़रे नामक व्यक्ति ने अग्निबोट (स्टीमशिप) बनाने का प्रयत्न किया। उसके अग्निबोट में पट्टेदार पहिए या नौचलनी अगल-बगल लगे हुए थे। लेकिन उसे सफलता प्राप्त न हुई। इङ्गलैड में सन् १७८८ में प्रैट्रिक-मिलर ने विलियम सिमिंटन नाम के मिस्त्री से एक अग्निबोट बनवाया और उसे एक झील में चलाया गया। उसको चलता देख लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस अग्निबोट के बनने पर मिलर ने तो फिर इस ओर ध्यान नहीं दिया लेकिन उस मिस्त्री ने एक दूसरे धनी आदमी की मदद से, नहर में चलने के लिए दूसरा अग्निबोट बनाया। जब यह नहर मे चलने लगा तो इसकी लहरों से नहर के किनारों को क्षति पहुंची। इसलिए नहर के मालिकों ने उसका चलाना बन्द कर दिया। इस तरह उसको अग्निबोट बनाने से विशेष लाभ न हुआ।

सन् १८०७ मे रावर्ट फाल्टन ने क्लेरमांट नामक अग्निबोट बनाया। यह अग्निबोट अमरीका में हडसन नदी में भली भांति चल सकता था। फाल्टन के वाद हेनरी वेल ने कमेट नामक अग्निबोट बनाया। इसमें चार नौचलनी चक्के लगे थे, लेकिन इसको चलाने के लिए दो ही चक्के काफी थे, इसलिए वाकी दो इसमे से निकाल लिए गए।

इस समय तक जितने भी अग्निबोट बने थे, वे नदियों या झीलों मे ही चलने योग्य थे; लेकिन इन छोटी-छोटी नावों को भाप के एञ्जिन से चलता देख कुछ लोगों ने समुद्र में चलने योग्य अग्निबोट बनाने की कोशिश की। इनमे पहले-पहल सन १८१६ मे सवन्ना नाम का जहाज वना। यह जहाज वास्तव मे पालों द्वारा चलने वाला जहाज था; लेकिन उस पर भाप का एंजिन भी लगाया गया था। इस जहाज ने ३० दिन मे अटलांटिक महासागर पार कर अमरीका से इङ्गलैंड तक यात्रा की। कुल यात्रा मे यह केवल आठ घण्टे ही भाप के एञ्जिन से चलाया गया था। इङ्गलैंड पहुंचने पर सवन्ना पर से भाप का एञ्जिन उतार लिया गया और वह पालदार जहाज ही रह गया, लेकिन इसकी यात्रा से यह मालूम हो गया कि समुद्र मे भाप के एञ्जिन से भी जहाज चल सकते है।

सन १८२५ ई० मे पाल और भाप का एञ्जिन दोनों लगे हुए फालकन नाम के एक जहाज ने इङ्गलैंड से कलकत्ते तक की यात्रा की। यही हिन्दुस्तान आने वाला सब से पहला भाप का जहाज था। उसी वर्ष 'एन्टरप्राइज' नाम के जहाज ने भी हिन्दुस्तान तक यात्रा की। इसने कुल ११३ दिनों की यात्रा मे १०३ दिन

भाप के एञ्जिन से, और बाकी दिन पाल से काम लिया था। इन जहाजों में भाप के एञ्जिन से काम तो लिया गया था, लेकिन लोग जहाजों पर पाल भी रखते थे। उन दिनों भाप के एञ्जिन बहुत अच्छे नहीं बन सके थे; इस लिए लम्बी यात्राओं में बहुत कोयले की आवश्यकता पड़ती थी; लेकिन जहाजों पर इतना अधिक कोयला न लद सकने से लोग पाल भी रखते थे। धीरे धीरे कुछ दिनों बाद जब भाप के एञ्जिन अच्छे बन सके और थोड़े कोयले में काम चलने लगा तो सिर्फ एञ्जिन से ही महासागरों को पार करने वाले जहाज दिखाई पड़ने लगे। ऐसे जहाजों में से चार जहाजों ने पहले-पहल सन् १८३८ ई० में अटलांटिक महासागर को सिर्फ़ भाप के एञ्जिन के बल पर ही पार किया। इन जहाजों मे सिरियस और ग्रेट-वेस्टर्न नाम के दो जहाजों ने एक साथ ही यात्रा की थी और उनमें दौड़ भी हुई थी। इसमें सिरियस बहुत छोटा और ग्रेट-वेस्टर्न बहुत बड़ा जहाज था। इस मे विजय सिरियस की ही रही।

जहाजों में सुधार—

इसके उपरान्त अनेक जहाज बनाये गए और उनमें निरन्तर सुधार किया गया। जहाजों में लकड़ी के स्थान पर लोहे की चद्दरें और लोहे के स्थान पर स्टील की चद्दरें इस्तेमाल की जाने लगीं। पाल और डांड के स्थान पर नौचलनी चक्र और इसमें भी सुधार कर पंखड़ीदार चक्र इस्तेमाल किया जाने लगा। धीरे-धीरे और भी सुधार किए गए। आज जहाज इतने सुविधाजनक बनने लगे हैं कि उन पर यात्रा करने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

पनडुब्बी—

इसके साथ ही पानी के अन्दर चलने वाली पनडुब्बी नौकाएँ भी बन गयी हैं। इनके विषय में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। भयंकर तूफानों में पड़ कर भारी से भारी जहाज़ डूब जाते थे। इस बात ने मनुष्य को ऐसे जहाज़ बनाने की प्रेरणा की, जो पानी के अन्दर चल सकें। दूसरे ऐसे जहाजों से युद्ध के समय शत्रु-देश के जहाजों को टारपीडो (विशेष प्रकार के गोले) द्वारा डुबाया जा सकता है, तथा शत्रु की गति-विधि पर गुप्तरूप से नजर रखी जा सकती है। जल के अन्दर चलने वाली नौकाओं अर्थात् पनडुब्बी में कई बातों की व्यवस्था करना आवश्यक था। उनके करने पर ही वे सफलतापूर्वक चली। उदाहरण रूप से एक बात यह थी कि आदमी बिना सांस लिए मिनट भी नहीं रह सकता। इस पनडुब्बी में दबी हुई आक्सीजन रखी गयी, जो पनडुब्बी के पानी के अन्दर जाने पर साँस लेने के काम आ सके। यह भी आवश्यक था कि नौका की बनावट ऐसी हो कि वह चाहे जब समुद्र के अन्दर चली जाय, और चाहे जब बाहर आ सके; और जब वह पानी के अन्दर हो तो पानी उसके भीतर प्रवेश न कर सके। इसके वास्ते, पनडुब्बी में बड़े-बड़े हौज रखे गये। जब पनडुब्बी को डुबाना होता था तो उन हौजों मे पानी भर दिया जाता था. और जब पनडुब्बी को ऊपर लाना होता था तो पानी निकाल दिया जाता था। पनडुब्बी मे इस बात की भी व्यवस्था होने की आवश्यकता थी कि पानी के अन्दर चलते रहने पर भी वह समुद्र के ऊपर की वस्तुओं को भली भांति देख सके। इसके लिए पेरिस्कोप नामक यंत्र का

आविष्कार किया गया। इसके द्वारा पानी के ऊपर की भी वस्तु दिखाई दे सकती थी।

जर्मनी ने इस प्रकार की सर्व-साधन-सम्पन्न पनडुब्बी, सब से पहले, बनाई। ऐसी पनडुब्बियों का प्रयोग समुद्र में बड़े-बड़े जहाजों को डुबाने में विशेष रूप से किया गया। पिछले महायुद्ध और इस महायुद्ध में भी इन्हें खूब काम में लाया गया। यदि पनडुब्बियों का सदुपयोग किया जाय, इन्हें जहाज डुबाने के काम मे न लाया जाय, तो इनके सहारे जल-यात्रा बहुत सुगम हो जाती है, इसमें कोई सन्देह नही।

उनतीसवाँ अध्याय

वायु पर विजय

मनुष्य की हवा में उड़ने की अभिलाषा और शक्ति—

मनुष्य ने ज़मीन पर तेज़ी से चलने के साधन प्राप्त कर लिए, समुद्र मे लम्बी-लम्बी यात्रा करने लगा पर उसकी अभिलाषा आकाश में उड़ने की बनी रही। उसने पक्षियों को आकाश में उड़ते देखा था। पक्षियों को प्रकृति ने पंख दिये थे पर मनुष्य के पास ऐसा कोई साधन न था। इस दिशा में बहुत समय तक कोई भी प्रयत्न न किया जा सका। मनुष्य को बहुत समय तक इस इच्छा को मन में ही दबाए रखना पड़ा। कुछ लोगों ने पंख लगाकर उड़ने का प्रयत्न किया,पर वे असफल रहे; इसका कारण था कि एक तो मनुष्य का शरीर चिड़ियों की अपेक्षा कहीं अधिक भारी होता है, दूसरे चिड़ियों में अपने शरीर के भार को उठाने या पंखों को चलाने के लिये जितना बल होता है, उसकी अपेक्षा मनुष्य मे अपने हाथों से अपने शरीर को चलाने या उड़ाने के लिए कम बल होता है। आदमी के उड़ने के लिए जितने बड़े पंखों की आवश्यकता होगी उतनों को मनुष्य अपनी शक्ति द्वारा फड़फड़ा नहीं सकता।

चीन में कंडील—

चीन देश में आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व कडील उड़ाये जाते थे। कडील हलके कागज़ और खपच्चों का बना एक थैला होता है जिसमें कि अन्दर दिया जला दिया जाता है, इससे इस थैले के अन्दर की हवा गरम हो जाती है। गरम हवा ठंडी हवा से हलकी होती है; इस कारण ऐसे कडील हवा में उड़ सकते हैं। ऐसे कडील केवल मनोरञ्जन के लिए ही उड़ाये जाते थे। इससे किसी मनुष्य ने हवा में उड़ने की कल्पना नही की।

भारतवर्ष में वमान--

मनुष्य जाति का प्राचीन इतिहास बहुत अन्धकार में है; दो तीन हजार वर्ष से पहले की घटनाओं मे से जो जितनी अधिक पुरानी हैं, उतना ही उनका व्यौरा या समय निश्चित करना अधिक कठिन है। भारतवर्ष मे घर-घर यह बात प्रचलित है कि रामायण-काल में यहाॅ विमानों का उपयोग हुआ है। लेकिन उन विमानों की यान्त्रिक रचना किस प्रकार की थी, और वे किस प्रकार की शक्ति से उड़ते थे, इसके बारे मे कोई जानकारी नहीं है। यही नहीं, रामायण का समय कब माना जाय, इस विषय में भी मतभेद है। इसलिए वायुयानों के विषय में भारतवर्ष के प्राचीन निर्माण-कौशल का कुछ निश्चित स्थान नहीं रहता। खास कर जव कि उसके पीछे कोई सिलसिला नहीं रहा।

गुब्बारों के प्रयोग—

आधुनिक संसार में सबसे पहले फ्रांस में मांट गाल्फियन नाम के दो भाईयों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने

१८७२ में एक गुब्बारा बनाया और इसमें गरम हवा के स्थान पर हाईड्रोजन गैस भरी गई। यह गैस वज़न में साधारण वायु-मंडल की हवा के सातवें हिस्से से कम होती है, अर्थात् यह हवा से सात गुनी से भी अधिक हल्की होती है। गुब्बारा कपड़े का बनाया गया था और उस पर रबड़ तथा तारपीन के तेल का लेप था जिससे कि गैस उसमें से निकल न जाय। इसी तरह का एक गुब्बारा प्रोफ़ेसर चार्ल्स ने १७८३ में फ्रॉस में बनाया। उसे हाईड्रोजन भर कर उड़ाया गया। यह बहुत ऊँचा चला गया और पन्द्रह मील दूर जाकर किसी खेत में गिरा। लोगों ने इसे राक्षस समझकर इस पर हमला किया पर पीछे घोषणा करा दी गई कि गुब्बारे राक्षस नहीं हैं।

ऐसे प्रयोगों के उपरान्त कुछ लोगों ने सोचा कि इनमें बैठकर यात्रा की जाय तो अच्छा है। प्रयोग के लिए ऐसे ही एक गुब्बारे में कुछ जानवरों को उड़ाया गया और जब यह गुब्बारा जमीन पर उतरा तो उसके अन्दर के जानवर जीवित पाये गये। गरम हवा के ऐसे ही एक गुब्बारे में ऐजियर नामक एक व्यक्ति ने उड़ने का साहस किया। बाद में वे गैस के गुब्बारों पर भी उडे; ऐसे गुब्बारे गरम हवा के गुब्बारों से अधिक सुरक्षित थे।

गैस या गरम हवा के गुब्बारों में एक बड़ी कठिनाई यह थी कि उन्हें डांड की नाव की भांति हवा की दिशा की ही ओर उड़ना होता था। यदि दूसरी ओर उड़ना चाहते तो नहीं उड सकते थे। गिफर्ड नामक व्यक्ति ने ऐसे एक गुब्बारे में भाप का एञ्जिन लगाया जिससे गुब्बारा मनमानी दिशा में चलाया जा सके। यह गुब्बारा ससार का पहला वायुपोत था।

परन्तु यह भी दोषमुक्त न था। इसके साथ जो भाप का एञ्जिन लगा था वह बड़ा भारी था और उस एञ्जिन को चलाने के लिए काफी कोयला और पानी साथ में रखना होता है। इस कारण गिफर्ड अपना हवाई जहाज़ बहुत धीमी चाल से चला सका। बाद में जब गैस के एंजिन का आविष्कार हो गया तो उस तरह के एंजिन लगाकर हवाई जहाज़ उड़ाये जाने लगे। ऐसे हवाई जहाज़ों को उड़ाने में सैटोज ड्यमाट को विशेष सफलता मिली।

जेपलिन—

जिन गुब्बारों में एञ्जिन लगाये जाते थे, उनकी शक्ल गोल होने के स्थान पर मोटे सिगार की भांति होती थी। इसके नीचे एञ्जिन लगा दिया जाता था। जर्मनी के एक आविष्कर्ता काउण्ट जैपलिन ने एक नये ढङ्ग के हवाई जहाज का आविष्कार किया। इस वायुपोत का ढाचा हलके धातु के तारों का बना था और अन्दर एक गुब्बारा होने के स्थान पर अनेक छ टे-छाटे गुब्बारे थे। इससे भारी लाभ यह हुआ कि पहले यदि किसी कारण से गुब्बारा फट जाता था, तो हवाई जहाज जमीन पर गिरकर नष्ट हो जाता था, पर इस नये जहाज में यदि एक गुब्बारा फट भी जाय तो विशेष हानि की सम्भावना नहीं थी। हवाई जहाज बराबर उड़ता रह सकता था। ऐसे हवाई जहाज बहुत बड़े-बड़े भी बनने लगे थे। जैपलिन का पहला वायुपात सन् १९०० में तैयार हुआ था। लेकिन वह जल्दी टूट फूट गया। इस प्रकार उसके कई वायुपोत टूटे-फूटे और उसकी सारी सम्पत्ति भी इस कार्य मे नष्ट हा गई। उसके उद्योग और प्रयत्न को देखकर जर्मन सम्राट् कैसर ने उसे इन प्रयोगों के लिए पर्याप्त धन दिया। इस मदद

से उसने कई बड़े-बड़े जहाज़ बनाये और ये गुब्बारे उसी के नाम पर 'ज़ेपलिन' प्रसिद्ध हुए। तारों के ढांचे के स्थान पर हल्की धातु के ढांचे ने स्थान लिया। हाइड्रोजन बहुत जलनशील गैस है। इससे कभी भी वायुपोत में आग लगने का ख़तरा बना रहता था। इसके स्थान पर हैलियम गैस का प्रयोग किया जाने लगा। सन् १६१४ के महायुद्ध में जर्मनी ने इन ज़ेपलिनों से युद्ध-क्षेत्र में बमबारी करके भारी आतङ्क फैला दिया था। इससे मित्र-पक्ष में बड़ी घबराहट फैल गई थी। पीछे इस तरह के हवाई जहाज़ इतने बड़े बनाये जा सके कि १०० यात्री ५० जहाज़ी नौकरों के साथ आराम से यात्रा कर सकें।

अन्य वायुयान—

उपर्युक्त वायुयान में हल्की हवा के गुब्बारे रहते थे इसलिए इनको उड़ने में सफलता होती थी, पर वैज्ञानिकों की कोशिश इस दिशा में भी जारी थी कि वायु से भारी हवाई जहाज़ भी हवा मे उड़ सके। हवा मे यदि कोई पतली वस्तु जैसे दफ्ती, कार्डबोर्ड या तख्ते का चपटा टुकड़ा ज़ोर से फैंका जाता है तो वह काफी दूर तक हवा को चीरता हुआ, हवा पर तैरता हुआ सा प्रतीत होता है। ऐसा होने का कारण उसकी गति है। गति कम होने पर यह गिरने लगता है। यदि इसकी गति बराबर बनाई रखी जा सके तो यह हवा में आगे बढ़ता चला जायगा। इसी सिद्धांत के आधार पर हवा से भारी वायुयान उड़ाने का निश्चय किया गया। इस रहस्य का अनुभव पहले-पहल लेंग्ली ने किया था। ऐसे वायु-यानों को बनाने से पहले कुछ लोगों ने ग्लाइडर बनाये थे। ग्लाइडर एक प्रकार से बिना एञ्जिन लगा वायुयान कहा जा

सकता है। इन ग्लाइडरों को पहले किसी पहाड़ी पर तेज़ी से दौड़ाया जाता था और थोड़ी देर में यह ज़मीन से उठ जाता था। कुछ देर तक हवा में आगे बढ़ता हुआ यह फिर ज़मीन पर उतर आता था। लिलियन्थल नामक व्यक्ति ने कई ग्लाइडर बनाये थे। उनको हवा में उड़ाने में वह सफल भी रहा और उसकी मौत भी एक ऐसे ही प्रयोग में हो गई। लिलियन्थल की भांति ही पर्सीपिल्चर ने भी इस प्रकार के ग्लाइडर बनाने का प्रयत्न किया और उसकी भी मृत्यु एक ऐसे ही प्रयोग में, दुर्घटना के कारण, हुई। दोनों ने ही अपनी मृत्यु के पूर्व ग्लाइडरों में एञ्जिन लगाकर उड़ने का प्रयत्न किया।

इनके पश्चात् हिरम मैकिज़म ने एक ऐसा वायुयान बनाया, जिसमें दो पङ्ख लगे थे और इसके अन्दर ३५० घोड़ों की शक्ति का एञ्जिन लगा था। इस एञ्जिन से दो प्रोपेलर चलाये जाते थे। यह सब होने पर भी इसमें गति-नियंत्रक-यंत्र नहीं था। यह रेल की पटरियों पर दौड़ाया गया। दौड़ने में यह कई बार ज़मीन से ऊँचा उठा पर बार-बार ज़मीन पर आ गया। एक स्थान पर रेल की पटरी टूट गई। इस प्रयोग से यह निश्चित हो गया कि ऐसे वायुयानों में सुधार करके उन्हें उड़ाया जा सकता है।

वायुयानों में सुधार—

इन सब प्रयत्नों से लाभ उठा कर विल्बर राइट और ओरविल राइट नामक दो बन्धुओं ने सन् १९०० में अपना पहला ग्लाइडर बनाया। यह ग्लाइडर लिलियन्थल आदि के ग्लाइडरों से सर्वथा भिन्न था। इस ग्लाइडर में विशेषता यह थी कि यह काफी बड़े आकार का बनाया गया था। सन् १९०१ और

सन् १६०२ में राइट बन्धुओं के ग्लाइडरों के विविध परीक्षण होते रहे। इन ग्लाइडरों को जब छः सौ फीट तक उड़ने में सफलता मिल गई तब इनमें मोटर या एञ्जिन लगाने की बात सोची गई। इस प्रकार एक एञ्जिन युक्त वायुयान बनाया गया। इसका प्रोपेलर एक मिनट में ६०० चक्कर लगाने में समर्थ था। इसे उड़ाने में भी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आरम्भ में एञ्जिन के उड़ने के लक्षण दिखाई नही देते थे, पर १७ दिसम्बर १६०३ को वायुयान इसी एञ्जिन की शक्ति से चला कर उड़ाया जा सका। पहली उड़ान कुछ सेकिंडों की ही थी। सन् १६०४ में एक नया वायुयान बनाया गया और सन् १६०५ में राइट-बन्धुओं ने बीस मील तक उड़ सकने में सफलता प्राप्त की। इसके उपरान्त फ्राँस तथा अन्य देशों में भी इस सम्बन्ध में अनेक प्रयोग तथा वायुयानों की दौड़ हुई। वायुयान दुपंखी के स्थान पर एक पंखी होने लगे और एञ्जिनों में भी सुधार हुआ। अधिक शक्तिशाली और हल्के एञ्जिन बनने लगे। पिछले महायुद्ध में ही वायुयानों के सब हिस्से धातुओं के बनने लगे थे। इन वायुयानों में लड़ने के भारी-भारी अस्त्र भी लगाये गये। इस महायुद्ध मे तो वायुयानों में आश्चर्य-जनक उन्नति हुई है। जर्मनी ने छः एञ्जिन और ३६०० घोड़ों की शक्ति के एञ्जिन बनाये तो अमेरिका ने चार एञ्जिन के ही इससे अधिक शक्तिशाली वायुयान बनाकर जर्मनी को नीचा दिखाया। आज वायुयान की गति ५०० मील प्रति घण्टा तक पहुँच चुकी है।

हेलीकोप्टर—

अब तो ऐसे वायुयान जिन्हें हेलीकोप्टर भी कहते हैं, बने हैं जो किसी भी स्थान पर उतर सकते हैं। उनके उतरने के लिए

समतल जमीन होना आवश्यक नहीं। हेलीकोप्टर अधिक शक्ति-शाली नहीं होते। वायुयानों में यात्रा करना बहुत आरामदेह और समय को बचाने वाला है। हवाई डाक और मूल्यवान् पदार्थ भी इसके द्वारा भेजे जाने लगे हैं। अब तो भविष्य में समुद्री जहाजों की भाति ही इनका भी प्रयोग किया जाय, यह विचार है। वायुयान से सामान भेजने में खर्च बहुत पड़ता है, इस कारण इन्हें कुछ अधिक प्रयोग में नहीं लाया जाता; पर निकट भविष्य में वायुयान द्वारा सामान भेजना और यात्रा करना अत्यन्त सरल हो जायगा।

दूरी को कम करके और समय की बचत करके वायुयानों ने संसार में युगान्तर उपस्थित कर दिया है।

तीसवाँ अध्याय

रोगों पर विजय

मानव-शरीर रूपी यंत्र—

मनुष्य ने बहुत से आविष्कार किए, अनेक प्रकार के यत्र आदि बनाने में सफलता प्राप्त की, और प्रकृति के अनेक रहस्यों का पता लगाया। इन सब के साथ ही उसे यह भी पता लगा कि वह स्वय प्रकृति द्वारा निर्मित पेचीदा यत्र है। यह यत्र एक दिन में नहीं, वरन् प्रकृति द्वारा लाखों वर्षों मे बन पाया है। इस कारण इसको समझना अत्यन्त कठिन है। इसके बारे में अनेक परीक्षा और प्रयोग किये गये। पूर्वजों के ज्ञान से सहायता ली गई। उसका फल यह हुआ कि शरीर-रचना कुछ-कुछ समझ में आ पाई है। अभी तक यह न हो सका कि मनुष्य अपने शरीर की मशीन को बना सके या इसको कभी भी नष्ट न होने दे। हाँ, इतना करने में वह अवश्य सफल हो गया कि यदि समय-समय पर इसके साधारण रूप में विकार हो जाय तो उसका सुधार कर सके। शरीर में विकार या व्याधि ही रोग है। इन रोगों के कारण इस शरीर को नष्ट भी हो जाना पड़ता है। आज मनुष्य ने विज्ञान के बल पर अधिकांश रोगों पर विजय प्राप्त कर ली है और अकाल

मृत्यु के भय को बहुत कुछ अंश तक कम कर दिया है। रोगी के ऊपर जो विजय प्राप्त की जा सकी वह कठिन परिश्रम और सतत प्रयत्न से प्राप्त हुई है। विज्ञान के अन्य आविष्कारों से इनका महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं है।

प्रारम्भक विचार—

बहुत समय तक मनुष्य रोगों के विषय में घोर अन्धकार में था और इसे देवताओं का कोप समझता था। कुछ रोगों के इलाज के लिए कुछ ऐसे उपाय चल निकले, जिन्हें जादू या टोना कहते हैं। कई बीमारियों को दूर करने के लिए कुछ लोगों में जादू-टोना अब भी प्रचलित है; हाँ, कहीं-कहीं उसका रूप कुछ बदल गया है। आदमी अपनी बुद्धि से दूसरे प्रयोग भी करता रहा। उनमें उसे थोड़ी बहुत सफलता भी मिली। इस समय भी उसके प्रयोग चल रहे हैं और न मालूम कब तक चलते रहेंगे। तो भी बहुत से रोगों की औषधियाँ मालूम होगई हैं, और आदमी का चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा है।

जड़ी बूटियों के प्रयोग—

मनुष्य ने देखा कि जमीन पर जंगलों में और पहाड़ों पर तरह-तरह की जड़ी-बूटी, वनस्पति या पौधे उगे हुए हैं। उसने भूल से या कौतूहल से कोई चीज खा ली, उसे उसका शरीर पर खास तरह का प्रभाव पड़ता हुआ मालूम हुआ। उसने बारबार अनुभव किया कि इस चीज में यह गुण या दोष है। इस तरह नयी-नयी चीजों के बारे में प्रयोग हुआ, अथवा एक ही वनस्पति के जुदा जुदा हिस्सों—जड़, पत्ते, फल, फूल, डंठल आदि—के

गुणों की खोज हुई। दो या अधिक वस्तुओं के मिश्रण के भी गुण मालूम किये गये। धीरे धीरे यह ज्ञान संचित होने लगा और चिकित्सा-शास्त्र का जन्म और विकास हुआ।

आयुर्वेद चिकित्सा—

भारतवर्ष में आयुर्वेद शास्त्र भी एक उपवेद माना जाता है। आधुनिक इतिहासकारों के मत से इस शास्त्र का निर्माण हुए छः हजार वर्ष तो हो ही गये। यहाँ के जो दूसरे ग्रन्थ अब मिल सकते हैं, उन में से मुख्य चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता हैं। इनमे चरकसंहिता औषधि-प्रधान है और सुश्रुत में शल्य अर्थात् चीरफाड़ का विचार किया गया है। इन ग्रन्थों का समय ईसा से एक हजार वर्ष पहले माना जाता है। इस बीच में इन ग्रन्थों में कोई सुधार या संशोधन आदि नहीं हुआ है। फिर भी इनमें बहुत से विषयों का गम्भीर ज्ञान भरा हुआ है। आयुर्वेद का त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) सिद्धांत शरीर सम्बन्धी ज्ञान का बहुत बढ़िया उदाहरण है। वैद्यों को नाड़ी का व्यवहार-ज्ञान होता है, वे बिना किसी यन्त्र के सहारे केवल नाड़ी देखकर ही आदमी के शरीर की दशा, विकार या रोग जान लेते है। आयुर्वैदिक चिकित्सा के वैज्ञानिक होने में प्रायः लोगों को बड़ा सन्देह है। एक बार आयुर्वेदीय पद्धति पर शिक्षण देने का प्रयत्न करने पर बम्बई के डाक्टर प्रभराय पोपट पर मुकद्दमा चलाया गया था। चार घंटे की लम्बी जांच के बाद जजों और बेरिस्टरों के कठिन प्रश्नों का उत्तर देकर डाक्टर पोपट यह सिद्ध करने में समर्थ हुए कि आयुर्वेद एक शास्त्र है। पिछले दिनों भारतीय और पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन का और

आयुर्वेद को आधुनिकता के सांचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है और इसकी नवीन पाठ्य प्रणाली की शिक्षा देने के लिए भारतवर्ष के विभिन्न केन्द्रों मे विद्यालयों की स्थापना की गई है। पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली के विशेषज्ञों ने आयुर्वेद की महत्ता को स्वीकार कर लिया है और इसके सिद्धान्तों और औषधियों का समावेश वे अपनी चिकित्सा प्रणाली में करने लगे हैं। उनके यहां क्षय रोग में स्वर्ण का उपयोग इंजेक्शन के रूप में किया जा रहा है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं को भी ग्रहण किया गया है।

पश्चिमी चिकित्सा पद्धतियाँ—

पश्चिमी चिकित्सा पद्धतियाँ तो बहुत ही थोड़े समय की हैं। हाँ, थोड़े से समय मे ही इसका विकास बहुत हो गया है, बात यह है कि उन देशों में इनके लिए राज्य की ओर से सुविधाएँ काफी परिमाण मे मिलती रही। जो हो, समय-समय पर, जुदा जुदा देशों में और कुछ दशाओं मे एक ही देश में कई चिकित्सा प्रणालियों का उदय और विकास हुआ। इस समय संसार में छोटी-बड़ी दर्जनों प्रणालियां प्रचलित हैं। हम यहां कुछ खास खास प्रणालियों के बारे में कुछ मोटी-मोटी बातों का ही वर्णन करेंगे।

एलोपेथी—

आजकल एलोपेथी का चलन बहुत होता जा रहा है। इसका सिद्धान्त यह है कि विविध रोगो का कारण भिन्न भिन्न प्रकार के कृमि (बेक्टेरिया) या कीटाणु (जर्म) हैं। ये कृमि

या कीटाणु बहुत ही छोटे होते हैं और उन्हें साधारणतया आंखों से, देखना सर्वथा असम्भव है। कृमि तो जीव और वनस्पति के मध्य की वस्तु है। रोग के कीटाणु और कृमि इतने छोटे होते हैं कि सुई की नोक पर हजारों की संख्या में आ सकते हैं। कृमि अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ तो मानव-जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक होते हैं। उनके बगैर न तो दही जम सकता है न सिरका बन सकता है न शराब। परन्तु बहुत से कृमि भयङ्कर रोगों के उत्पादक होते हैं। इन कृमि और कीटाणुओं का प्रवेश शरीर में खाने, पीने, साँस लेने, स्पर्श, मच्छर, पिस्सू आदि के काटने से हो जाता है। इस बात की खोज कि विशेष रोग कीटाणु या कृमि द्वारा उत्पन्न होते हैं, जर्मन वैज्ञानिक राबर्ट कोच ने की थी। उन्होंने एक पशु-रोग का विचार किया जिसे एन्थ्रेक्स कहते हैं, जिससे प्रत्येक वर्षहजारों भेड़ें मर जाती थीं। अनुसंधान द्वारा उन्हें मालूम हुआ कि प्रत्येक बार रोग से पीड़ित भेड़ों में एक विशेष प्रकार के कीटाणु अवश्य थे। उन्होंने इन कीटाणुओं को बढ़ाया और कुछ स्वस्थ भेडों के शरीर में उनका प्रवेश करा दिया। कुछ दिनों में ही सब भेड़े एथ्रेक्स रोग से मर गईं। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि विशेष कीटाणु ही रोग का कारण था। इसके बाद डाक्टर कोच ने, अन्य वैज्ञानिकों के सहयोग से, कार्य करना आरम्भ किया। उसने अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा विभिन्न रोगों से पीड़ित मनुष्यों का खून देखा और उसमें विभिन्न रोगों के कीटाणुओं को पाया। राबर्ट कोच ने तपेदिक और हैजे के कीटाणुओं की खोज की तथा अन्य व्यक्तियों ने इनफ्लुएन्ज़ा, कुकुर-खाँसी, आदि अनेक रोगों के कीटाणुओं को पाने में सफलता प्राप्त की।

पाश्चर और जेनर आदि के अनुसन्धान—

इसके बाद लुई पाश्चर नामक रसायन-शास्त्री ने यह सिद्ध किया कि उपरोक्त विशेष प्रकार के कीटाणु रोग का कारण नहीं, वरन् उनके द्वारा पैदा किया हुआ विष टोक्सीन जो खून मे मिल जाता है, रोग का कारण होता है। यदि इस विष को नष्ट करने वाला विष, 'एन्टीटोक्सीन' शरीर में रोग होने के पहले प्रवेश करा दिया जाय तो रोग की उत्पत्ति नहीं होगी। इस बात का अधिकांश लोगों ने उपहास उड़ाया, परन्तु उसने अपने कथन की सत्यता सिद्ध करने के लिए कुछ वैज्ञानिकों, विद्वानों, डाक्टरों और पत्रकारों को निमन्त्रित किया। उसने प्रयोग के लिए पचास भेडों को लिया। उनमे से पचीस भेडों के शरीर मे एन्टीटोक्सीन का इंजेक्शन (शरीर में पिचकारी) द्वारा पहुँचा दिया गया। पचीस भेड़ें उसी प्रकार रहने दी गईं। कुछ दिनों के बाद पचासों भेड़ों के अन्दर एन्थ्रेक्स का विष पहुंचा दिया गया। दूसरे दिन प्रात. देखा गया कि २५ भेड़ें जिनके शरीर मे एन्टीटोक्सीन विष प्रवेश कराया गया था, वे स्वस्थ और जीवित है, शेष भेड़ें मरी पड़ी है। पाश्चर का प्रयोग सफल हुआ और इसके बाद उसने यही तरीका हाईड्रोफोबिया (जल-विक्षिप्तता या कुत्ते के काटने से होने वाले पागलपन) के सम्बन्ध में किया। उसने इसका सफल प्रयोग एक लड़के पर किया, जिसे पागल कुत्ते ने काट खाया था। इस प्रकार उसने अनेक रोगों के इलाज का आविष्कार किया। इसके बाद विगत चालीस वर्षों में जितने भी प्रयोग हुए हैं, उनके लिए मनुष्य जाति को पाश्चर का विशेष कृतज्ञ होना चाहिये।

इस प्रकार के इलाज का आविष्कार तो पाश्चर से १०० वर्ष पूर्व एडवर्ड जेनर ने किया था। एडवर्ड जेनर ने चेचक के

रोग के टीके की खोज कर ली थी और उसको प्रयोगों में सफलता भी मिली थी। जेनर को रोग के कारण, कृमि या कीटाणु और इलाज के सिद्धान्त सम्बन्धी कोई भी ज्ञान नही था। उसने सुन रखा था कि जिन व्यक्तियों को काऊपोक्स (गाय की एक विशेष बीमारी से होने वाला रोग) हो जाता है, उन्हे स्मालपाक्स या चेचक नही हो सकती। इसे सिद्धान्त मान कर उसने एक लड़के के शरीर मे पहले काऊपोक्स के कृमि, इजेक्शन द्वारा, प्रवेश करा दिए और फिर कुछ समय बाद चेचक के। उस लड़के को चेचक की बीमारी नही हुई। इस सत्य का लोगों को उसने अपने प्रयोगों द्वारा विश्वास दिलाया। इससे उसने योरुप भर के काफी प्रसिद्धि पाई। इस प्रकार चेचक योरुप से एक प्रकार से चली ही गई।

इस प्रकार हमें मालूम हुआ कि यद्यपि जेनर को कीटाणु और कृमि के विषय में कुछ भी ज्ञान नही था फिर भी उसने चेचक की औषधि अपने परिश्रम और उद्योग से ढूंढ़ निकाली। कोच, पाश्चर तथा अन्य वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक तरीके से इन विभिन्न रोग के कीटाणुओं की आदतों रहने-सहने, उत्पत्ति आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त किया और रोग के कारण तथा उसके प्रसार के कारणों को ढूंढ निकाला और पाया कि कृमि गन्दे पानी और सील के वातावरण मे पैदा होते और अति शीघ्रता से बढ़ते हैं। ये कृमि गन्दे पानी, भोजन आदि के साथ हमारे शरीर में प्रवेश पा जाते हैं। कुछ कीटाणु, मच्छर पिस्सू आदि छोटे जीवों के काट जाने से शरीर के रक्त में प्रवेश पा जाते हैं और कुछ खुरसट या चोट के घाव द्वारा ही शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। प्लेग जिससे हजारों आदमी एक दिन में समाप्त हो जाते थे, पिस्सुओं द्वारा

फैल जाती है, मलेरिया एक विशेष प्रकार के मच्छरों द्वारा फैलता है। मलेरिया के कारण की खोज सर रोनल्ड रस ने की थी। उन्होंने मच्छरों के पैदा होने वाले गड्ढों को भरवाने और नष्ट करने के उपाय बताये जिससे मलेरिया बहुत कम हो गया।

होमियोपेथी का आविष्कार—

ऊपर ऐलोपेथी के बारे में लिखा गया है। पश्चिमी चिकित्सा प्रणालियों में उसके अलावा होमियोपेथी का भी एक खास स्थान है। इस चिकित्सा-पद्धति का आविष्कार करने वाले श्री सेमुअल हेनिमन का जन्म १७५५ में जर्मनी में हुआ था। इनका ध्यान इस बात की ओर गया कि स्वास्थ्य की दशा में संखिया खाने से आदमी को दस्त, कय (उलटी) और प्यास आदि हैजे की-सी शिकायत होने लगती है; फिर संखिये का उचित उपयोग करने से ये लक्षण दूर हो जाते हैं। इसी तरह कुनेन स्वस्थ शरीर में ज्वर पैदा करती है, और कुनेन ही ज्वर की औषधि है। इस तरह 'समः समं शमयति' सिद्धांत का अनुभव करके श्री हेनिमन ने होमियोपेथी चिकित्सा-पद्धति की नींव रखी। बहुत से अच्छे-अच्छे वैद्य इनके शिष्य हो गये तो कितने ही अनुदार चिकित्सक और औषधि बेचने वाले इनकी सफलता देखकर इन से ईर्षा करने लगे। उन्होंने इनका घोर विरोध किया। अन्त में सन् १८२१ मे ये निर्वासित किये गये और इन्होंने अपने जीवन के शेष २२ वर्ष फ्रांस में बिताये। सन् १८५१ में इनके देश बन्धुओं ने लिपज़िग में इनकी पीतल की मूर्ति स्थापित करके अपने अनुचित व्यवहार का प्राय-श्चित्त किया। इन बातों का वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि संसार में मनुष्य जाति के सेवक और हितैषियों से प्रायः दुर्व्यवहार होता

है, सर्वसाधारण उनके काम का महत्व नही जान पाते। जो हो, होमियोपैथी की विशेषता यह है कि इसमें रोग के इतिहास और लक्षणों का खूब अध्ययन किया जाता है और औषधि बहुत थोड़ी मात्रा में दी जाती है। सस्ती होने के कारण ग़रीबों की झोपड़ियों तक इसकी पहुँच है।

चीरफाड़—

अब किंचित् जर्राही या चीरफाड़ के बारे में भी विचार कर लिया जाय। कुछ रोग ऐसे भी हैं, जिनमें शरीर का एक भाग काट देना या किसी हड्डी को सीधा करना अथवा किसी नस का खून बहा देना आवश्यक हो जाता है। ऐसी दशा में रोगी को डाक्टर के चाकू द्वारा सारी पीड़ा सहनी होती थी। इस कष्ट को न सह सकने के कारण बहुधा रोगी शल्यक्रिया या आपरेशन करते ही मर जाते थे। डेवी नामक एक युवक ने देखा कि कुछ गैस ऐसी हैं जिनसे मनुष्य बेहोश हो जाता है, और बेहोशी में उसे कोई कष्ट नहीं होता। पर इस विषय मे अगले ४६ वर्ष तक किसी ने कोई ध्यान नही दिया। सन् १८४६ मे जेम्स यंग सिम्पसन ने इस प्रकार की बेहोशी लाने वाली कई गैसों के सम्बन्ध में अनुसधान किए। उसे इन प्रयोगों में पर्याप्त सफलता भी मिली। बहुत शीघ्र ही डाक्टर इन गैसों (एनसयेटिक्स) का प्रयोग करने लगे और आपरेशन या शल्य-चिकित्सा में रोगियों को कोई तकलीफ न रही।

इसके बाद भी एक समस्या बनी रही। यद्यपि रोगी को डाक्टरों के हाथ से तो कोई वेदना नहीं होती थी पर शल्य-क्रिया के उपरान्त घाव प्रायः सड़ जाया करते थे। इससे अधिकांश

रोगियों को काल का ग्रास होना पड़ता था। घावों को भरने में बहुत समय लग जाता था, इसमें भी रोगी की मृत्यु की आशंका रहती थी, क्योंकि किसी भी समय खून में जहर फैल सकता था। बहुत समय तक लोग इसका कोई भी इलाज न निकाल सके। यदि कोई उपाय था भी, तो वह घाव के सड़े हिस्से को पूरी तरह जला देना था। इसमें तो मृत्यु और भी भयानक दर्द और पीड़ा के साथ होती थी।

घाव का इलाज—

लार्ड लिस्टर नामक डाक्टर ने रोगियों के इस भयानक दृश्य को देखा और उनके हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह इस घाव के सड़ने के कारण की खोज में संलग्न हो गये। उन्होंने ऐसे सड़े हुए मांस का परीक्षण किया। उन्हें मालूम हुआ कि घाव हवा में आक्सीजन के असर से नहीं सड़ते वरन् विशेष प्रकार के कृमि जो सदैव हवा में मिले रहते हैं घाव में हवा लगने से प्रवेश कर जाते हैं और घाव को सड़ा देते हैं। घाव को हवा के संसर्ग में न आने देना असम्भव था। बहुत खोज के बाद लार्ड लिस्टर ने पता लगाया कि सूक्ष्म कृमि कारबोलिक एसिड में नहीं रह पाते। उसने घावों का ड्रेसिंग कारबोलिक एसिड लगा कर ही किया और घाव आश्चर्यजनक रूप से भर गया। उसने ऐसे प्रयोग घावों पर किए और अपनी खोज को परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया।

रेडियम-चिकित्सा का महत्व भी कम नहीं है। इसने भी अनेक असाध्य रोगों को अच्छा करने में काफी काम किया है। इसकी खोज मैडम क्यूरी नामक महिला ने की थी। इस धातु की

खोज ने रसायन और भौतिक जगत् में क्रान्ति उपस्थित कर दी। इससे कैंसर (नासूर) तथा अन्य असाध्य रोगों की चिकित्सा की जाती है।

एक्स-रे—

इसी प्रकार 'एक्स-रे' नामक किरण का आविष्कार है। इस किरण में विशेषता यह कि यह मांस को भेदकर निकल जाती है, परन्तु हड्डी या किसी धातु या कठोर वस्तु के पार नहीं जा पाती, इससे शरीर के अन्दर घुसी हुई वस्तुओं की स्थिति या टूटी हड्डियों की स्थिति भली भाँति मालूम हो जाती है। युद्ध में घायलों के शरीर से गोली के टुकड़ों की ठीक ठीक स्थिति मालूम करने और टूटी हड्डियों को जोड़ने आदि के कार्य में इस किरण का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार शरीर के अन्दर का फोटो इससे भली भांति लिया जा सकता है। इससे तपेदिक या क्षय तथा अन्य रोगों की भी अवस्थाओं का निश्चित रूप से पता लग जाता है। इस किरण का आविष्कार विलहेल्म रोगटन वैज्ञानिक ने किया है।

कुछ और नये आविष्कार—गत वर्षों में—

आपरेशन या चीर फाड़ में योरुप और पीछे अमरीका ने खूब उन्नति की, तरह तरह के औजार बनाये, प्रयोग और परीक्षण कीं। इस तरह उन्होंने आश्चर्यकारी सफलता पा ली है; यहाँ तक कि अगर एक आदमी के शरीर में खून कम हो तो उसमें दूसरे का खून पहुँचाया जाने लगा। यह आवश्यक नही है कि वह खून बिल्कुल ताजा ही हो; खास तरीके से, खून को सुखा कर चूर्ण के रूप में रखा जाने लगा, वह एक जगह से दूसरी जगह भेजा जा सकता है, और आवश्यकता होने पर चाहे जब काम में लाया

जा सकता है रोगी के हृदय को शरीर से अलग करके, उसे निरोग करके फिर शरीर में बैठाने के प्रयोग भी सफल हो चुके हैं। इस तरह आपरेशन से कई प्रकार के जख्मों और रोगी आदमियों का इलाज करने की कोशिश हो रही है। चिकित्सा सम्बन्धी नये आविष्कारों का एक उदाहरण टूटे हुए अगो को जोड़ने के लिए टेटालम धातु की खोज है। यह धातु काले रंग की और सीसे से तीन गुना भारी होती है। वह इतनी दृढ़ होती है कि इससे मनुष्य के बाल से भी पतला तार खीचा जा सकता है। इससे झिल्लीदार काग़ज़ जैसी पतली और कोमल चद्दरे भी बन सकती हैं। तार और चद्दरों से डाक्टर घायल सैनिकों के अंगों को जोड़ते हैं। चद्दर से नयी नाक बनायी गयी है। एक डाक्टर ने इससे पेट की दीवारें भी बनाई हैं। पतले तारों से टूटी हुई नसों के सिरे जोड़े जाते हैं। टेटालम धातु का एक खास गुण यह है कि यह मनुष्य के शरीर के ततुओं और रस से पूरी तरह मिलती है। यही कारण है कि इससे ततु ऐसी अच्छी तरह जुड़ जाते है कि कुदरती तौर से जुड़े हुए मालूम होते हैं। यह धातु अभी आस्ट्रेलिया की खानों से निकाली जाती है। धीरे-धीरे दूसरी जगहो मे भी इसका पता लगाया जायगा। इन थोड़े से उदाहरणों से यह प्रत्यक्ष है कि चिकित्सा के विषय में नित्य नये आविष्कार होते जा रहे हैं। विविध रोगों की अधिकाधिक उपयोगी दवाएँ समय समय पर निकलती रहती हैं। और मनुष्य रोगों पर एक प्रकार से विजय प्राप्त करता जा रहा है।

इकत्तीसवाँ अध्याय

यातायात और सम्वाद-वाहन

यातायात और आवागमन के साधनों की उन्नति—

आरम्भ में मनुष्य का कार्यक्षेत्र बहुत परिमित था। वह स्वयं ही बहुत दूर तक जा आ नहीं सकता था; साथ में सामान या अन्य वस्तुओं का लाना ले जाना तो और भी कठिन था। इन सब कारणों से उसकी आवश्यकताएँ बहुत कम थी, और उनका संसार बहुत सीमित था। मनुष्य जाति के कई वर्गों ने अपने आने जाने के साधनों को बढ़ाया। पशुओं पर यात्रा करने, नावों द्वारा सामान ले जाने, ले आने से दूर दूर के स्थानों के लोगों में सम्पर्क बढ़ता गया। इससे आवागमन के साधनों के स्थायित्व की नींव पड़ी। एक स्थान से दूसरे स्थान में मनुष्य धर्म प्रचार, व्यापार, राज्य-स्थापना आदि के लिए आने जाने लगे। कुछ सदियों क्या, हज़ारों वर्ष तक इसी प्रकार कार्य चलता रहा, परन्तु धीरे-धीरे इन से अच्छे साधनों की आवश्यकता मालूम होने लगी। अठारहवीं सदी में, भाप का एंजन बन जाने से रेल के आविष्कार का रास्ता साफ हुआ। धीरे-धीरे रेल का उपयोग होने लगा। उसके साथ ही साथ स्टीमर को, अर्थात् भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों से

काम लिया जाने लगा। फिर मोटर, हवाई जहाज़, मोटर-साईकल आदि वस्तुओं का आविष्कार हुआ। इन सब साधनों के सम्बन्ध में पिछले अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है। आवागमन और यातायात में इन साधनों से पर्याप्त वृद्धि हुई और होती जा रही है। वायुयान भी अब आवागमन ही नहीं, वरन् यातायात के साधनों में समझा जाने लगा है। मूल्यवान् और शीघ्र ख़राब होने वाली वस्तुएँ वायुयानों द्वारा ही भेजी जाती हैं।

समाचार भेजने के साधन—

यातायात और आवागमन के साधनों के साथ ही साथ समाचार भेजने के साधनों में भी महत्वपूर्ण आविष्कार हुए। इन में से महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं—टेलीग्राम, टेलीफोन, केबलग्राम, बेतार-के-तार के यन्त्र, टेलीप्रिंटर। इन सब साधनों का वर्णन आगे एक-एक करके किया जाता है। इन साधनों के आविष्कार से यातायात तथा समाचार आदि नियमित और सुचारू रूप से चलने लगे।

टेलीग्राम—

बिजली के आविष्कार के साथ ही साथ बिजली से समाचार भेजने के प्रयत्न किए जाने लगे। बिजली के आविष्कार से ४० वर्ष पूर्व, मारीसन ने तार द्वारा समाचार भेजने का एक समाचार, पत्रों में भिजवाया था। उस समय इस बात को विशेष महत्व नहीं दिया गया। बिजली के आविष्कार हो जाने से उन्नत देशों में बिजली द्वारा समाचार भेजने के प्रयत्न किए जाने लगे। इगलैंड निवासी सर फ्रांसिस रोनाल्ड ने अपनी फुलवाड़ी में घुमाव देकर आठ मील लम्बा एक तार लगाया। इस प्रयोग में

उन्हें सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने अपने आविष्कार को सरकार के सन्मुख रखा, परन्तु इस ओर कोई ध्यान नही दिया गया। सर रोनाल्ड के आविष्कार में जो कमी रह गई थी, उसकी पूर्ति सर चार्ल्स ह्विटस्टन और सर विलियम कुक नामक दो वैज्ञानिकों ने मिलकर दूर कर दी। सर रोनाल्ड के जीवन-काल मे ही इंगलैंड में तार द्वारा समाचार भेजे जाने लगे थे। जिस समय इंगलैंड में कुक और ह्विटस्टन तार लगा रहे थे, उसी समय फिनले ब्रिज, मार्स ने अमरीका में तार द्वारा समाचार भेजने में सफलता पाई। मार्स ने भी बिजली द्वारा तार भेजना प्रारम्भ किया। मार्स के जीवन-काल में ही अमरीका में तार का प्रचार हो गया।

टेलीफ़ोन —

विद्युत् की लहरों का खूब प्रचार हो चुका था। तार द्वारा समाचार भेजे जाने लगे थे। तार से केवल संकेत प्राप्त होते थे और इन सकेतों से अक्षरों का ज्ञान होता था। अक्षरों के मिलाने से शब्द बनते थे। इस प्रकार, तार से शब्द नहीं भेजे जा सकते थे। अब वैज्ञानिकों को यह चिंता हुई कि किस प्रकार भाषा ज्यों की त्यों दूर दूर के स्थानों को भेजी जाय। यदि इस कार्य में सफलता हो जाय तो एक आदमी दूसरे आदमी से, हजारों मील की दूरी पर बातें करने में समर्थ हो जाय। इस कार्य को ग्राहाम बैल ने पूरा किया। उन्होंने विद्युत् द्वारा शब्दों के कम्प और लहरों को उसी रूप में दूसरे स्थान में भेजा। इससे जो ध्वनि इस स्थान पर पैदा होती थी, वही शब्द-कम्पों के रूप में दूसरे स्थान पर पहुँच जाते थे। इस प्रकार उसने कुछ दूर शब्द भेजने में सफलता प्राप्त की। इस यन्त्र में सुधार होते गये और टेलीफ़ोन द्वारा सैकड़ों मील पर समाचार भेजे जाने लगे।

बेतार-का-तार (रेडियो)—

टेलीफोन और टेलीग्राम से, तार द्वारा ही समाचार भेजे जाते थे। लेकिन दूर दूर देशों में लट्ठे गाड़कर तार द्वारा समाचार भेजना सम्भव नहीं था। मारकोनी नामक वैज्ञानिक ने इस बात का अनुसंधान किया कि शब्द-कम्प को विद्युत् लहरों मे परिणत किया जा सकता है और ये लहरे ईथर द्वारा विना तार लगाये भी सारे संसार मे फैल जाती है। यदि इन लहरो को उपयुक्त यन्त्र द्वारा ग्रहण किया जा सके तो फिर शब्द-कम्प और ध्वनि पैदा हो सकती है। इसी आधार पर मारकोनी अपने अनुसन्धान मे लग गया। सन् १६०३ मे वह अपने प्रयोग मे सफल हो सका। इस यन्त्र द्वारा प्रेजीडेन्ट रूजवैल्ट ने सर्वप्रथम समाचार सम्राट एडवर्ड को भेजा। आज तो ससार भर मे इसका प्रचार हो गया है। रेडियो द्वारा सारे ससार मे समाचार जा सकते है।

रेडियो की ही भॉति टेलीविजन का आविष्कार हुआ है। इसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर चित्र या फोटो भी भेजे जा सकते है। इस प्रकार समाचार भेजना आज के युग में अत्यन्त सुगम और सुलभ हो गया है।

बत्तीसवाँ अध्याय

वैज्ञानिक प्रगति और ग़रीबी

समुद्र में भी मीन प्यासी; ऐसा क्यों—

मनुष्य ने इतनी वैज्ञानिक प्रगति कर ली है कि बहुत सी वस्तुएँ जो पहले महीनों में बना करती थीं अब कुछ घण्टों में तैयार हो सकती हैं। मशीनों द्वारा नयी-नयी उपयोगी वस्तु प्रति घण्टा हज़ारों की संख्या में बनाई जा सकती हैं। संसार के सारे मनुष्य यदि आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करें तो वर्ष में केवल कुछ सप्ताह कार्य करने से ही ऐश्वर्य का जीवन बिता सकते हैं, और अपनी भावी सन्तान को संघर्ष और कठिनाइयों से बचा सकते हैं। परन्तु मनुष्य जाति का दुर्भाग्य है कि इतने साधनों के होते हुए भी प्रतिशत थोड़े से व्यक्तियों को छोड़, शेष सब ऐश्वर्य और आराम तो क्या, अपनी साधारण खाने-पीने और पहिनने की आवश्यकताओं को भी पूर्ण करने में सर्वथा असमर्थ हैं। समुद्र में भी मीन प्यासी का दृश्य है। कैसी गंभीर विषमता है। एक ओर तो पदार्थों की कमी से लोग भूखे और नंगे रहते हैं और दूसरी ओर भोजन और वस्त्र उत्पन्न नहीं करने दिये जाते। और यदि उत्पन्न भी होता है तो नष्ट कर दिया जाता है। केवल इस डर से कि फ़सल

अच्छी होने से भाव गिर जायँगे। अमरीका में गेहूँ की फसलें जला दी गईं और इङ्गलैंड में सन्तरे टेम्स नदी में बहा दिए गये। यह एक कठोर सत्य है कि बङ्गाल में काफी अनाज गोदामों में होने पर भी लाखों को भूखा मर जाना पड़ा। पहले ऐसा होता था कि अनाज नहीं होने पर लोग भूखों मरते थे; पर अब अनाज होते हुए भी पैसा न होने पर लोग भूखों मरते हैं। ऐसा क्यों ?

समाज-व्यवस्था दूषित है—

विज्ञान की विशेष प्रगति इधर पिछली अठारहवीं शताब्दी से हुई है। तभी से भुखमरी, बेकारी और ग़रीबी अत्यधिक बढ़ गई है। इस सब के साथ ही साथ संसार-व्यापी युद्ध भी आरम्भ हो गये हैं। आदमी सोचते हैं कि विज्ञान की उन्नति ही इस सर्वनाश का कारण है; अच्छा था कि विज्ञान की प्रगति न होती। वास्तविक सत्य यह है कि मनुष्य के मस्तिष्क ने विज्ञान को तो ऊँचे शिखिर पर पहुँचा दिया परन्तु अपनी समाज-व्यवस्था की ओर ध्यान न दिया। विज्ञान की प्रगति के साथ सारा संसार समय और दूरी को तो मिटा सका परन्तु समाज-व्यवस्था पुरानी ही बनी रही। सारा संसार जुदा-जुदा राष्ट्रों में बंटा रहा जिनमें से हर एक ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने की ओर ही ध्यान दिया।

पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और महायुद्ध—

दूसरी ओर कल-कारखानों के कारण राष्ट्रों की पूँजी थोड़े से पूँजीपतियों के हाथ में आ गई। उन्हें अधिक से अधिक लाभ कमाने की चिन्ता हुई। लाभ कमाने के लिए आवश्यक

था कि अधिक से अधिक माल बेचा जाय। माल पहले अपने देश में बेचा गया परन्तु आम लोगों के ग़रीब होने और उनकी आवश्यकताएँ कम होने के कारण उनकी क्रय-शक्ति सीमित रही। पूँजीपतियों ने राज्य का सहारा पाकर दूसरे देशों से व्यापार करना आरम्भ किया। इससे द्विगुण लाभ होने लगा। उन्हें वहाँ से कच्चा माल मिलता और वे वहाँ अपना तैयार माल खपाते। इस तरह पूँजीवादी राष्ट्रों को दूसरे देशों पर आर्थिक प्रभुत्व स्थापित करने की आवश्यकता मालूम हुई। आर्थिक प्रभुत्व तभी स्थायी रह सकता था जब कि राजनैतिक प्रभुत्व रहे। राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित करने से साम्राज्यवाद की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक देश, जिसने विज्ञान मे थोड़ी भी उन्नति की थी, अपने माल के लिए बाजार चाहता था और ससार में ऐसे बाज़ार सीमित थे। फल यह हुआ कि पूँजीवादी राष्ट्रों में सघर्ष उत्पन्न हो गया। इस सघर्ष ने युद्धों को जन्म दिया। युद्ध में भी विज्ञान का उपयोग होने से भयङ्कर नाश का सामान उपस्थित हुआ। वहुत थोड़े से वेतन पर पूँजीपतियों ने ग़रीब जनता को युद्ध-सामग्री वनाने पर नियत किया। इस प्रकार खाने की वस्तुओं का स्थान वन्दूक और तोपों ने लिया। भयङ्कर अस्त्रों का निर्माण हुआ। ग़रीवों की ग़रीवी वढ़ी और अमीरों की अमीरी। इस प्रकार हम देखते है कि विज्ञान ने औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया और इस औद्योगिक क्रांति ने पूँजीवाद को, पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद को, और साम्राज्यवाद ने महायुद्धों को। महायुद्धों से कुछ समय तक तो वेकारी अवश्य मिट जाती है, ग़रीवी, भुखमरी घट जाती है परन्तु युद्ध के अन्त होने पर ग़रीवी, वेकारी, भुख-मरी और अन्य समस्याएँ इतनी भयङ्कर रूप से फैलती हैं कि

हैं या जल-वायु अच्छी नहीं है, इन देशों का सुधार करने के लिए सभी देशों के वैज्ञानिकों की मदद लेनी चाहिए। निदान, सारा संसार एक बड़े परिवार की तरह प्रेम और सहानुभूति से रहे। इस तरह की समाज-व्यवस्था होने पर, जनता की वह दरिद्रता या ग़रीबी दूर हो जायगी जो आधुनिक प्रगति के साथ अनिवार्य रूप से पाई जाती है।

तेतीसवाँ अध्याय

राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता का विकास—

वर्तमान काल राष्ट्रीयता का युग माना जाता है। राष्ट्रीयता एक भावना है जो किसी देश के लोगों को एक ही राजनैतिक सङ्गठन के अन्दर रहने के लिए प्रेरित करती है और उन्हें सिखाती है कि वे वर्ण, जाति अथवा धर्म के आधार पर आपस में कोई भेद-भाव न रखे। राष्ट्रीयता की यह भावना हमें सब से पहले योरुपीय इतिहास के मध्ययुग के उत्तरकाल में दिखाई पड़ती है। इस भावना को जन्म देने का वास्तविक श्रेय फ्रॉस को प्राप्त है। उनमें यह विदेशियों के आक्रमण से अपने देश की रक्षा करने के लिए अंकुरित हुई। पन्द्रहवीं शताब्दी में जोन-ऑफ-आर्क के जीवन में यह भावना बहुत बलवती होती दिखाई पड़ती है। किन्तु राष्ट्रीयता का सम्यक् रूप से विकास फ्रॉस की राज्य-क्रान्ति के बाद प्रारम्भ हुआ। उन्नीसवी और बीसवीं शताब्दी के अन्दर इस भावना का व्यापक रूप से प्रचार हुआ और प्रायः प्रत्येक देश में राष्ट्रीयता एक सामाजिक शक्ति बन गई।

राष्ट्रीयता; एक महान् शक्ति—

राष्ट्रीयता नागरिक में देश के प्रति भक्ति उत्पन्न करती है। वह देश की सेवा और रक्षा के लिए सब कुछ बलिदान कर देने और मर मिटने तक की शिक्षा देती है। राष्ट्रीयता की भावना ही देश मे एकता स्थापित करने मे सहायक होती है। उसमें एक देश के सब निवासियों में मेलजोल तथा भ्रातृभाव बढ़ता है। राष्ट्रीयता का लक्ष्य होता है—देश में एकता स्थापित कर उसकी सब तरह से उन्नति करना। जिसमें यह भावना होती है, वह कभी देश के हित के विरुद्ध काम नहीं करता बल्कि सदा देश का और देशवासियों का भला ही सोचता है। इस भावना में एक महान् शक्ति निहित है। उसी का परिणाम है कि जर्मनी और इटली, जो उन्नीसवी शताब्दी में छोटे छोटे राज्यों में विभक्त थे, एकता के सूत्र में बंधकर इतने शक्तिशाली राष्ट्र बन गए। राष्ट्रीयता की भावना ने ही अमरीका वालों को ब्रिटेन से स्वतन्त्र होने के लिये प्रेरित किया। इसी ने रूढ़ियों से जकड़े हुये निर्बल टर्की को आधुनिक ढङ्ग का एक उन्नतिशील तथा शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया। राष्ट्रीयता ही भारतवासियों को एकता के सूत्र मे बांधकर उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद से स्वाधीन बनने के लिये प्रेरित कर रही है।

राष्ट्रीयता का स्वाधीनता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वतत्र देशों को वह वाहर के आक्रमण के समय सर्वस्व बलिदान करके भी स्वाधीनता की रक्षा के लिये उत्साहित करती है। परतन्त्र देशों को वह विदेशियों की दासता से स्वाधीन होने के लिये मत्र और शक्ति प्रदान करती है। वर्तमान काल मे प्रायः सभी स्वाधीनता-आन्दोलनों में राष्ट्रीयता की भावना काम करती रही है। वह

सोती हुई जातियों में एक नयी चेतना, नयी स्फूर्ति उत्पन्न कर देती हैं। उनमें एक नया जीवन फूंक देती है।

राष्ट्रीयता; नागरिक का धर्म—

आजकल राष्ट्रीयता प्रत्येक नागरिक का धर्म माना जाता है। देश मे रहने वाले हर एक आदमी से यह आशा की जाती है कि वह सब काम राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही करेगा। राष्ट्र की सेवा करना और उसके प्रति अटल भक्ति रखना ही वह अपना परम धर्म समझेगा। प्रत्येक नागरिक को यह शिक्षा दी जाती है कि वह सम्पूर्ण देश को एक बड़ा परिवार समझ कर सबके साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा कि कोई अपने कुटुम्बियों के साथ करता है। प्रत्येक नागरिक से यह भी आशा की जाती है कि वह जाति या धर्म के आधार पर अपने किसी देश-भाई से द्वेष नहीं करेगा। राष्ट्रीयता साम्प्रदायिकता की भावना का घोर विरोध करती है और उसे मिटाने का यत्न करती है। राष्ट्रीयता लोगों मे एकता, उदारता, सेवा, सहनशीलता, देश-प्रेम तथा त्याग व बलिदान आदि गुणों की भावना उत्पन्न करती है। वह विचार-संकीर्णता साम्प्रदायिकता और स्वार्थपरता से लोगों को अलग रखने का प्रयत्न करती है। वह कला, साहित्य, संस्कृत की सुरक्षा और वृद्धि में भी सहायक होती है।

राष्ट्रीयता की उत्पत्ति और विकास उन पुरुषों में अधिक तेजी से होता है, जो शताब्दियों से किसी एक देश में बसे हैं, जिनकी भाषा, पहनावा, रीति-रिवाज, धर्म तथा इतिहास आदि एक ही हैं। अगर किसी देश मे ऐसी जातियां बसी हों, जिनका धर्म, इतिहास आदि एक ही है तो वहाँ राष्ट्रीयता का विकास शीघ्र होता

है। अगर किसी देश में ऐसी जातियाँ बसी हों जिनके धर्म, इतिहास, वेषभूषा, रस्म, सब अलग अलग हैं तो वहाँ राष्ट्रीयता के विकास की गति मन्द होती है।

राष्ट्रीयता का दुरुपयोग—

इन सब बातों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीयता बहुत अच्छी चीज है और उससे अनेक देशों का बड़ा कल्याण हुआ है। किन्तु राष्ट्रीयता अभिशाप भी सिद्ध हो चुकी है। दूसरे शब्दों मे उसका दुरुपयोग भी किया गया है। जो साम्राज्यवाद ससार के पिछड़े हुए देशों को सब प्रकार से शोपित और पीडित कर रहा है, और जिसके विनाश के लिए पराधीन जातियां आज आवाज उठा रही हैं, उसकी स्थापना में भी राष्ट्रीयता की शक्ति काम करती रही है। योरुप के अनेक देशों ने इसी के बल से दूर-दूर के भूभागों में अपना साम्राज्य स्थापित किया था। राष्ट्रीयता उस हद तक बहुत अच्छी चीज है जहाँ तक वह किसी देश की जनता मे एकता, भ्रातृभाव और देशभक्ति पैदा कर देश की आंतरिक उन्नति और समृद्धि में सहायक होती है; किन्तु जब वह किसी देश के लोगो को दूसरे देश पर आक्रमण या अधिकार करने के लिए प्रोत्साहित करती है तो निश्चय ही वह दुनियाँ के लिए एक बुरी चीज़ बन जाती है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद जब माल का उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर होने लगा तो योरुप के देशों ने हथियार के बल से उपनिवेश स्थापित किये, और पिछड़े हुए देशों पर प्रभुता क़ायम की। यह नितान्त अन्याय और अत्याचार था किन्तु गोरे लोग इसी मे अपना गौरव समझते थे कि जिस तरह भी सम्भव हो,

अपना राज्य बढ़ाया जाय। उनकी राष्ट्रीयता राष्ट्र को उन्नत और शक्तिशाली बनाने के लिए, दूसरी जातियों की स्वाधीनता अपहरण करने और उनका रक्त चूसने में भी संकोच नहीं करती थी। राष्ट्रीयता का यह विकृत रूप इस बीसवीं सदी मे भी दिखाई दे रहा है। जर्मनों ने बड़ी उन्नति की और अपने देश को खूब शक्तिशाली बनाया। उनमें राष्ट्रीयता का चरम विकास हुआ, सम्पूर्ण राष्ट्र एक हो गया। जर्मन लोग अपने देश के लिए मर मिटने को तैयार हो गये। साम्राज्य-विस्तार की लालसा से उन्हों ने दो बार विश्वव्यापी महायुद्ध को जन्म दिया। उनकी अनुचित राष्ट्रीयता भीषण नरसंहार और विध्वंस-लीला का कारण बना। इससे हम समझ सकते हैं कि राष्ट्रीयता का विकृत रूप कितना भयावना है।

एक और उदाहरण लीजिये। हम कह चुके हैं कि राष्ट्रीयता स्वाधीनता की जननी है। वह प्रत्येक देश को स्वाधीन होने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों की राष्ट्रीयता पराधीन देशों की स्वाधीनता में घोर बाधक हो रही है। भारत, हिन्द चीन और जावा आदि के निवासी राष्ट्रीयता की शक्ति से सङ्गठित होकर अपनी स्वाधीनता के लिये आन्दोलन कर रहे हैं किन्तु ब्रिटेन, फ्राँस तथा हालैन्ड के लोग बलपूर्वक उन्हें अपने आधीन बनाए रखने और उनके आन्दोलन को कुचलने में तत्पर हैं। दूसरे शब्दों में ब्रिटेन व फ्राँस की राष्ट्रीयता भारत व हिन्द चीन की राष्ट्रीयता को दबाना चाहती है। गोरे साम्राज्यवादी राष्ट्रों की यह राष्ट्रीयता अधिकांश ससार के लिये अभिशाप सिद्ध हो रही है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीयता की भी एक मर्यादा या

सीमा होती है। जो राष्ट्रीयता अपनी मर्यादा का उल्लंघन कर बैठती है वह निन्दनीय और हानिकारक बन जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना—

युद्ध और रक्तपात को रोकने तथा संसार में शान्ति स्थापित करने के लिए यह आवश्यक है कि विश्वबन्धुता की भावना फैलायी जाय। लोगों को समझाया जाय कि संसार के सभी मनुष्य एक ही परमात्मा की सन्तान हैं, और इस तरह वे सब आपस मे भाई-भाई हैं। सारा संसार एक विशाल परिवार है और सब लोगों को आपस में उसी तरह का बर्ताव करना चाहिए, जैसा कि एक कुटुम्ब के सदस्य आपस में करते हैं। यह तभी सम्भव है जब राष्ट्रीयता के साथ अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास हो, और संसार के सभी राष्ट्र एक संगठन में आ जायँ। एक ऐसा विश्वसघ स्थापित किया जाय, जो छोटे-बड़े सभी देशों को अनुशासन और नियन्त्रण मे रख सके और उनके बीच पैदा होने वाले आपसी झगड़ों का शान्तिपूर्ण उपाय से निपटारा कर सके।

विविध कार्य—

इस दिशा मे कुछ थोड़ा बहुत प्रयत्न हुआ है। १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दियों में बारबार होने वाले योरुपीय युद्धों की विनाश-लीला देखकर लोगों मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों का नियन्त्रण किया जाय। इस काल की अनेक सधियों मे यह सिद्धान्त स्थिर करने का प्रयत्न किया गया कि भविष्य मे राष्ट्र एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करें। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय कानून का बनना आरम्भ हुआ। ज्यों ज्यों नये नये हथियारो के आविष्कार से युद्ध की भीषणता बढ़ती गई,

त्यों त्यों इस बात की आवश्यकता भी बढ़ती गई कि राष्ट्रों के आपसी झगड़ों का शान्तिपूर्ण रूप से निवारण करने की व्यवस्था की जाय और युद्ध को रोका जाय। १६ वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थता या पञ्चायत द्वारा ऐसे झगड़े तय किये जाने लगे। इस शताब्दी में सौ से अधिक महत्वपूर्ण झगड़े इस रीति से तय किए गये। १८६६ ई० में बड़े राष्ट्रों का एक सम्मेलन हेग में हुआ और उस में एक समझौता करके अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय करने के लिए एक स्थायी अदालत स्थापित कर दी गई। १६०७ में दूसरा हेग-सम्मेलन हुआ, जिसमें मुख्यतः युद्ध के नियमों पर विचार किया गया। दो वर्ष बाद ब्रिटेन ने योरुपीय राष्ट्रों का एक सम्मेलन लन्दन में निमन्त्रित किया, जिसमें अमरीका और जापान भी बुलाए गये। इस सम्मेलन ने भी एक घोषणा द्वारा कुछ नियम निर्धारित किए। यह सब होते हुए भी १६१४ में युद्ध छिड़ गया और हेग आदि के सब प्रयत्न विफल हुए।

प्रथम योरुपीय युद्ध के बाद संयुक्तराज्य अमरीका के राष्ट्रपति विलसन के दिमाग़ में एक राष्ट्र-सङ्घ स्थापित करने का विचार पैदा हुआ। राष्ट्र-सङ्घ स्थापित हुआ और उस में ४० से अधिक देश सम्मिलित हुए। राष्ट्र-सङ्घ का, तथा दूसरे योरुपीय महायुद्ध के बाद किये जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का, विचार अगले अध्याय में किया जायगा।

विशेष वक्तव्य—

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तो बढ़ रहा है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीयता की सच्ची भावना अभी बहुत कम लोगों मे पाई जाती है। सभी राज्यों को चाहिए कि वे अपने नागरिकों

में राष्ट्रीयता की भावना के साथ अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना भी जाग्रत करें। इस के लिए दृष्टिकोण को और अधिक उदार तथा विस्तृत बनाना होगा। किसी देश को दूसरे देश पर शासन करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। सभी राज्यों को एक दूसरे के साथ बराबरी का बर्ताव करना चाहिए। उन सभी भेद-भावों को जो मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई खड़ी करते हैं, दूर करना होगा। ऐसा होने पर ही, आदर्श अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास हो सकता है और उसी के आधार पर विश्व-सघ का ठीक से सङ्गठन हो सकेगा। अन्तर्राष्ट्रीयता के सम्यक् विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि सभी पराधीन देशों को स्वतन्त्र कर दिया जाय।

———————

चौंतीसवाँ अध्याय

शान्ति के प्रयत्न

आधुनिक युद्धों की भीषणता—

मानव जाति की उन्नति तथा सभ्यता के पूर्ण विकास के लिए यह बहुत आवश्यक है कि युद्ध की प्रथा उठा दी जाय और संसार में स्थायी रूप से शान्ति स्थापित की जाय। यों तो युद्ध इतिहास के प्रारंभिक काल से होते रहे हैं—यही नही, प्रागैतिहासिक काल में भी मनुष्य आपस में लड़ा करते थे। ज्यों ज्यों राज्यों का विस्तार बढ़ा है युद्ध की भीषणता भी बढ़ती रही है। आधुनिक काल में यातायात के तीव्रगामी साधनों तथा व्यापार-व्यवसाय के सम्बन्धों के फलस्वरूप सम्पूर्ण संसार एक सूत्र में बध सा गया है। विज्ञान की उन्नति के साथ हथियारों तथा लड़ाई के दूसरे साधनों में भी बड़ी उन्नति हो गई है। इसलिये आज का युद्ध बहुत अधिक भीषण रूप धारण कर लेता है। १६३६ ई० में जब जर्मनी ने पोलैन्ड पर आक्रमण किया तो युद्ध इन्ही दो देशो तक सीमित नही रहा, बल्कि बढ़ते-बढ़ते सारी दुनियाँ मे फैल गया। यह बात भी उल्लेखनीय है कि युद्ध में केवल सेना पर ही आक्रमण नही होता, बल्कि निशस्त्र और निर्दोष नागरिक जनता पर भी

निस्संकोच रूप से प्रहार किया जाता है। विमानों की बम-वर्षा से बड़े-बड़े नगर और कल-कारख़ाने ध्वस्त हो जाते है और बहु-सख्यक स्त्री बच्चे भी हताहत होते हैं। अणुबमों की आविष्कार ने युद्ध की भीषणता को और भी बढ़ा दिया है।

संधियां और समझौते—

इसलिये यह और भी आवश्यक हो गया है कि युद्ध को रोकने और शान्ति को स्थापित करने का प्रयत्न किया जाय। शान्ति का प्रयत्न भी उसी समय से जारी है जब से पृथ्वी पर मनुष्य मनुष्य और राज्य-राज्य के बीच युद्ध छिड़ना आरम्भ हुआ। प्राचीन यूनान तथा रोम के छोटे-छोटे राज्यों ने आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिए संघ स्थापित किये थे। शान्ति स्थापित रखने के लिए उन्होंने एक-दूसरे से सधियाँ की थी। किन्तु वर्तमान काल मे युद्ध की बढ़ती हुई भीषणता ने शान्ति के प्रयत्न को भी बल प्रदान किया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा सहयोग बढ़ने लगा। सन्धि और समझौते भी अधिक होने लगे, जिनका उद्देश्य भविष्य में युद्ध रोकना होता था। अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास हुआ ताकि अगर युद्ध छिड़ भी जाय तो उसमें कुछ नियमो का पालन किया जाय। १६ वीं शताब्दी में पंचायत या मध्यस्थता द्वारा दो देशों के झगड़े को तय करने का तरीका अपनाया जाने लगा। १६वीं शताब्दी में इस तरीके से सौ से भी अधिक महत्वपूर्ण झगड़े तय किए गए।

पंचायती न्यायालय—

कुछ और आगे बढ़ कर अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों के निपटारे के लिये स्थायी पञ्चायती न्यायालय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। सन्धियों में इस आशय की धारा जोड़ी जाने लगी कि

अगर आगे चल कर कोई झगड़ा खड़ा हुआ तो इस तरह की पञ्चायती अदालत से उसका फैसला करा लिया जायगा। झगड़े को तय करने के लिए युद्ध नही किया जायगा। १८६६ ई० में हालैंड के नगर हेग में बड़े राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ और उन्होंने आपस में समझौता करके एक योजना कार्यान्वित की। उस समझौते के अनुसार एक स्थायी पंचायती अदालत हेग में कायम की गई। हेग में एक दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन १६०७ई० में हुआ। इसमें मुख्यतः युद्ध के नियमों पर विचार किया गया। १६०६ ई० में मुख्य-मुख्य योरुपीय देशों तथा जापान वा अमरीका का एक सम्मेलन ब्रिटेन ने लन्दन मे किया। बड़े-बड़े राष्ट्र आपस में सन्धियां करके प्रतिज्ञाबद्ध हुए कि जहाँ तक सम्भव होगा वे अपने झगड़े का पञ्चायती फैसला करायेंगे। कहा जाता है कि प्रथम शान्ति-सम्मेलन के बाद १० साल के अन्दर पञ्चायती फैसला करने के लिए १३३ सन्धियाँ की गई।

राष्ट्र-संघ—

फिर भी शान्ति अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रह सकी। १६१४ ई० में प्रथम योरुपीय युद्ध आरम्भ हो गया, जो चार वर्षों तक चलता रहा। युद्ध के मध्य यह कहा जाता था कि इस लड़ाई की समाप्ति के साथ युद्ध का अन्तिम रूप से निष्करण हो जायगा। युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद राष्ट्र-संघ स्थापित किया गया। उसका उद्देश्य था युद्ध को रोकना, अस्त्र-शस्त्र को कम करना, और आपस में एक दूसरे की स्वाधीनता की गारंटी करना। राष्ट्र-संघ के लिए जो विधान-पत्र बनाया गया था, उसमें यह लिखा था कि शान्ति की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्र को जहाँ तक हो सके, घटा दे।

राष्ट्र-सङ्घ में एक असेम्बली थी जिसमें उन सभी देशों के प्रतिनिधि बैठते थे,जो संघ के सदस्य होते थे। एक कौन्सिल थी, जिसमें मुख्य-मुख्य मित्रराष्ट्रों के प्रतिनिधि रहते थे। कौन्सिल के चार सदस्य असेम्बली द्वारा नियुक्त किये जाते थे। स्विटजरलैंड की राजधानी जेनेवा में, राष्ट्र-संघ का एक विशाल कार्यालय स्थापित किया गया, जिसका उच्चाधिकारी सेक्रेटरी-जनरल कहा जाता था। राष्ट्र-संघ के तत्वावधान में एक अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय भी स्थापित किया गया। इस न्यायालय का काम, सामने आने वाले अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का फैसला करना था। कौन्सिल अथवा असेम्बली द्वारा उपस्थित किये गए किसी प्रश्न या झगड़े पर सलाह देना भी न्यायालय का एक काम था।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को सुरक्षित रखने के लिये ऐसा व्यवस्थित सङ्गठन पहले कभी नहीं हुआ था। यह शान्ति की दशा मे सबसे बड़ा प्रयत्न कहा जा सकता है। राष्ट्र-संघ के विधान-पत्र में लिखा गया था कि राष्ट्र-सघ के सदस्य संघ के सभी सदस्यों (राष्ट्रों) की राजनैतिक स्वाधीनता तथा भौतिक एकता का सम्मान करेंगे, और अगर किसी पर बाहर से आक्रमण किया गया अथवा ऐसे आक्रमण का खतरा पैदा हुआ तो कौन्सिल राय देगी कि अपनी जिम्मेदारी को पूरा करन के लिए क्या करे। विधान में यह भी लिखा था कि कोई भी युद्ध या युद्ध का खतरा सम्पूर्ण राष्ट्र-सघ की चिंता का विषय होगा और राष्ट्रों की शांति सुरक्षित रखने के निमित्त राष्ट्र-सङ्घ ऐसी कोई भी कार्यवाही करेगा, जिसे वह उचित तथा प्रभावपूर्ण समझेगा। राष्ट्र-सङ्घ के सदस्यों के लिए यह कर्त्तव्य स्थिर किया गया था कि जब कभी उनके बीच कोई झगड़ा खड़ा हो तो वे सारे मामले को अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायत के सामने उपस्थित करे। अगर कोई ऐसा झगड़ा हो जिससे लड़ाई

छिड़ जाने की सम्भावना हो और जो पञ्चायती फैसले के लिए न पेश किया गया हो तो उसे वे कौन्सिल के सामने उपस्थित करेंगे। कौन्सिल झगड़े को तय कर देने की कोशिश करेगी। यदि झगड़ा तय नहीं हो सकेगा तो कौन्सिल अपनी सिफारिशों सहित रिपोर्ट प्रकाशित करेगी। जो राष्ट्र इस रिपोर्ट की सिफारिशों को मान लेगा उसके विरुद्ध राष्ट्र-सङ्घ का कोई सदस्य युद्ध में नही शामिल होगा। इसके विपरीत, अगर कोई सदस्य इन बातों की अवहेलना करते हुए युद्ध छेड़ देगा तो वह युद्ध राष्ट्र-सङ्घ के सभी सदस्यों के विरुद्ध मान लिया जायगा। राष्ट्र-सङ्घ के सभी सदस्य उस राष्ट्र से अपना आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ लेंगे। कौन्सिल सलाह देगी कि ऐसी अवस्था में राष्ट्र-सङ्घ को कौन सदस्य कितनी सैनिक सहायता इस बात के लिए देगा कि राष्ट्र-सङ्घ के विधान की रक्षा की जाय।

विफलता का कारण—

राष्ट्र-सङ्घ को प्रारम्भ में तो कुछ सफलता प्राप्त हुई, और उसने छोटे-मोटे कई झगड़ों का निपटारा किया। लेकिन बाद में यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्र-सङ्घ अपने पुनीत उद्देश्य को पूरा करने मे असमर्थ है। वास्तव में देखा जाय तो उसका सङ्गठन न्याय, समानता और सब देशों की स्वाधीनता के आधार पर नही हुआ था। अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों को रोकना और ससार मे स्थायी रूप से शान्ति स्थापित करना एक ऊँचा आदर्श है। परन्तु उस आदर्श तक संसार तब तक नहीं पहुंच सकता जब तक कि सब राष्ट्र शुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से काम करने तथा अपने वर्तमान राजनैतिक दृष्टिकोण को बदलने के लिए तैयार न हो जायँ। राष्ट्र-सङ्घ में कतिपय बड़े-बड़े राष्ट्रों का ही बोलबाला था। वे

अपने स्वार्थ और साम्राज्य को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। वे ऊपर से आदर्श की बात करते थे लेकिन अन्दर-अन्दर अपने ही स्वार्थ की बात सोचते थे। बड़े राष्ट्रों का पारस्परिक अविश्वास और वैमनस्य दूर नहीं हुआ था। निरस्त्रीकरण-सम्मेलनों की असफलता इसका ज्वलन्त प्रमाण है। युद्ध को रोकने के लिए यह बात तो सिद्धांत रूप से स्वीकार कर ली गई थी कि प्रत्येक राष्ट्र अपने शस्त्रास्त्र खूब घटा दे, लेकिन जब व्यावहारिक रूप से उस पर अमल करने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो पारस्परिक अविश्वास के कारण कोई भी राष्ट्र निरस्त्रीकरण करने को तैयार नहीं हुआ। निरस्त्रीकरण-सम्मेलनों में बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि लम्बे-लम्बे प्रस्ताव रखते थे, लेकिन छिपे-छिपे वे अपने शस्त्रास्त्रों को बढ़ाते जाते थे।

राष्ट्र-सङ्घ की विफलता का एक कारण यह भी था कि किसी शक्तिशाली राष्ट्र के विरुद्ध प्रभावपूर्ण कार्रवाई करने का साहस उसमें नहीं था। अपने स्वार्थों के कारण बड़े राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध कार्रवाई करने से डरते थे। १९३१ ई० में जापान ने मंचूरिया के मकदन नगर पर कब्जा कर लिया। चीन के प्रतिनिधि चिल्लाते रह गये; लेकिन बडे मित्र-राष्ट्र, जिनका बोलबाला था, जापान के आक्रमण को रोकने के लिए कोई सतोष-जनक कार्रवाई नहीं कर सके। यह देखकर इटली का भी साहस बढ़ा। उसने अबीसीनिया पर चढ़ाई कर दी। राष्ट्र-सघ देखता ही रहगया। इटली को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया। राष्ट्र-सघ की इस कमजोरी और ढीलेपन से जर्मनी मे हिटलर और उसकी नाज़ी पार्टी की शक्ति असाधारण गति से बढ़ गई। जो जर्मनी १९१९ की संधि में निरस्त्र बना दिया गया था, वह केवल बीस वर्ष के

अन्दर इतना शक्तिशाली बन गया कि उसने १९३९ में पोलैंड पर आक्रमण कर फिर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति भंग कर दी और दूसरे विश्वव्यापी भीषण युद्ध का सूत्रपात कर दिया।

दूसरा विश्वयुद्ध और उसके बाद—

दूसरा विश्वयुद्ध (१९३९-१९४५) पहले महासमर से अधिक भीषण और संहारक सिद्ध हुआ। धन-जन की अपार क्षति तो हुई ही, प्रायः ससार भर की जनता को भोजन वस्त्र आदि का असाधारण कष्ट झेलना पड़ा। युद्ध के अन्तिम भाग में अणुबम जैसा विध्वंसक अस्त्र सामने आया और मालूम हुआ कि बड़े बड़े नगरों को पूर्णतः ध्वस्त करने के लिए ऐसा केवल एक बम पर्याप्त था। ऐसी अवस्था में युद्ध के निराकरण करने और शान्ति की स्थापना करने की ओर ससार के राजनीतिज्ञों का फिर ध्यान जाना स्वाभाविक था। युद्ध समाप्त होने के पूर्व ही विश्वशान्ति और सुरक्षा के प्रश्न पर विचार प्रारम्भ हो गया था। सान फ्रान्सिस्को-सम्मेलन में मित्रराष्ट्रों के हजारों प्रतिनिधि एकत्र हुए और प्रायः महीने भर तक वाद विवाद करने के उपरान्त शान्ति व सुरक्षा की एक योजना बनायी गयी। मित्र-राष्ट्रों की सरकारों ने उस योजना को अपनी अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है, और नया अन्तर्राष्ट्रीय सगठन—नया राष्ट्रसघ—जिसका नाम सयुक्त राष्ट्र रक्खा गया है, अस्तित्व में आ गया है। युद्ध को रोकने के लिए 'सयुक्त राष्ट्र' सैनिक शक्ति का भी उपयोग करेगा।

विश्व-संघ और विश्वबन्धुत्व—

खेद है कि ससार के बड़े बड़े राष्ट्रों की स्वार्थपरता और प्रभुता विस्तार की लिप्सा अभी दूर नहीं हुई है। अपनी अपनी

शक्ति बढ़ाने की होड़ अब भी बनी हुई है। लोकसत्ता और स्वतंत्रता के नाम पर लड़ाई जीत जाने के बाद भी मित्रराष्ट्र पराधीन देशों को स्वाधीन बनाने और शान्ति के प्रयत्न में समानता के आधार पर सब देशों का सहयोग प्राप्त करने के लिए तैयार नही हैं यह स्पष्ट हो गया है कि जब तक ससार से साम्राज्यवाद का पूर्ण रूप से अत नहीं हो जायगा तब तक स्थायी रूप से शान्ति कायम नहीं ह सकेगी। सच पूछा जाय तो अभी तक अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्वबधुता की भावना का अच्छी तरह से विकास नही हो पाया है। बडे बड़े देश जो अपने को मानव जाति का नेता और सरक्षक बतलाते हैं और जो अपनी सभ्यता पर बड़ा गर्व करते हैं, वे भी अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर विश्वकल्याण की बात सोचने के लिए तैयार नही हैं। ऐसी अवस्था में यह आशा तो नहीं होती कि 'संयुक्त राष्ट्र' विश्वशान्ति के ध्येय को पूरा करने मे सफल होगा, लेकिन यह बात अवश्य है कि इस तरह के प्रयत्नों और प्रयोगों के उपरान्त कभी न कभी एक दिन ऐसा अवश्य आयगा, जब सच्चे अर्थों में और न्याय के आधार पर, ऐसा विश्वसंघ स्थापित होगा, जो युद्ध को रोकने और शान्ति को बनाये रखने मे सफल होगा और जिसकी देख-रेख में मानव जाति एक बडे कुटुम्ब की तरह सुख और शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करेगी। ऐसा दिन कब आयगा, यह निश्चित रूप से कहना अभी बडा कठिन है। तथापि इस में सन्देह नहीं कि जितने अधिक प्रभावशाली सज्जन, जितने अधिक शुद्ध हृदय से इसके लिए प्रयत्न करेंगे, उतना ही वह दिन जल्दी आयेगा।

———

पैंतीसवाँ अध्याय

महायुद्ध के बाद का संसार

प्रथम महायुद्ध के बाद—

योरुप के प्रथम महायुद्ध के बाद शान्ति-सुरक्षा के लिए जो व्यवस्था की गई थी वह संतोषजनक नहीं थी। युद्ध को रोकने के लिए राष्ट्र-संघ अवश्य स्थापित किया गया था, किन्तु लड़ाई के कारण दूर करने के लिए समुचित ध्यान नहीं दिया गया था। द्वेष और वैमनस्य योरुपीय राजनीतिज्ञों के हृदय से दूर नहीं हुआ था। जर्मनी के प्रदेश आसपास के राज्यों मे मिला दिये गए थे। यद्यपि यह बात सर्वविदित थी कि जर्मनों की राष्ट्रीय भावना कितनी प्रबल है। इस प्रकार जान-बूझकर अल्पसंख्यकों की समस्या उत्पन्न की गई। जर्मनी की उन्नति पर नाना प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए गए थे, जिससे उसमे असंतोष और प्रतिशोध की भावना बनी रही। जर्मनी को निरस्त्र तो कर दिया गया था किन्तु विजयी राष्ट्र अपने निरस्त्रीकरण के लिए समझौता नहीं कर सके। उनके बीच पारस्परिक अविश्वास और वैमनस्य बना रहा। राष्ट्रसंघ में संसार

के अधिकांश देश सम्मिलित अवश्य कर लिये गए थे किन्तु उनका सहयोग समानता के आधार पर प्राप्त नहीं किया गया था। बड़े-बड़े विजयी राष्ट्रों का ही उसमें बोल-बाला था, छोटे राष्ट्रों को आवाज़ उठाने का अवसर कम मिलता था। जर्मनी के उपनिवेश छीन लिये गए थे, किन्तु उन्हें स्वतन्त्र नहीं किया गया। वे मित्र-राष्ट्रों की अधीनता मे रख दिये गए थे। युद्ध के बीच घोषित किया जाता था कि लड़ाई लोकसत्ता और स्वाधीनता के लिए लड़ी जा रही है किन्तु युद्ध समाप्त होने के बाद इस वचन को पूरा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। ब्रिटेन और फ्रांस आदि ने अपने-अपने अधीन देशो को स्वतन्त्र नही किया। जो साम्राज्यवाद अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध को प्रोत्साहित करता है, उसे मित्रराष्ट्रों ने सुरक्षित रखा। इन परिस्थितियों मे आकर संसार की शान्ति अधिक दिनों तक सुरक्षित नही रह सकी, तो आश्चर्य ही क्या ?

नई व्यवस्था; योरुप की स्थिति—

इस दूसरे महायुद्ध के मध्य मित्रराष्ट्रों ने यह घोषणा की थी कि फासिस्टवाद का अन्त करने के उपरान्त संसार मे एक नई व्यवस्था स्थापित की जायगी, जिसके अन्दर सभी देशों के लोग सुख शान्ति के साथ जीवन व्यतीत कर सकेंगे। यह व्यवस्था सभी जगह स्वतंत्रता और लोकसत्ता की भावना के अनुकूल होगी। युद्ध समाप्त हो गया है किन्तु उस नई व्यवस्था का कहीं उपयोग नहीं हो रहा है। युद्ध के बाद रामराज्य स्थापित करने का जो स्वप्न दिखाया गया था वह पूरा नहीं किया जा रहा है।

इंगलैंड ने ग्रीस, इटली तथा वेल्जियम की राजनीति मे किस तरह हस्तक्षेप किया यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। रूस भी योरुप के अधिक-से-अधिक भाग पर अपनी प्रभुता का विस्तार करने का प्रयत्न करता रहा है। योरुपीय देशों की समस्याओं को हल करने में विजयी राष्ट्र जिस नीति से काम ले रहे हैं, उसे देखने से यह आशा नहीं होती कि समस्याएँ संतोषजनक रूप से हल हो सकेंगी, और सम्पूर्ण योरुप मे कोई ऐसी व्यवस्था स्थापित हो सकेगी, जिसमे सब देश अपनी-अपनी सीमा के अन्दर पूर्णरूप से सतुष्ट और स्वतन्त्र होकर रह सके।

एशिया और अफ्रीका में शोचनीय परिस्थिति—

अफ्रीका और एशिया महाद्वीप के अनेक देश यह आशा लगाए हुए थे कि युद्ध के बाद सब स्वाधीन कर दिये जायँगे, कोई देश पराधीनता और गुलामी की अवस्था मे न रह जायगा। किन्तु जो कुछ हुआ और कुछ स्थानो मे अभी तक हो रहा है वह इस आशा के सर्वथा प्रतिकूल है। सीरिया और लेवनान पर अपनी खोई हुई प्रभुता फ्रांस फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करने लगा। इसके लिए उसने हथियारों का प्रयोग किया और ब्रिटेन ने शायद अपना प्रभाव-क्षेत्र स्थापित करने के लिए हस्तक्षेप किया। जापान के पराजित होते ही हिन्द चीन पर अपना अधिकार जमाने के लिए फ्रॉसीसी तथा जावा और सुमात्रा आदि द्वीपों पर डच लोग फिर टूट पड़े। फ्रॅांस और हालैण्ड में इतनी शक्ति नहीं थी कि हिन्दचीन और डच पूर्वी द्वीपसमूह की शत्रु से रक्षा कर सकते। किन्तु जब वे एशिया प्रदेश जापान की

अधीनता से मुक्त हुए तो योरुप के साम्राज्यवादी राष्ट्र उन पर अपनी प्रभुता फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। पूर्वी एशिया के इन देशों की जनता अपनी स्वाधीनता के लिए व्यग्र हो रही थी। किन्तु इङ्गलैंड, फ्राँस, हालैंड और कदाचित् अमरीका के लोग भी उन्हें स्वाधीन जीवन बिताने देने के लिए तैयार नहीं थे। आज भी हालैंड की सेनाएँ हिन्देशिया को अपने शिकंजे मे दबाये रखने के लिए व्यस्त है।

विश्व-शान्ति के लिए आवश्यक है कि विश्व के सभी पराधीन देशों को स्वाधीन कर दिया जाय। जब तक बड़े-बड़े राष्ट्र जो मानव जाति का नेतृत्व और सब के कल्याण की व्यवस्था करने का दम भरते है स्वयं दूसरे देशों में अपनी प्रभुता और शोपण-नीति का त्याग करने के लिए तैयार नहीं होते, तब तक कैसे आशा की जा सकती है कि संसार मे अधिक दिनों तक शान्ति स्थापित रह सकेगी। स्थायी शान्ति तो तभी स्थापित हो सकती है, जब संसार के सभी देश स्वतन्त्र कर दिये जायँ और एक देश का दूसरे देश पर शासन होने की प्रथा उठा दी जाय। जब राज्य और प्रभुता के विस्तार का प्रलोभन नहीं रह जायगा तो निश्चय ही अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष भी नहीं पैदा होगे।

विश्व-शान्ति के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि पिछड़े हुए देशों को भी औद्योगिक तथा व्यापारिक उन्नति करने का अवसर दिया जाय। सारे संसार मे, और विशेष कर पिछड़े हुए देशों मे, जनता की आर्थिक अवस्था सुधारने और रहन-सहन के मान को ऊंचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। मज़दूर, किसान, कुली सबके लिए जीवन का न्यूनतम मान निश्चित कर

देना चाहिए। संसार भर में सब लोगों को पेट भर भोजन, आवश्यक कपड़ा तथा रहने के लिए मकान मिलना चाहिए। यह सब काम विधिवत् तभी हो सकता है, जब विश्व के बड़े-बड़े राष्ट्र अपने स्वार्थ को भूलकर परोपकार की भावना से काम करने के लिए तैयार हो जायँ।

छत्तीसवाँ अध्याय

भारतीय स्वराज्य—आन्दोलन

कांग्रेस का जन्म—

भारतवर्ष के सन् १८५७ के स्वाधीनता-युद्ध का वर्णन पहले किया जा चुका है। उसमें अधिकतर राजाओं और सामंतों आदि ने भाग लिया था। उनके असफल रहने के बाद, यहां क्रान्ति करने की बात पीछे पड़ गई, और क्षेत्र विधानवाद (या कानूनी कारवाई) के समर्थन करने वालों के हाथ रह गया।

इधर शांति स्थापित होने पर अंगरेजी पढ़े हुए आदमी पश्चिमी साहित्य और विज्ञान आदि का अधिकाधिक अध्ययन करने लगे। धीरे-धीरे उनमें स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता की भावना उदय हुई। बंगाल और बम्बई में सार्वजनिक जीवन का विकास प्रारम्भ हो गया था। राजा राममोहन राय तथा केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की, और महर्षि दयानन्द ने आर्य-समाज स्थापित किया। उन्होंने धार्मिक आन्दोलनों द्वारा समाज-सुधार की ओर ध्यान दिया और प्राचीन सभ्यता-संस्कृति को पुनरुज्जीवित कर जनता में जातीयता का विचार पैदा किया। एक ही शासन तथा राजनैतिक संगठन में रहने के कारण भारतीयों में एकता का भाव भी पैदा हो रहा था। इन्हीं परिस्थितियों में कुछ

राजनैतिक सुधार की माँग करने के लिए एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना करने का विचार किया। उदार विचार के कुछ अंग्रेज भी उनका साथ देने के लिए तैयार हो गये। इस प्रकार १८८५ ई० मे हमारी राष्ट्रीय महासभा अर्थात् कांग्रेस का जन्म हुआ। इसकी स्थापना में एक अंग्रेज सिविलियन मिस्टर ह्यूम ने इस ख्याल से भाग लिया था कि भारतीय अपनी शिकायतें सरकार तक पहुँचा सकें। कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बंबई में हुआ, जिसमें दादाभाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि सम्मिलित हुए थे।

कांग्रेस के प्रथम बीस वर्ष—

सन् १६०५ ई० तक कांग्रेस के नेता सरकार से विनम्र शब्दों मे छोटे मोटे सुधारों की माँग करते रहे। उदाहरण के लिए उन की एक माँग यह थी कि लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाई जाय और उनमें अधिक से अधिक ग़ैर-सरकारी भारतीय रखे जायँ। दूसरी माँग यह थी कि आई० सी० एस० की परीक्षा भारत मे भी ली जाय। सेना का व्यय घटाने तथा उसमें उच्च पद भारतीयों को भी देने की माँग की जाती थी। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में अधिकारी वर्ग के लोग भी उपस्थित होते थे। सरकार की ओर से एक दो साल स्वागत-समिति को सहायता और सुविधायें भी दी गई थीं। कांग्रेस की ओर से अन्याय, अत्याचार और दमन के विरुद्ध आवाजें उठाई जाती थीं और देश के शासन में भारतीयों को समुचित भाग देने की माँग की जाती थी। कांग्रेस की शक्ति और उसके वार्षिक अधिवेशनों में प्रतिनिधियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

बंग-भंग और उसके बाद—

देश के सार्वजनिक जीवन मे नई शक्ति आ गई थी, और लोगों मे स्वाधीनता की लहर पैदा हो गई थी। भारत की राजनीति में पहली बार उग्र स्वर तब सुनाई पड़ा, जब बाबू बिपिन-चन्द्र पाल ने वैध आन्दोलन का विरोध किया। महाराजा नागौर ने, जो १६०१ में कलकत्ता कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष थे, कहा कि वैध आन्दोलन राजनैतिक भिखारीपन है। वायसराय लार्ड कर्जन (१८६६-१६०५) की नीति ने भारतीय लोकमत को बहुत उत्तेजित कर दिया। बंगालियों में बढ़ती हुई जागृति और राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने के लिए उसने सन् १६०५ में बंगाल को दो भागों मे बांट दिया। इससे बंगालियों मेब हुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। बड़ा प्रबल आन्दोलन आरम्भ हुआ और वह धीरे-धीरे सारे देश में फैल गया। विदेशी माल का बहिष्कार तथा स्वदेशी का प्रचार बड़े जोरों से प्रारम्भ हुआ। यह आन्दोलन स्वदेशी आन्दोलन के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसी समय बन्देमातरम् का तुमुल नाद पहले-पहल सुनाई पड़ा। १६०५ ई० में ही एशिया के छोटे से देश जापान ने रूस जैसे योरुप के विशाल देश को पराजित कर दिया। भारतीयों पर उसका भी बड़ा प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे कि हम भी प्रयत्न करें तो विदेशी प्रभुत्व से मुक्त हो सकते हैं। इससे स्वभावतः आन्दोलन को और शक्ति मिली। कांग्रेस का स्वर भी बदलने लगा। १६०६ में जब कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ तो दादा-भाई नौरोजी ने अध्यक्ष-पद से घोषित किया कि 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।' १६०७ के सूरत के अधिवेशन मे नेताओं

में झगड़ा हो गया और कांग्रेस के दो दल हो गये—नरम दल और गरम दल। नरम दल वैध आन्दोलन के पक्ष में था और उसका लक्ष्य था औपनिवेशिक स्वराज्य। सर फ़िरोजशाह मेहता, श्री गोखले और महामना मालवीय इस दल के नेता थे। गरम दल पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता था। इसके नेता थे—लोकमान्य तिलक और पंजाब केसरी लाला लाजपतराय। दोनों दलों में मत-भेद १९१६ तक बना रहा।

१९०८-९ में सरकार के कठोर दमन के कारण गुप्त समितियों ने जोर पकड़ा और आतंकवाद प्रारम्भ हुआ। आतंकवादी अंग्रेज अफसरों की हत्या करने लगे। गुप्तरूप से बम बनाये जाते और अंग्रेजों पर फेंके जाते थे। १९०९ ई० में भारत को मार्लेमिन्टो शासन-सुधार मिला और दो वर्ष बाद बंग-भंग की आज्ञा रद्द कर दी गई। इससे आन्दोलन कुछ शान्त पड़ा ही था कि १९१४ ई० मे योरुपीय युद्ध आरम्भ हो गया। १९११ में आयर्लैण्ड का होमरूल आन्दोलन सफल हुआ था। उसकी देखादेखी श्रीमती एनी बिसेन्ट ने भारत मे होमरूल लीग स्थापित की। १९१६ के कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में समझौता हो गया। लोकमान्य तिलक तथा मि० जिन्ना दोनों ने होमरूल आन्दोलन में भाग लिया। होमरूल आन्दोलन भी जोरों से चला। १९१९ ई० में मोन्टेग्यूचेम्सफोर्ड शासन-सुधार देश के सामने आये। इस सुधार-योजना ने कांग्रेस के दोनों दलों के मत-भेद को और बढ़ा दिया और उसका परिणाम यह हुआ कि नरम दल सदा के लिए कांग्रेस से अलग हो गया और कांग्रेस गरमदल वालों के हाथ में चली गई।

असहयोग आन्दोलन—

योरुपीय महायुद्ध में भारत ने ब्रिटेन की धन-जन से बड़ी सहायता की थी और उसे आशा थी कि इंगलैंड भारतीयों की राजनैतिक आकांक्षाओं की पूर्ति करेगा, परन्तु सरकार ने १६१८ ई० में 'रौलेट एक्ट' पास किया, जो नागरिकों की स्वाधीनता के लिए बड़ा घातक था। सारे देश में उसके विरुद्ध बड़ी नाराज़ फैली। इसके विरुद्ध स्थान-स्थान पर सभायें की गईं। इसी समय के लगभग मित्रराष्ट्रों ने टर्की का राज्य-भंग कर दिया। इससे मुसलमानों में बड़ा असंतोष फैला, क्योंकि टर्की का शासक मुस्लिम संसार का ख़लीफा था। भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत आंदोलन आरम्भ किया।

गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से सत्याग्रह का सफल प्रयोग कर भारत लौट आये थे। रौलेट एक्ट पास होने पर वे देश के राजनैतिक रंगमंच पर आ गये। उन्होंने रौलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ कर दिया। पंजाब में आन्दोलन ने बड़ा ज़ोर पकड़ा। वहाँ अधिकारियों ने फ़ौजी कानून जारी कर दिया फिर भी अमृतसर के जलियानवाला बाग में एक बिराट सभा एकत्र हुई। जनरल डायर ने भीड़ पर गोलियाँ छोड़ीं। इस निर्दय कांड से देश में जैसे आग लग गई। सन् १६२० में कांग्रेस ने महात्मा गांधी के नेतृत्व मे असहयोग की नीति अपनाई। असहयोग-आन्दोलन जोरों से चला। खिलाफत आन्दोलन भी उसका अंग बन गया। हिन्दू-मुसलमान दोनों मिलकर आन्दोलन करने लगे। गाँधी जी ने विद्यार्थियों से स्कूल कालेज छोड़ देने, वकीलों से वकालत छोड़ देने तथा सरकारी कर्मचारियों से नौकरी छोड़ देने का आग्रह किया। बहुत-से विद्या-

थियों, वकीलो तथा सरकारी कर्मचारियों ने उनकी सलाह के अनुसार काम किया। कौंसिलों और अदालतों का बहिष्कार, शराब की दुकानों पर धरना (पिकेटिंग) तथा पंचायतों और राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना—ये कांग्रेस कार्यक्रम की मुख्य बातें थीं। कानून की अवज्ञा होने लगी। कहीं कहीं पर दंगे भी हो गए। मालाबार में मोपला लोगों ने उपद्रव कर दिया, जिसमें हिन्दुओं को धन-जन दोनों की बड़ी हानि उठानी पड़ी।

असहयोग-आन्दोलन का दमन करने के लिए कठोर नीति अपनाई गई। हजारों की संख्या में आन्दोलनकारी जेल मे भर दिये गए। उनमे श्री सी० आर० दास० तथा मोतीलाल जैसे प्रतिष्ठित नेता भी थे। दमन के उत्तर मे कांग्रेस का आन्दोलन और उग्र हो गया। कांग्रेस ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी और गाँधी जी डिक्टेटर बनाये गये। गोरखपुर जिले के चौराचौरी स्थान मे जनता अहिंसक न रह सकी। इससे दुःखी होकर गांधी जी ने असहयोग-आन्दोलन स्थगित कर दिया। अब कांग्रेस के कुछ नेताओं में यह विचार पैदा हुआ कि कांग्रेस वालों को कौंसिल मे जा कर अन्दर से असहयोग करना चाहिए और सरकारी कामों में बाधा डालनी चाहिए। इस प्रश्न पर कांग्रेसी नेताओ में मतभेद हो गया। पं० मोतीलाल नेहरू, श्री सी० आर० दास तथा लाला लाजपतराय कौंसिल-प्रवेश के पक्ष मे थे। सरदार वल्लभभाई पटेल तथा श्री राजगोपालाचार्य आदि असहयोग की नीति बदलने के लिए तैयार नहीं थे। पहले दल की जीत हुई और उसने स्वराज्य-पार्टी स्थापित कर चुनाव में भाग लिया। कांग्रेसी लोग कौंसिल में पहुँच गए। १९२३ के बाद १९२६ में भी वे खड़े हुए और कौंसिलों में गये।

१९३० का सत्याग्रह—

असहयोग-आन्दोलन ने यह प्रकट कर दिया था कि भारत-वासी १९१९ के सुधारों से कितने असंतुष्ट हैं। कौंसिल में जाकर भी कांग्रेस वालों ने यह दिखा दिया कि शासन की जिम्मेदारी भारतीयों के हाथ मे नहीं दी गई है। अतः ब्रिटिश सरकार ने जाँच करने के लिए साईमन कमीशन नियुक्त कर भारत भेजा किन्तु उसके सातों सदस्य अंग्रेज थे। इससे भारतीयों को बड़ा असंतोष हुआ। सारे देश में कमीशन का बहिष्कार किया गया। इसमें लिबरल दल वालों ने भी कांग्रेस का साथ दिया। जलूसोंपर पुलिस के लाठी-चार्ज हुए और लाला लाजपतराय-जैसे देश-भक्त नेता उसमें घायल हुए। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट न तो औपनिवेशिक स्वराज्य देने की सिफारिश की और न केन्द्र में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन देने की व्यवस्था की। कांग्रेस की ओर से पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में विधान तैयार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गई। नेहरू-कमेटी की रिपोर्ट एक सर्वदल सम्मेलन द्वारा स्वीकार कर ली गई। किन्तु मुसलमानों के बड़े वर्ग ने उसका विरोध किया। ३१ अक्टूबर १९३९ को लार्ड इर्विन ने लंदन में गोलमेज परिषद् होने की घोषणा की। कांग्रेस ने उसमें सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और उसमें भारत की पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य रखा गया। १९३० के अप्रैल में महात्मा गाँधी ने अपनी प्रसिद्ध डण्डी यात्रा की, और नमक-कानून तोड़ कर सत्याग्रह-आंदोलन का सूत्रपात किया। देखते-देखते संपूर्ण देश में आन्दोलन बड़े वेग से फैल गया। सभी जगह नमक बनाकर

क़ानून तोड़ने का प्रयत्न किया। सरकार का दमन-चक्र भी ज़ोरों से चला। अनेक आर्डिनेन्स जारी किये गये। कई हज़ार कांग्रेसी जेलों में भर दिये गए। उधर नवम्बर १९३० में पहली गोलमेज़ परिषद् हुई। मार्च १९३१ में गांधी-इर्विन समझौता हुआ। सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया और सब राजनैतिक बंदी छोड़ दिये गए।

१९३२ में फिर सत्याग्रह—

महात्मा गाँधी कांग्रेस के एक-मात्र प्रतिनिधि होकर दूसरी गोलमेज़ परिषद् में सम्मिलित हुए। पहली परिषद् की तरह इसमें भी साम्प्रदायिक समस्या की काफी चर्चा रही, लेकिन उसके बारे में कोई समझौता नहीं हो सका। महात्मा गाँधी अभी योरुप में ही थे कि टैक्सों की वृद्धि के विरोध में यहाँ लगान-बंदी आन्दोलन आरम्भ हो गया। सरकार ने भी शीघ्रता के साथ आर्डिनेन्स पर आर्डिनेन्स जारी किये। गाँधी जी ने वायसराय से मिलकर झगड़ा तय करने की कोशिश की, किन्तु वायसराय लार्ड विलिंग्डन ने आर्डिनेन्सों के संबंध में कोई बातचीत करने से इन्कार कर दिया। गांधीजी, सरदार बल्लभभाई पटेल, पं० जवाहरलाल नेहरू सब गिरफ्तार कर लिये गए। इसलिए फिर सत्याग्रह शुरू किया गया। सारे देश में सरकार के प्रति प्रबल असंतोष था। कांग्रेस-आन्दोलन खूब लोकप्रिय हुआ। हज़ारों आदमी सत्याग्रह करके खुशी-खुशी जेल गये। पुलिस का दमन और अत्याचार भी कम नहीं हुआ। १९३२ में तीसरी गोलमेज़ परिषद् हुई, लेकिन कुछ फल नहीं निकला।

१९३५ का विधान—

शासन-सुधारों की जाँच कर नए सुधार देने के लिए सरकार

ने १६२७ में ही साइमन कमीशन नियुक्त किया था किन्तु शासन-सुधार योजना को बनाने और स्वीकृत करने में ८ वर्ष लग गए। १६३५ ई० में नया एक्ट बनाकर सुधार कर दिये गए। प्रान्तों को तो शासन की बहुत कुछ जिम्मेदारी दे दी गई, किन्तु केन्द्र में भारतीयों को उत्तरदायित्व नहीं मिला। अगस्त १६३२ में ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने जो साम्प्रदायिक निर्णय दिया, वह भी इस एक्ट का एक भाग बन गया। इसमें पृथक् निर्वाचन की प्रणाली पराकाष्ठा पर चहुँचा दी गई। देश की एकता और राष्ट्रीयता के विकास के लिए संयुक्त निर्वाचन की आवश्यकता थी, किन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारत के हित का कुछ ख्याल नही किया। महात्माजी को इतना दु:ख हुआ कि यरवदा जेल मे उन्होंने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया। 'पूना पैक्ट' के नाम से हरिजन नेताओं से समझौता करके ही उनका अमूल्य जीवन बचाया जा सका।

नए सुधारों के अनुसार १६३६ ई० मे प्रांतीय चुनाव हुए और अधिकांश प्रान्तो की लेजिस्लेटिव असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी का स्पष्ट बहुमत हो गया। आठ प्रान्तों मे कांग्रेस के मंत्रि-मंडल बने और कांग्रेसी सरकारों ने जनता के हितों को अग्रसर करने के लिए कई योजनाएँ कार्यान्वित कीं। किसानों की अवस्था सुधारने, साक्षरता का प्रसार करने तथा मादक पदार्थों का निषेध करने का प्रयत्न किया गया।

सन् १६३६ मे जब योरुप का दूसरा महायुद्ध छिड़ा और भारतीयो से कुछ राय लिये बिना ही भारत युद्ध मे सम्मिलित कर लिया गया तो कांग्रेस को बहुत बुरा लगा। उधर पार्लियामेन्ट में ऐसे कानून पास होने लगे जो प्रान्तीय स्वराज्य के अधिकारों को सीमित करते थे। अतः कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध

और शान्ति के उद्देश्य घोषित करने की माँग की, संतोषजनक उत्तर न मिलने पर सभी प्रान्तों के कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिये।

सन् १९४२ का आन्दोलन—

१९४२ ई० के मई मास मे बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ और उसमे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया गया और महात्माजी को एक नया आन्दोलन प्रारंभ करने के लिए पूरा अधिकार दिया गया। किन्तु अधिवेशन समाप्त होते ही, और आन्दोलन आरंभ होने से पहले ही, बंबई मे नेताओं की धर-पकड़ आरंभ हो गई। महात्मा जी, कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सब सदस्य तथा बहुत से कांग्रेस-जन गिरफ्तार कर लिये गए। इसकी प्रतिक्रिया बहुत खराब हुई। जनता क्षुब्ध हो गई; और नेताओं से वंचित होने के कारण लोगों ने मनमानी कार्रवाई की। रेल की पटरियों को उखाड़ने, कई स्थानों में रेलगाड़ियों और स्टेशनों को जलाने, अंग्रेजो को मारने, थानों व अदालतों पर कब्जा करने के प्रयत्न किये गए। कुछ स्थानों मे तो भीषण उपद्रव हुए और अंग्रेजी शासन कुछ समय के लिए अपंग करके अपना प्रबन्ध कायम कर दिया गया। किन्तु सरकार ने जो दमन किया, वह बहुत ही भीषण तथा अत्याचारपूर्ण था। अनेक स्थानों मे जन-समूह पर गोलियाँ चलाई गईं, कितने ही बच्चे, युवक और स्त्रियाँ मौत के घाट उतारी गईं; लोगों से शत्रु का सा व्यवहार किया गया और जी खोल कर बदला लिया। गाँव के गाँव जला दिये गये, जनता पर कई जगह सामूहिक जुर्माने किये गये, कितनों ही का माल असबाब नीलाम कर दिया गया।

नागरिक स्वतंत्रता छीन ली गई। समाचार-पत्रों पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगा दिये गए। कुछ समय बाद उपद्रव बन्द हो गये परन्तु जनता मे स्वाधीनता की जो भूख बढ़ चुकी थी, वह तो स्वाधीनता मिलने पर ही शान्त हो सकती थी।

आज़ाद-हिन्द-फ़ौज—

भारतवर्ष की स्वाधीनता का आन्दोलन समय-समय पर भारतवर्ष की सीमा से बाहर भी होता रहा है। स्थानाभाव से उस का वर्णन नही किया जा सकता। यहाँ दूसरे योरुपीय महायुद्ध के समय संगठित आज़ाद हिन्द फ़ौज के ही कार्य का परिचय दिया जाता है। फ़रवरी १६४२ मे सिंगापुर का विशाल सैनिक अड्डा जापान के अधिकार मे चला गया। सुदूरपूर्व मे ब्रिटिश शासन का अन्त होने के साथ मलाया, बरमा, स्याम, डच इंडोनेशिया तथा फ्रेंच इंडोचीन मे फैले। बीस लाख से अधिक हिन्दुस्तानी संकट मे पड़ गये। अतः सारे सुदूरपूर्व मे 'इंडिया इण्डिपैंडेंस लीग' या आज़ाद-हिन्द संघ के रूप में जान-माल की रक्षा का आन्दोलन चल पड़ा। संघ के प्रथम सभापति रास बिहारी बोस थे। बहुसंख्यक भारतीय युद्ध-बन्दी ढोरो की तरह जापानियों को सौप दिये गए थे। उनकी सहायता से आज़ादी के आन्दोलन के साथ आज़ाद हिन्द फ़ौज का भी संगठन किया गया। भारतीय नेता फूँक-फूँक कर क़दम रखते थे। वे जापानियो के हाथ की कठपुतली नही होना चाहते थे। इसका भारी खतरा था, इससे बचना था। जापानियो का व्यवहार संदिग्ध था, और एक समय तो मोहनसिंह के नेतृत्व मे, जिन्होंने प्रथम आज़ाद हिन्द फ़ौज के संगठन मे मुख्य भाग लिया था, भारतीयों ने फ़ौज तोड़ देना ही बुद्धिमत्तापूर्ण समझा।

सन् १९४२ में श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस रहस्यपूर्ण ढङ्ग से भारतीय अधिकारियों को चकमा देकर, गुप्त रूप से भारतवर्ष से काबुल और वहां से जर्मनी चले गए थे। जुलाई १९४३ में वे योरुपीय देशों के युद्ध का अवलोकन करने पर जापान होते हुए सिंगापुर आये। उन्हें सर्वसम्मति से आज़ाद हिन्द संघ का सारा भार सौंपा गया। उनके नेतृत्व में फौज की भर्ती और लड़ाई की तैयारी खूब ज़ोर से होने लगी। उन्होंने अपनी एक अपील में तीस लाख सिपाही और तीन करोड़ रुपये की माँग की। जगह जगह सैनिक शिक्षा-केन्द्र खुल गए और जनता के जन-धन की रक्षा के लिए पूरा प्रबन्ध किया गया।

महिलाएँ भी बहुत बड़ी संख्या में, संघ में सम्मिलित हुईं। उनका एक अलग रेजिमेंट संगठित किया गया। उसका नाम पड़ा 'झाँसी की रानी का रेजीमेंट'। रेडक्रास शाखा में भी बहुत सी स्त्रियां भर्ती हुईं। महिला रंगरूटों की भर्ती के लिए सिंगापुर में एक शिविर खोला गया। रंगून में भी एक ट्रेनिंग कैम्प खोला गया।

स्त्री पुरुषों के अतिरिक्त बाल-सेना का भी संगठन किया गया, जिसमें ९ से १४ साल तक के भारतीय बालकों ने सैनिक शिक्षा प्राप्त की। तीन सप्ताह के शिक्षण द्वारा बाल-सेना का प्रत्येक बालक अपनी अवस्था के योग्य सैनिक कला मे प्रवीण हो गया।

आज़ाद-हिन्द-सरकार की घोषणा—

२१ अक्टूबर सन् १९४३ को नेता जी श्री सुभाष बोस ने अस्थायी आज़ाद-हिन्द-सरकार की घोषणा की। घोषणा का

अन्तिम अंश इस प्रकार है:—"अस्थायी सरकार प्रत्येक हिन्दुस्तानी की निष्ठा (वफादारी) की हक़दार और दावेदार है। अस्थायी सरकार अपने सभी नागरिकों को धार्मिक स्वाधीनता की गारंटी देती है। वह अपने इस दृढ़ संकल्प की घोषणा करती है कि वह सारे राष्ट्र को सुखी तथा समृद्ध बनाने में प्रयत्नशील होगी, और विदेशी सरकार ने मक्कारी से भेद-भाव की जो दीवारे खड़ी की हैं, उन्हें चकनाचूर कर वह भारत-माता के सभी पुत्रों के साथ एक सा व्यवहार करेगी।

"ईश्वर के नाम पर, उन पूर्वजों के नाम पर जिन्होंने भारत को एक राष्ट्र बनाया, उन वीरात्माओं के नाम पर जिन्होंने हम को वीरता तथा त्याग का पाठ पढ़ाया, हम भारतीय जनता का, अपने झंडे के नीचे एकत्र होकर हिन्दुस्तान की आज़ादी का युद्ध छेड़ने के लिये आह्वान करते हैं। हम अंग्रेज़ों और हिन्दुस्तान मे उनके अन्य मित्रों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने तथा जब तक शत्रु हिन्दुस्तान की भूमि से निकाल बाहर न कर दिया जाय तथा हिन्दुस्तानी जनता पुनः आज़ाद न हो जाय, तब तक अंतिम विजय मे पूर्ण विश्वास के साथ वीरता तथा दृढ़ता के साथ युद्ध चलाते रहने के लिए भारतीय जनता का आह्वान करते हैं।"

आजाद-हिन्द-सरकार का संगठन—

नेता जी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने आज़ाद-हिन्द-सरकार का संगठन कर स्वयं राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, सेनाध्यक्ष और पर-राष्ट्र-मंत्री के पद का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। श्री रासबिहारी बोस सर्वोच्च परामर्शदाता थे। मंत्रिमंडल के सभी सदस्य मिलाकर १६ व्यक्ति थे जिनमें शाहनवाज़ चीफ-ऑफ-स्टाफ, कैप्टन सहगल

मिलिटरी सेक्रेटरी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सबने नये स्थापित किये हुए राज्य के प्रति भक्ति की शपथ ली। इस अस्थायी सरकार ने ३ अक्टूबर १९४३ को ब्रिटेन और अमरीका के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। जर्मनी, जापान आदि ६ स्वतन्त्र देशों ने इस सरकार का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया। आज़ाद हिन्द दूतावास में कोई भी जापानी या अन्य देशीय सुभाषबोस की अनुमति बिना प्रवेश नहीं कर सकता था। ७ जुलाई १९४४ को आज़ाद-हिन्द-सरकार और आज़ाद-हिन्द-संघ का प्रधान कार्यालय बरमा में आ गया। मलाया, सिंगापुर, अंडमान, निकोबार, थाइलैंड आदि प्रदेशों का शासन रंगून से ही होता था। हर प्रदेश में हिन्दुस्तानी की शिक्षा दी जाने के लिये स्कूल खोले गये। सरकार के प्रचार-विभाग से गज़ट तथा पत्र निकलता था। सरकार के राष्ट्रीय बैंक का संचालन यथेष्ट रूप से होता था। जब सुभाषबोस पनडुब्बी से टोकियो में उतरे तब जापान के प्रधान-मन्त्री और युद्ध-मन्त्री जनरल टोजो ने बन्दरगाह पर आकर उन्हें सलामी दी थी।

आज़ाद-हिन्द-सरकार में सुदूरपूर्व के बीस लाख भारतीय भक्ति रखते थे। वे स्वेच्छापूर्वक अपनी सम्पत्ति दान देकर उसका खर्च चलाते थे, जो दस करोड़ के निकट पहुँच गया था। उन्होंने एक सेना संगठित की, जिसमें सब स्वेच्छा से शामिल हुए थे। इस सेना में केवल भारतीय युद्ध-बन्दी ही नहीं थे। इसमें बहुत से नागरिक थे, जिन्होंने पहले बन्दूक छुई भी न थी, और जो अब आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़े थे। सरकार सुसंगठित थी। उसके विविध शासन-विभाग थे। उसकी आज़ाद-हिन्द-फौज़

का अपना कानून था। उसकी सेना ने आधुनिक युद्ध के नियमों के अनुसार युद्ध किया, और वह बरमा और भारत की सीमा को पार करके मनीपुर रियासत की राजधानी इम्फाल तक बढ़ आई। वह आसाम और चटगाँव को अंग्रेजों के बन्धन से मुक्त करने वाली थी, किन्तु बरसात के शुरू होते ही रसद तथा आवागमन की असुविधाओं से मजबूर होकर उसे पीछे लौटना पड़ा।

स्थूल दृष्टि से आजाद-हिन्द-फौज को अपने उद्देश्य मे—भारतवर्ष को आजाद कराने मे सफलता नहीं मिली। इसका कारण बाहरी परिस्थिति थी। परन्तु ४० करोड़ जनता के हृदयों पर विजय पा लेना; उसमें स्वाधीनता की कामना को तीव्र कर देना महान् सफलता है।

हिंसा-अहिंसा का प्रश्न—

भारतवर्ष का राष्ट्रीय आन्दोलन, कांग्रेस द्वारा, और म० गांधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक रूप से चलता रहा है। इस प्रसङ्ग मे नेताजी सुभाषबोस का कथन है—'गाँधी जी इस युग के ऋषि है। उनकी अहिंसा संसार की कमजोरियों को दूर कर सकती है, लेकिन यह तभी हो सकता है, जब हमारा देश स्वतन्त्र हो जाय, क्योंकि गुलामो की कोई कीमत नहीं करता। इसलिए हम मौत की मंजिल पार कर देश को स्वतन्त्र करेंगे। देश के स्वतंत्र होने पर मणि-जटित सिंहासन पर हम गांधी जी को बिठा गङ्गा जल से उनके चरण धो उन्हे कहेंगे—'गुरुदेव! अब आप संसार का नेतृत्व करें। आपकी अहिंसा की अब जरूरत है।'

राष्ट्रीयता का आदर्श—

आजाद-हिन्द-सेना के सम्बन्ध में एक बात पर खास ध्यान देने की जरूरत है। वह यह कि इस सेना में हिन्दू, मुसलमान, सिख आदि सभी जातियों के आदमी शामिल थे। जाति, धर्म, और भाषा आदि की विभिन्नता सबको एक ही सेना में संगठित करने के मार्ग में बाधक नहीं हुई। रेजीमेंटों का नाम साम्प्रदायिक आधार पर नही रखा गया था, जैसे सिख रेजीमेंट, रजपूत रेजीमेंट, जाट रेजीमेंट या पठान रेजीमेंट आदि। उनके नाम भारतीय नेताओं के नाम पर रखे गये थे—जैसे गांधी ब्रिगेड, आजाद ब्रिगेड, बोस ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड। प्रत्येक ब्रिगेड मे सभी जाति और सम्प्रदाय के भारतीय शामिल थे। इस सेना के नारे थे 'जय-हिन्द' और 'दिल्ली चलो'।

इस सेना के कितने ही आदमियो को ब्रिटिश सरकार ने फांसी और लम्बी क़ैद की सजाएँ दीं। कुछ आदमियों पर सरकार ने खुलेआम मुक़दमा चलाया। इनमे वीर सेनानी शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन भी थे। इनकी आजन्म कारावास की सजा को भारतवर्ष के जंगीलाट ने रद्द करके इन्हे रिहा कर दिया। इन सज्जनों के सार्वजनिक वक्तव्यों से बहुत सी बाते साफ-साफ जनता के सामने आ गईं, और आजाद-हिन्द-फौज के बारे में, जो भ्रान्तियाँ सरकारी अधिकारियों या कुछ स्वार्थियों ने पैदा कर दी थीं, वे दूर हो गईं। श्री शाहनवाज के ये शब्द बड़े महत्व के हैं—"हम सब एक ही उद्देश को लेकर आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, हमारे बीच मे किसी तरह के कोई साम्प्रदायिक भेद-भाव नहीं थे। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सब साथ रहते थे, साथ-

प्रारम्भ से ही अनुदार दल की अपेक्षा मजदूरदल की भारत के साथ सहानुभूति अधिक रही थी। इसलिए उसके अधिकार प्राप्त करने पर भारत के हताश हृदय मे फिर से बहुत कुछ आशा का जाग उठना स्वाभाविक था।

शासन संभालते ही मजदूर सरकार ने सर्वप्रथम भारत के मुख्य दलों की सही शक्ति आँकने के लिए नये चुनावों की आज्ञा की। इन चुनावों में काँग्रेस और लीग ही सफल हुईं। शेष दलों की बहुत बुरी तरह से हार हुई। निर्वाचन के अनन्तर जनवरी-फ़रवरी १९४६ में प्रोफेसर रिचर्डस की अध्यक्षता में पार्लियामेंट के सदस्यों का एक डेलीगेशन भारत में आया जिसने सारे देश में दौरा करने के बाद भारत की राजनैतिक स्थिति के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार को रिपोर्ट पेश की। इसके पश्चात् शीघ्र ही सरकार ने एक मन्त्री-मिशन भारत में भेजा। इसमें भारत-मन्त्री सर पैथिक लारेंस के अतिरिक्त दो और मन्त्री थे।

मन्त्रि-मिशन की योजना—

भारत के विविध दलों से विचार-विनिमय करने के बाद, काँग्रेस और लीग में समझौता न हो सकने की दशा में १६ मई को वायसराय सहित मन्त्रि-मिशन ने एक योजना उपस्थित की। उसमें यह सिफ़ारिश की गई कि नये विधान की आधारभूत बातें निम्नलिखित हों—

(१) भारत का एक यूनियन हो जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतें दोनों शामिल रहें। इस यूनियन के अधीन वैदेशिक मामले, रक्षा तथा यातायात के विषय रहेंगे। इन विषयों के लिए उसे आवश्यक धन एकत्रित करने का भी अधिकार रहेगा।

(२) यूनियन की एक कार्यकारिणी तथा एक धारा-सभा हो, जो ब्रिटिश भारतीयों तथा रियासती-प्रतिनिधियों से संगठित हों। धारा-सभा में कोई मुख्य साम्प्रदायिक प्रश्न उठने पर उस पर निर्णय दो मुख्य जातियों (हिन्दू और मुसलमान) में से प्रत्येक के सभी उपस्थित प्रतिनिधियों के बहुमत से होगा।

(३) यूनियन के अन्तर्गत आने वाले विषयों को छोड़कर अन्य सब विषयों मे प्रांतों को अधिकार रहेगा। अवशिष्ट विषयों में भी प्रांतों का अधिकार रहेगा।

(४) यूनियन को प्रदान किये अधिकारों के अतिरिक्त अन्य सब विषय तथा अधिकार देशी राज्यों के अधीन रहेंगे।

(५) प्रान्तों को अपनी कार्यकारिणी तथा धारा-सभा सहित एक समूह में संगठित होने की स्वतन्त्रता रहेगी और प्रत्येक समूह निर्णय कर सकेगा कि कौन-कौन से प्रान्तीय विषय उसके अधीन होंगे।

(६) यूनियन के तथा समूहों के विधान मे एक धारा यह रहेगी कि कोई प्रान्त अपनी असेम्बली मे बहुमत से प्रस्ताव पास करके विधान की धाराओं पर पुनर्विचार करवा सकेगा। ऐसा प्रारम्भ मे १० साल बाद हो सकेगा और इसके बाद हर १० साल की अवधि पर ऐसा हो सकेगा।

(७) भारत के लिये नया विधान बनाने के लिये एक विधान-सभा (Constituent Assembly) बनाई जायगी जिसमें देश के भिन्न-भिन्न प्रान्त निम्नलिखित तालिका के अनुसार अपनी-अपनी धारा-सभाओं से चुनकर प्रतिनिधि भेजेंगे:—

तालिका 'क'

प्रान्त	जनरल	मुसलिम	योग
मदरास	४५	४	४६
बम्बई	१६	२	२१
संयुक्त-प्रान्त	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्य-प्रान्त	१६	२	१७
उड़ीसा	६	×	६
योग	१६७	२०	१८७

तालिका 'ख'

प्रान्त	जनरल	मुसलिम	सिख	योग
पंजाब	७	१६	४	२७
सीमा-प्रान्त	१	३	×	४
सिंध	१	३	×	४
योग	६	२२	४	३५

तालिका 'ग'

प्रान्त	जनरल	मुसलमान	योग
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	३	१०
योग	३४	३६	७०

ब्रिटिश भारत की कुल सीटे १८७+३५+७०=२९२
देशी राज्यों की अधिक से अधिक सीटें = ९३

कुल भारतवर्ष की सीटों का योग =३८५

(८) चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों को प्रतिनिधित्व देने के लिये 'तालिका' 'क' के प्रतिनिधियों में केन्द्रीय असेम्बली में दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य तथा एक सदस्य कुर्ग कौंसिल द्वारा निर्वाचित किये जाकर जोड़ दिये जायेंगे।

'तालिका' 'ख' में ब्रिटिश बलोचिस्तान का एक प्रतिनिधि जोड़ दिया जायगा।

(९) विधान-सभा के लिये चुने गये प्रतिनिधि यथासम्भव शीघ्र ही नई दिल्ली में मिलेंगे। प्रारम्भिक बैठक में कार्यक्रम निर्धारित किया जायगा, चेयरमैन तथा अन्य पदाधिकारी चुने जायेंगे तथा नागरिकता के अधिकार, अल्प-संख्यकों के अधिकार, कबीले वालों के अधिकार तथा बहिर्भूत प्रदेशों के अधिकारों के सम्बन्ध में एक सलाहकारिणी कमेटी नियुक्त की जायगी। इनके बाद प्रान्तों के प्रतिनिधिगण प्रतिनिधियों की तालिका के अनुसार तीन वर्गों मे बंट जायेंगे।

इसके बाद ये वर्ग अपने-अपने वर्ग में सम्मिलित प्रान्तों का विधान बनायेंगे और यह भी निर्णय करेंगे कि क्या इन प्रान्तों का कोई सामूहिक विधान बनाया जाय और यदि बनाया जाय तो समूह को किन-किन प्रान्तीय विषयों पर अधिकार हो, प्रांतों को अपने समूह से बाहर के समूहों से सहयोग करने का अधिकार रहेगा।

इन वर्गों के प्रतिनिधिगण तथा देशी रियासतों के प्रतिनिधिगण यूनियन का विधान बनाने के लिये एकत्रित होंगे।

यूनियन-विधान-सभा में आधारभूत बातों की धाराओं को बदलने या किसी मुख्य साम्प्रदायिक प्रश्न पर प्रस्ताव पास करने के लिए आवश्यक होगा कि दो मुख्य जातियों के उपस्थित प्रतिनिधियों का बहुमत उसके पक्ष में हो।

विधान-सभा के चेयरमैन निर्णय करेंगे कि कौनसा प्रस्ताव एक मुख्य साम्प्रदायिक प्रश्न उपस्थित करता है, और यदि किसी मुख्य जाति के बहुसंख्यक प्रतिनिधि प्रार्थना करेंगे तो निर्णय देने से पूर्व संघ-अदालत से परामर्श करेंगे।

जैसे ही नया विधान बन जायगा प्रत्येक प्रान्त को स्वतन्त्रता होगी कि वह जिस समूह मे रखा गया है, उसमे से निकल आये। इसका निर्णय नये विधान के अन्तर्गत पहला आम चुनाव हो जाने के बाद निर्मित प्रान्तीय असेम्बली करेगी।

नागरिकता के अधिकार, अल्पसंख्यकों के अधिकार, कबीले वालों के अधिकार तथा बहिर्भूत प्रदेशों के अधिकारों के सम्बन्ध में निर्मित सलाहकारिणी कमेटी में उक्त स्वार्थों को पूर्ण प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा तथा उनका कार्य यह होगा कि वह यूनियन-विधान-सभा में मौलिक अधिकारों की सूची, अल्पसंख्यकों के संरक्षण की धाराएँ तथा कबीलेवाले देशों तथा बहिर्भूत प्रदेशों के शासन की योजनाएँ पेश करे तथा यह सलाह दे कि ये अधिकार प्रान्तीय, सामूहिक अथवा यूनियन-विधान में से किस विधान में शामिल किये जायँ।

यूनियन-विधान-सभा तथा ब्रिटेन के बीच सत्ता हस्तान्तरित करने से सम्बन्धित कुछ विषयों के लिये सन्धि-वार्ता आवश्यक होगी।

अस्थायी सरकार--

मिशन ने कांग्रेस और लीग को मिलाकर, जब तक नया विधान वने, तब तक के लिये अस्थायी सरकार बनाने के लिये कहा था। और, उनके द्वारा न बनाये जाने पर मिशन ने १६ जून सन् १६४६ को १४ सदस्यों की अन्तर्कालीन सरकार बनाने की योजना उपस्थित की—६ कांग्रेस (५ सवर्ण हिन्दू और १ हरिजन), ५ लीगी १ अकाली १ पारसी और १ ईसाई।

योजना की आलोचना—

ब्रिटिश मन्त्रियों ने इस बात की कोशिश की कि भावी विधान तथा अस्थायी सरकार के निर्माण मे यहां के सभी दलों का, विशेषकर कांग्रेस और लीग का समझौता हो जाय। पर समझौता कैसे होता जबकि कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था थी और उसे देश भर के सामूहिक हित और उन्नति की चिन्ता थी; और इस के विपरीत लीग एक साम्प्रदायिक संस्था थी, जो सब मुसलमानों का भी प्रतिनिधित्व न करती थी।

लीग को संतुष्ट करने के लिये अस्थायी सरकार में मुसलमानों के पांचों प्रतिनिधि लीग-सभापति श्री जिन्ना की मर्जी के रखे गये। लेकिन जब कांग्रेस ने यह अधिकार मांगा कि अपने हिस्से के प्रतिनिधियो मे वह चाहे जिसे नामजद करे—और खास कर एक राष्ट्रीय मुसलिम को भी स्थान दे तो उसका यह अधिकार अस्वीकार कर दिया गया। कांग्रेस से एक हिन्दू संस्था का-सा व्यवहार करके उसके राष्ट्रीय स्वरूप को नष्ट करने का प्रयत्न कियां गया, जिसे उसने पिछले साठ वर्षों के त्याग और तप से

प्राप्त किया था। अब भावी विधान की बात लीजिये। इस योजना के तीन भाग थे—संघ, प्रान्त और देशी राज्य। संघ की रूप-रेखा से यह साफ प्रकट है कि उसे बहुत कमजोर रखा गया था, उसका कार्य-क्षेत्र बहुत परिमित था, फिर अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों या प्रान्तों के समूहों को दे दिये गये थे। जिस संघ-सरकार की कल्पना की गई थी वह निःशक्त और संकट के समय में देश की रक्षा करने मे असमर्थ थी।

प्रान्तों की गुटबन्दी विशुद्ध साम्प्रदायिक आधार पर की गई थी। यद्यपि योजना मे यह मान लिया गया था कि भारतवर्ष का विभाजन नहीं किया जा सकता और पाकिस्तान अव्यावहारिक है, तथापि मुसलिम लीग को संतुष्ट करने के लिये भारतवर्ष के पूर्वी तथा पश्चिमी प्रान्तों की एक प्रकार की गुटबंदी कर दी गई। इसमे सीमाप्रान्त और आसाम के साथ खास तौर से अन्याय किया गया। सीमाप्रांत के पिछले चुनाव मे,कांग्रेस को भारी विजय हुई थी, तो भी उसे पंजाब के लीगी-बहुमत के साथ जोड़ दिया गया। इसी प्रकार आसाम हिन्दू-बहुमत वाला प्रान्त था। उसका मुसलिम-बहुमत वाले बंगाल प्रान्त के साथ गठबन्धन कर दिया गया। यद्यपि मूल योजना मे गुटबन्दी आरम्भ से ही अनिवार्य नहीं थी, मिशन ने पीछे यही कहा कि हमारी इच्छा इसे आरम्भ से ही चालू करने की है सिखों को उनकी इच्छा के विरुद्ध पश्चिमोत्तर समूह मे रखना भी सर्वथा अनुचित-था।

मन्त्रि-मिशन ने बंगाल और आसाम के लगभग बाईस हजार अंग्रेजों को इतना प्रतिनिधित्व दे दिया था, जितना साठ

लाख हिन्दुस्तानियों को मिलता। परन्तु कांग्रेस इस बात पर दृढ़ रही कि योरुपियन सदस्य विधान-सभा के चुनाव में न तो वोट दें, और न अपने उम्मीदवार खड़े करें। आखिर दोनों प्रान्तों के योरुपियनों ने यह स्वीकार कर लिया।

देशी रियासतों सम्बन्धी योजना में कहा गया था कि ब्रिटिश-भारत के स्वतन्त्र होने पर रियासतों और सम्राट् के बीच वह सम्बन्ध नहीं रह सकता जो अभी तक रहा है। सर्वोच्च अधिकारों को न तो सम्राट् के हाथ में रखा जा सकता है और न उन्हें नई सरकार को सौंपा जा सकता है। भारत के विकास में, देशी रियासतों के, सहयोग का स्वरूप क्या होगा, यह नये वैधानिक संगठन का ढांचा तैयार करते समय आपसी विचार-विनिमय से तय हो सकेगा। प्रत्येक देशी राज्य के सहयोग का रूप एक ही नहीं होगा। इस प्रकार योजना में इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश नहीं डाला गया। और विधान-सभा के निर्माण मे देशी राज्यो की जनता के प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी सुलझाया नहीं गया। यह तो स्पष्ट ही है कि सामन्तशाही के समर्थक राजाओं के प्रतिनिधि जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। निदान, ब्रिटिश मन्त्रि-मिशन की इस योजना मे कितने ही मौलिक और गम्भीर दोष थे।

अन्तिम परिणाम—

वायसराय और मिशन द्वारा उपस्थित की हुई अस्थायी सरकार की योजना को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इसे अपने हिस्से के प्रतिनिधि भी अपनी इच्छानुसार नियुक्त करने का अधिकार नहीं दिया गया। यद्यपि मुस्लिम-लीग इस

योजना को स्वीकार कर चुकी थी, कांग्रेस के अस्वीकार करने पर इस योजना को अमल मे लाने का विचार स्थगित कर दिया गया। काम चलाने के लिए एक सरकार बनाई गई। इसके सभी सदस्य प्रतिगामी विचारों के थे। यह काम-चलाऊ सरकार थोड़े ही दिन रही।

अगस्त के मध्य में सम्राट् की स्वीकृति से वायसराय ने राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू को अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। श्री नेहरू जी ने कांग्रेस कार्यसमिति की सम्मति से इस निमंत्रण को स्वीकार किया। आप लीग का सहयोग पाने के लिए श्री जिन्ना से मिले। पर श्री जिन्ना के हठ और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण वार्ता सफल न हुई।

लीग ने अन्तःकालीन सरकार मे सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। फलतः कांग्रेस ने लीग के अतिरिक्त अन्य दलों के सहयोग से अन्तरिम सरकार बनाई। इस सरकार के सदस्यों ने २ सितम्बर, ४६ को अपने-अपने पद संभाले। लीग ने अनुभव किया कि अधिकार प्राप्त करने का अवसर उसके हाथ से निकला जा रहा है। उसके बिना भी कार्य चल रहा है और वह अड़ंगे को जारी रखने में सफल नहीं रह सकी। उसने अपनी चाल बदली। विधान-सभा में सम्मिलित होने के बारे में कुछ अस्पष्ट मौखिक वचन देकर वह अन्तरिम सरकार में दाखिल हो गई।

९ दिसम्बर ४६ को दिल्ली में विधान-सभा का पहला अधिवेशन हुआ। श्री सच्चिदानन्द सिन्हा इसके अस्थायी सभापति थे। इन्हीं की अध्यक्षता मे स्थायी सभापति के लिये श्री बाबू

राजेन्द्रप्रसाद जी का नाम स्वीकृत किया गया। मौखिक प्रति-ज्ञाओं के बावजूद लीग इस अधिवेशन में शामिल न हुई। स्वाभाविक तौर पर कांग्रेस को यह बात बहुत अखरी। उसने ब्रिटिश सरकार से इस स्थिति का घोर विरोध किया। कांग्रेस का कहना था कि लीग को केवल इसी शर्त पर अन्तरिम सरकार में सम्मिलित किया गया था कि वह विधान-सभा में सहयोग देगी। यदि विधान-सभा में सम्मिलित होने के लिये वह तय्यार नहीं तो उसके लिये अन्तरिम सरकार में भी कोई स्थान नहीं होना चाहिये। ब्रिटिश सरकार ने इस असंगत स्थिति पर फिर से विचार किया।

१९४७

प्रधान मन्त्री श्री एटली ने २० फरवरी, ४७ को पार्लियामेण्ट में एक वक्तव्य द्वारा घोषित किया कि भारत के राजनैतिक दलों के परस्पर समझौता न होने की अवस्था में भी भारत से ब्रिटिश सत्ता अवश्य ही जून १९४८ तक हटा ली जायगी। कहने को इस घोषणा की गहराई में यह विश्वास छिपा था कि यदि भारतीय नेताओं को इस बात का यकीन हो जाय कि ब्रिटिश सरकार वास्तव में भारत को स्वतन्त्र कर देना चाहती है वे अवश्य ही एक दूसरे के अधिक समीप आ जायगे। परन्तु दूसरी ओर इसी वक्तव्य के कुछ अंग पाकिस्तान का प्रलोभन देकर लीग को कांग्रेस के साथ समझौता न करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे थे।

प्रधान मन्त्री का कहना था कि ब्रिटिश सरकार की इच्छा तो यह है कि मन्त्री-मिशन के सुझाव के अनुसार सभी दलों द्वारा

स्वीकार किये गये विधान के आधार पर स्थापित की गई सरकार को ही अधिकार सौंपे जायँ, किन्तु यदि किन्हीं कारणों से भारत के मुख्य दलों का परस्पर समझौता न हो सके तो ब्रिटिश सरकार को इस बात पर विचार करना होगा कि नियत तिथि पर अधिकार किसे दिये जायं—देश की किसी केन्द्रीय सरकार को अथवा इसके अतिरिक्त देश के कुछ भागों की स्थानीय सरकारों को। साथ ही प्रधान-मन्त्री ने भारत के युद्धकालीन वाइसराय लार्ड वेवल के स्थान पर माउण्ट बेटन की नियुक्ति की घोषणा की।

मार्च के अन्तिम सप्ताह में लार्ड माउण्ट बेटन ने चार्ज लिया। पद सँभालते ही उन्होंने बड़ी तन्मयता के साथ भारत की राजनैतिक समस्या का हल निकालने का यत्न शुरू कर दिया। सर्वप्रथम श्री गांधी और जिन्ना से भेंट करने के अनन्तर उन्होंने सभी प्रान्तीय गवर्नरों की एक कांफ्रेंस बुलाई और इस प्रकार सरकारी और गैर सरकारी दोनों प्रकार के मतों की पूरी जानकारी के बाद भारत की स्थिति के सम्बन्ध में लार्ड इस्मे के हाथ अपनी सम्मति ब्रिटिश सरकार को भेजी। कुछ दिनों बाद स्वयं भी परामर्श के लिये लंदन गये। वहां पर उन्होंने भारत और उसके कुछ प्रान्तों के विभाजन का सुझाव ब्रिटिश सरकार के सामने रखा। लीग की हिंसा और घृणा की नीति के कारण जो देश-भर में साम्प्रदायिक रक्तपात का भयंकर चक्र चल रहा था, उससे भी सरकार को परिचित किया और शीघ्र से शीघ्र स्थिति को सुधारने की प्रेरणा की। फलस्वरूप सरकार की ओर से ३ जून, ४७ को एक घोषणा की गई।

यह घोषणा देश के विभाजन की योजना थी जिसके अनुसार

देश के कुछ विभागों को यह अधिकार दिया गया कि वे यदि चाहें तो उक्त विधान-सभा के अतिरिक्त दूसरी विधान-सभा से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं, अर्थात् हिन्दू बहुमत क्षेत्रों तथा मुस्लिम बहुमत क्षेत्रों को अपना-अपना विधान अलग बनाने का अधिकार दिया गया। इससे लीग की पाकिस्तान की मांग पूरी हो गई। सिन्ध और बिलोचिस्तान तो मुस्लिम बहुमत क्षेत्र होने के कारण पहले से ही पाकिस्तान के पक्ष में थे। पंजाब और बंगाल की धारा-सभाओं ने भी विभाजन के पक्ष में मत दिये। सीमा प्रान्त में मत गणना ली गई। मुस्लिम बहुमत क्षेत्र होने पर भी यह प्रान्त अब तक कांग्रेस के साथ अटल रहा था। धारा-सभा में कांग्रेसी मुसलमानों का बहुमत था। इसलिये मत-गणना का वहां प्रश्न पैदा ही नहीं होना चाहिये था; किन्तु सरकार, जो गुप्त रूप से लीग की पीठ ठोक रही थी, इस वैधानिक स्थिति को क्यों स्वीकार करती। मत गणना हुई, खिन्न होकर कांग्रेस ने इसका बहिष्कार किया और थोड़े से बहुमत से पाकिस्तान के पक्ष में निर्णय हो गया। आसाम प्रान्त के सिलहट जिले में भी मत-गणना का परिणाम पाकिस्तान के पक्ष में रहा। पंजाब और बंगाल में निम्नलिखित जिले मुस्लिम बहुमत जिले स्वीकार किये गये—

पंजाब में—

लाहौर डिवीजन—लाहौर, गुजरांवाला, गुरदासपुर, शेखू-पुरा और सियालकोट।

रावलपिंडी डिवीजन—रावलपिंडी, मियांवाली, शाहपुर, अटक, गुजरात और जेहलम।

मुलतान डिवीजन—मुलतान, डेरी गाजीखाँ, झंग, लायलपुर मिन्टगुमरी और मुजफ्फरगढ़।

बंगाल में—

चिटगांव डिवीजन—चिटगॉव, नोआखाली और टिपरा।

ढाका डिवीजन—ढाका, बाकर गंज, फरीदपुर और मैमनसिंह।

प्रेज़ीडेन्सी डिवीज़न—जेस्सोर, मुर्शिदाबाद और नादिया।

राजशाही डिवीज़न—राजशाही, बोगरा, दिनाजपुर, माल्दा पवना और रंगपुर।

इस घोषणा में यह भी बताया गया कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की दोनों डोमिनियनों को जून सन् ४८ से बहुत पहले ही अधिकार सौंप दिये जायंगे। दोनों डोमिनियनों को यह अधिकार होगा कि यदि उनकी इच्छा हो तो वे ब्रिटिश कामनवेल्थ से सम्बन्ध तोड़कर पूर्ण स्वतन्त्र हो सकते हैं।

कॉंग्रेस और लीग दोनों ने इस घोषणा को स्वीकार किया और बंटवारे का कार्य बड़ी तेज़ी से शुरू कर दिया गया। एक विभाजन कौंसिल बनाई गई और उसकी सहायता के लिये अनेक समितियां और उपसमितियाँ बनाई गईं। ढाई महीने के अत्यन्त थोड़े समय के अन्दर देश के दो टुकड़े कर दिये गये। १५ अगस्त १९४७ को दोनों डोमिनियनों को अधिकार सौंप दिये

गये। सदियों का गुलाम देश स्वतन्त्र हो गया। वर्षों का त्याग सफल हुआ। वीरों की कुरबानी रंग लाई।

लार्ड माउण्टबेटन स्वतन्त्र भारत के पहले गवर्नर जनरल हुए।

मौलिक अधिकार—

विधान में जिन मौलिक अधिकारों का उल्लेख है उनके अनुसार सब नागरिकों को समानता के अधिकार प्राप्त होंगे। धर्म, जाति, वर्ण अथवा लिंग के कारण किसी व्यक्ति के साथ भेद का बर्ताव नहीं किया जायगा। सरकारी नौकरियों के लिये सब नागरिकों को समान अवसर मिलेगा। अस्पृश्यता मना कर दी जायगी। छुआछूत करने वाले कानून की दृष्टि में दण्ड के भागी होंगे। खिताब प्रदान करने की प्रथा बन्द कर दी जायगी। न सरकार कोई खिताब देगी और न ही कोई विदेशी खिताब स्वीकार कर सकेगा। धर्म, भाषण और अभि-व्यक्ति, व्यवसाय और व्यापार तथा शान्ति पूर्वक परस्पर मिलने-जुलने की सबको स्वतन्त्रता होगी। अल्प-संख्यकों के शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा की जायगी। कानून की शक्ति के बिना किसी को अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा।

इन अधिकारों की रक्षा के लिये अदालती कार्यवाही की जा सकती है और देश की सर्वोच्च अदालत (Supreme Court) की सहायता ली जा सकती है।

राष्ट्रीय नीति—

राष्ट्र की यह नीति होगी कि सभी नागरिकों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त हों, समाज की व्यवस्था ऐसी हो जिससे धन का केन्द्रीकरण न हो; समान परिश्रम के लीये समान मज-

दूरी हो; शिशु और तरुण जनों की शक्ति की दुरुपयोग से रक्षा की जाए; निःशुल्क प्राइमरी की शिक्षा का सबके लिये प्रबन्ध किया जाए।

शासन वर्ग—

भारत का एक प्रधान होगा, गणराज्य की शासन-सत्ता उसी में निहित होगी। सेना पर भी सर्वोच्च अधिकार प्रधान का ही होगा। केन्द्र की दोनों परिषदों तथा राज्यों की धारा-सभाओं के सब निर्वाचित सदस्य मिलकर प्रधान का निर्वाचन करेंगे। प्रधान के लिये आवश्यक है कि वह भारत का नागरिक हो, आयु ६५ वर्ष से अधिक हो और केन्द्र की जन-सभा के लिये चुने जाने का अधिकारी हो। प्रधान अपने पद पर ५ वर्ष तक रहा करेगा। उसके बाद केवल एक बार वह चुनाव के लिये दोबारा खड़ा हो सकेगा।

प्रधान के अतिरिक्त एक उप-प्रधान होगा। उप प्रधान का चुनाव दोनों परिषदों के सदस्य एक सम्मिलित अधिवेशन में करेंगे। प्रधान की अनुपस्थिति में तथा प्रधान पद के निर्वाचन तक प्रधान का सारा कार्य उप-प्रधान ही करेगा। उप-प्रधान के पद की अवधि भी ५ वर्ष ही होगी।

प्रधान की सहायता के लिये एक मन्त्रि-मण्डल हुआ करेगा। प्रधान मन्त्री की नियुक्ति स्वयं प्रधान किया करेगा और शेष मन्त्रियों की नियुक्ति प्रधान मन्त्री की सम्मति से हुआ करेगी। मन्त्रि-मण्डल उसी समय तक पदारूढ़ रह सकेगा जिस समय तक प्रधान की इच्छा हो। यदि कोई मन्त्री दोनों परिषदों में से

किसी एक का भी सदस्य न हो, तो वह ६ मास से अधिक अपने पद पर नहीं रह सकेगा। शासन और कानून सम्बन्धी परामर्श देने के लिये एक एटॉनी जनरल भी होगा।

पार्लियामेंट—

संघ की एक पार्लियामेंट होगी जिसमें प्रधान तथा दो विधायक सभाएं-राज्य परिषद् (Council of Captates) तथा जनसभा (House of the People) होंगी।

राज्य परिषद् के २५० सदस्य होंगे। इनमें से १५ सदस्य जो साहित्य, कला, विज्ञान, शिक्षा, शासन आदि विषयों के विशेषज्ञ होंगे, प्रधान द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। शेष सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होंगे जो जन-सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किये जायँगे। जन-सभा के सदस्यों की संख्या ५०० से अधिक नहीं होगी। ये सदस्य वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) के सिद्धान्त के अनुसार चुने जायेंगे। हर साढ़े तीन लाख से पाँच लाख तक लोगों का एक प्रतिनिधि होगा।

राज्य-परिषद् भंग नहीं की जा सकेगी। इसके एक तिहाई सदस्य हर दो वर्ष के बाद हट जाया करेंगे।

जन-सभा की अवधि पाँच वर्ष की होगी। संकट काल में इस की आयु एक वर्ष और बढ़ाई जा सकती है।

भारत का उप-प्रधान राज्य-परिषद् का प्रधान होगा। राज्य-परिषद का उपप्रधान परिषद् द्वारा चुना जायगा। जन सभा के

दोनों मुख्य अधिकारी—स्पीकर (Speaker) तथा डिप्टी स्पीकर (Deputy Speaker) सभा द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

इन विधायक सभाओं की बैठक वर्ष में दो बार अवश्य होगी। हर अधिवेशन के प्रारम्भ में दोनों सभाओं का एक सम्मिलित अधिवेशन जन-सभा के स्पीकर (Speaker) की अध्यक्षता में हुआ करेगा जिसमें प्रधान का वक्तव्य होगा। साधारणतः कोई कानून किसी भी विधायक सभा में पेश किया जा सकता है। दोनों सभाओं में पास हो जाने के बाद उस पर प्रधान की स्वीकृति ली जायगी

विधायक सभाओं की कार्यवाही हिन्दी अथवा अंग्रेजी में हुआ करेगी।

सर्वोच्च अदालत—

भारत में एक सर्वोच्च अदालत (Supreme Court) होगी जिसमे प्रमुख न्यायाधीश के अतिरिक्त कम से कम सात और न्यायाधीश होंगे। न्यायाधीश अपने पद पर ६५ वर्ष की आयु तक रह सकेंगे। इनकी नियुक्ति दूसरे न्यायाधीशों की सम्मति से प्रधान द्वारा होगी। इस पद के अधिकारी होने के लिये आवश्यक है कि वह व्यक्ति किसी हाई कोर्ट में न्यायाधीश के पद पर कम से कम ५ वर्ष तक रह चुका हो अथवा किसी हाई कोर्ट में कम से कम १० वर्ष तक एडवोकेट रह चुका हो।

राज्यों का शासन वर्ग—

प्रत्येक राज्य के लिये एक गवर्नर होगा। राज्य की शासन-सत्ता गवर्नर में निहित होगी। वह विधान और कानून के अनु-

सार उसका प्रयोग करेगा। गवर्नर के चुनाव के लिये दो विधान हैं। (१) राज्य की धारा-सभा के चुनाव के जिन लोगों को मताधिकार प्राप्त हैं, वे स्वयं गवर्नर का चुनाव करेंगे अथवा (२) राज्य की धारा-सभा द्वारा भेजी हुई चार व्यक्तियों की सूची में से प्रधान नियुक्त करेगा। गवर्नर के लिये आवश्यक है कि वह (१) भारत का नागरिक हो, (२) आयु ३५ वर्ष से ऊपर हो, तथा (३) राज्य की धारा-सभा के चुनाव का अधिकारी हो।

गवर्नर की सहायता के लिये एक मन्त्रि-मण्डल होगा। इस मन्त्रि-मंडल की नियुक्ति गवर्नर के हाथ मे होगी। कानूनी परामर्श के लिये एक एडवोकेट जनरल होगा। इस पद के अधिकारी में एक हाईकोर्ट के न्यायाधीश की-सी योग्यता होनी चाहिये।

प्रत्येक राज्य में विधायक सभा (Legislature) होगी जिस में गवर्नर और दो सभाएँ (लेजिस्लेटिव असेम्बली और लेजिस्लेटिव कौंसिल) होंगी। कुछ राज्यों में केवल एक ही सभा—लेजिस्लेटिव असेम्बली होगी। इन सभाओं के सदस्यों का चुनाव व्यस्क मताधिकार के सिद्धान्त के अनुसार होगा। हर एक लाख आबादी के लिये एक प्रतिनिधि हुआ करेगा। लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों की संख्या कम से कम ६० और अधिक से अधिक ३०० होगी। लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य असेम्बली के सदस्यों की संख्या के एक चौथाई से अधिक नहीं होंगे। इनमें आधे सदस्य राज्य के विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों में से तथा साहित्य, कला, विज्ञान, कृषि, इंजिनीयरिंग आदि का विशेष

ज्ञान रखने वालों में से चुने जाया करेंगे; एक तिहाई असेम्बली द्वारा चुने जाया करेंगे और शेष गवर्नर द्वारा मनोनीत किये जायंगे।

असेम्बली की आयु ५ वर्ष होगी। कौंसिल स्थायी संस्था होगी। केवल इसके एक तिहाई सदस्य हर तीसरे वर्ष सदस्यता से हट जाया करेंगे।

इन सभाओं की बैठक वर्ष में दो बार अवश्य हुआ करेगी। इसके अतिरिक्त भी जब गवर्नर चाहे इनका अधिवेशन बुलाया जा सकता है। प्रत्येक सभा (असेम्बली तथा कौंसिल) में एक स्पीकर और एक डिप्टी स्पीकर हुआ करेगा। साधारणतः प्रत्येक कानून इन सभाओं मे पास होकर और गवर्नर की स्वीकृति के अनन्तर ही प्रयोग मे आयगा। संकट काल में प्रधान की आज्ञा से गवर्नर अस्थायी कानून (Ordinance) भी बना सकता है।

हाईकोर्ट—

हाईकोर्टों का संगठन अभी पुराने एक्ट के अनुसार ही होगा। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना, नागपुर, पूर्वी-पंजाब और अवध में ऐसी अदालतें होंगी। प्रत्येक अदालत में एक प्रमुख न्यायाधीश के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश होंगे जिनकी समय समय पर नियुक्ति करना प्रधान आवश्यक समझे। ये न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक ही अपने पद पर रह सकते हैं।

दिल्ली, अजमेर-मारवाड, पंथ पिपलोडा, कुर्ग, अण्डमान और निकोबार तथा अन्य दूसरे राज्य जिनके शासकों ने अपने शासन सम्बन्धी अधिकार भारत सरकार को सौंप दिये हों प्रधान की अधीन होंगे। इन राज्यों के शासन प्रबन्ध के लि चीफ कमिश्नर अथवा लेफ्टीनेण्ट गवर्नर—जैसे भी उचित समझे—नियुक्त किये जायंगे।

संकटकालीन अधिकार—

जब अशान्ति अथवा युद्ध के कारण देश के लिये कोई खतरा हो जाय तो प्रधान संकटकालीन स्थिति (Emergency) की घोषणा कर सकता है। यह घोषणा ६ मास तक लागू होगी। यदि पार्लियामेंट की दोनों विधायक सभाएं इसका समथन करें तो इससे अधिक भी इसकी आयु हो सकती है।

इस स्थिति में केन्द्र को अधिकार होगा कि वह राज्यों को शासन-संचालन के बारे में कोई भी आज्ञा कर सके। प्रधान राज्यों को शासन के अधिकारों को आंशिक अथवा सामूहिक रूप से ग्रहण कर सकता है।

सरकारी नौकरियां—

पबलिक सर्विस कमीशन नाम की संस्थाएं केन्द्र तथा प्रत्येक राज्य में होगी। ये संस्थाएँ केन्द्र अथवा राज्यों की सरकारी नौकरियों के लिये परीक्षाओं का आयोजन करेंगी।

केन्द्र का पबलिक सर्विस कमीशन के सदस्य प्रधान द्वारा नियुक्त किये जायंगे। राज्यों के कमीशनों के सदस्यों की नियुक्ति गवर्नरों के हाथ में होगी। प्रधान की आज्ञा से केन्द्रीय संस्था

सी राज्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में सहयोग दे
ती है।

नाव कमीशन—

केन्द्र के चुनावों की देख-भाल के लिये प्रधान द्वारा एक
ुनाव-कमीशन नियुक्त किया जायगा। ऐसा ही कमीशन प्रत्येक
ाज्य में भी होगा; उसकी नियुक्ति स्थानीय गवर्नर द्वारा होगी।

अल्प संख्यकों के अधिकार—

विधान के पहले दस वर्षों के लिये केन्द्र की जन-सभा में
ुसलमानों, अछूतों तथा हिन्दुस्तानी ईसाइयों के लिये उनकी
ान-संख्या के अनुपात से स्थान सुरक्षित कर दिये जायंगे। इसी
कार राज्यों की लेजिस्लेटिव असेम्बलियों में मुसलमानों तथा
रिगणित जातियों (Scheduled Castes) के लिये सीटें सुर-
ित रखी जायंगी। मद्रास और बम्बई में हिन्दुस्तानी ईसाइयों
े लिये भी यह रियायत रहेगी। यदि एंग्लो इण्डिया सम्प्रदाय
प्रतिनिधित्व पर्याप्त न हो तो प्रधान दो सदस्य मनोनीत कर
कता है। केन्द्रीय सरकार के रेल, डाक, तार आदि विभागों
नौकरी करने वाले एंग्लो इंडियनों के लिये भी विशेष रियासतें
गी। किन्तु दस वर्ष के बाद ये सब रियासतें हटा ली जायंगी।

धान का संशोधन—

यदि विधान में कोई संशोधन अपेक्षित हो तो इस आशय
बिल किसी भी सभा में पेश किया जा सकता है। इसके पास
े के लिये उपस्थित सदस्यों की दो तिहाई का मतैक्य आव-
क है। दोनों सभाओं में पास हो जाने के बाद प्रधान की

स्वीकृति ली जायगी। स्वीकृति प्राप्त होने पर वह संशोधन पास
हुआ समझा जायगा।

आज कल विधान-सभा में इस विधान पर चर्चा हो रही है
विधान सभा मे पास हो जाने के बाद यह आज कल के विधान
का स्थान लेगा। यह विधान किस तिथि से लागू होगा इस की
घोषणा बाद में की जायगी।

अड़तीसवाँ अध्याय

देशी रियासतें

ब्रिटिश भारत मे रियासतों की संख्या ५८४ थी। इनमें से १६ रियासतें ऐसी थीं जिनकी वार्षिक आय एक करोड़ से अधिक थी, और दो सौ के लगभग ऐसी थीं जिनकी वार्षिक आय एक बहुत ही साधारण जमींदारी की आय से अधिक न थी। क्षेत्र-फल की दृष्टि से इनमें कुछ रियासते तो इतनी बड़ी थीं कि एक ही रियासत में बेलजियम, हालैंड, डेनमार्क, स्विटजरलैण्ड, और इङ्गलैण्ड समा सकते थे, और कुछ इतनी छोटी कि उनका क्षेत्रफल १० वर्गमील से अधिक न था। काया मे काश्मीर की रियासत सबसे बड़ी थी, इसका क्षेत्रफल ८४४७१ वर्ग मील और आबादी ४०२१६१६ थी, काया की दृष्टि से हैदराबाद (८२३१३) का दूसरा स्थान था परन्तु आबादी (१६३३८५३४) और आमदनी मे यह सबसे बढ़ी-चढ़ी थी। कुल मिलाकर ये रियासते अखण्ड भारत के ४५ प्रतिशत क्षेत्रफल मे फैली हुई थीं। इन सब रियासतों की पृथक् सत्ता को ब्रिटिश सरकार स्वीकार करती थी, बड़ी-बड़ी चालीस रियासतों के साथ सरकार की विशेष सन्धियां थीं।

ये रियासतें अपने आन्तरिक प्रबन्धों में स्वतन्त्र समझी जाती थीं। रक्षा, विदेशी मामले तथा यातायात के विषय में ये केन्द्र के अधीन थीं। आन्तरिक विषयों में भी इनकी स्वतन्त्रता केवल एक सिद्धान्त की बात थी। व्यवहार में इसका कोई विशेष महत्व नहीं था। व्यवहार में ब्रिटिश सरकार इनकी स्वतन्त्रता को अपनी सुविधा के अनुसार ही स्वीकार करती थी। जब किसी मामले में उसे हस्तक्षेप करना अपेक्षित होता था, तो उसे कोई रोक नहीं थी। अतः स्पष्ट है कि इन रियासतों की राज्य-सत्ता ब्रिटिश सरकार की मधुर इच्छा पर ही निर्भर थी। रियासतों की प्रजा अधिकांश में ब्रिटिश भारत की प्रजा की अपेक्षा भी अधिक संकट में रहती थी। राजा और नवाब लोग अपनी मनमानी करते थे। बहुत थोड़े प्रजाधीश ऐसे थे जो थोड़ा बहुत प्रजा के हितों का भी ख्याल रखते थे, नहीं तो, उन्हें केवल वाइसराय को प्रसन्न रखने की चिन्ता रहती थी। यदि सम्राट् का प्रतिनिधि उनसे प्रसन्न है तो प्रजा बेशक भाड़ में जाय, इसकी उन्हें क्या चिन्ता ? ब्रिटिश सरकार इनकी सत्ता को इसलिए स्वीकार करती थी कि ये लोग जनता की आज़ादी की मांग को दबाने में साकार के सहायक होते थे। अतः परस्पर हित के लिये स्वेच्छाचारिता का चक्र चलता था।

समय बदला बहुत दबाने पर भी स्वाधीनता की मांग शान्त न हुई। कड़े अत्याचार ने केवल आग पर तेल का काम किया। राजनैतिक स्थितियों से विवश होकर ब्रिटिश सत्ता डगमगाने लगी। इस अवस्था में रियासतों को भी अपने भविष्य की चिन्ता हुई। यह स्पष्ट था कि स्वतन्त्र भारत में पुराने ढंग की इस सा-

मन्तशाही के लिये कोई स्थान नहीं होगा। छोटी-छोटी रियासतों को निकट भविष्य में अपना अन्त स्पष्ट दीख रहा था, किन्तु कुछ बड़ी-बड़ी रियासतें पूर्ण स्वतन्त्र होने के स्वप्न अवश्य देख रही थीं। यह देश का बड़ा दुर्भाग्य होता यदि स्वतन्त्र होने पर वह अनेक स्वाधीन विभागों में बंट जाता और सदा के लिये परस्पर कलह का एक क्षेत्र बन जाता। ब्रिटिश सरकार की नीति में इस कलह और फूट के बीज अवश्य छिपे थे।

१६ मई१६४६ को मन्त्रि-मिशन (Cabinet mission) ने जो घोषणा की थी उसमें स्पष्ट कहा गया था कि ब्रिटिश सत्ता के हटा लेने पर छत्राधिकार (Paramountcy) न तो ब्रिटेन के पास ही रह सकते हैं और न उन्हें नयी राज-सत्ता को ही सौंपा जा सकता है। घोषणा के इस भाग में फूट की प्रेरणा निहित थी। हां ! आगे जाकर इस इच्छा को भी अवश्य प्रकट किया गया था कि रियासतों के लिये केन्द्रीय संघ में सम्मिलित होना हितकर होगा संघ (Federation) में शामिल होने के लिये उन्हें केवल रक्षा, विदेशी मामले और यातायात सम्बन्धी अधिकार ही केन्द्र को सौंपने होंगे, शेष अधिकार उन्हीं के पास रहेंगे। नये विधान के तैयार होने तक परस्पर मिलकर यह निर्णय कर लिया जाय कि किन शर्तों पर एक रियासत केन्द्रीय संघ से सम्बन्ध जोड़ सकती है। तब तक अस्थायी तौर पर विधान-सभा में रियासतों का प्रतिनिधित्व परामर्श समिति (Negotiating Committee) द्वारा हो।

३ जून १६४७ के वक्तव्य में ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के सम्बन्ध में मन्त्रि-मिशन के उपरोक्त आशय का फिर समर्थन

किया। रियासतों के बारे में सरकार की नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जुलाई १६४७ में पार्लियामेंट में भारत की स्वतन्त्रता का एक्ट (Indian Independence Act) पास हो गया। इसके अनुसार सब रियासते ब्रिटेन के छत्राधिकारों से मुक्त हो गईं, और इसके साथ भारतीय सरकार के राजनैतिक विभाग (Political Department) की भी इतिश्री हो गई। यह विभाग रियासतों और ब्रिटिश सरकार के बीच का सेतु था। इस स्थिति को भांप कर रियासतों के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिये भारतीय सरकार ने कुछ दिन पहले ही श्रीयुत वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में एक रियासती विभाग की स्थापना कर ली थी। श्री वी० पी० मेनन इसके मन्त्री थे। पाकिस्तान के हितों की रक्षा के लिये इसमें मि० अब्दुर्रब निश्तर और मि० इकरामुल्लाह सम्मिलित थे। इस विभाग ने पहली पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट का स्थान लिया।

५ जुलाई १६४७ को भारतीय सरकार और रियासतों के परस्पर भावी सम्बन्ध के विषय में श्री वल्लभभाई पटेल ने एक वक्तव्य दिया। इसमें उन्होंने रियासतों के बारे में भारत-सरकार की भावी नीति को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारतीय सरकार की ऐसी इच्छा कदाचित् नहीं कि रियासतों की सत्ता को अस्वीकार किया जाय। रियासतों की सत्ता पूर्ववत् रहेगी। पहले की तरह वे अपने आन्तरिक प्रबन्धों में स्वाधीन होंगीं। रक्षा, विदेशी सम्बन्ध तथा यातायात के अतिरिक्त शेष अधिकार सौंपने के लिये उन्हें नहीं कहा जायगा। सरदार पटेल

ने देश-हितों के नाम से नरेशों को केन्द्र से सहयोग देने की अपील करते हुए कहा कि इस समय भारत-सरकार के साथ असहयोग का अर्थ अशान्ति और अराजकता को निमन्त्रण देना होगा।

नरेशों के साथ बातचीत करने का कार्य लार्ड मौण्टबेटन के सुपुर्द किया गया था। उन्होंने २५ जुलाई १९४७ को नरेन्द्र-मण्डल (Princes' Chamber) की एक बैठक बुलाई। उसमें उन्होंने प्रजाधीशों को आश्वासन देते हुए समझाया कि आप सब लोगों का निजी हित इसी में है कि आप रियासत की भूगोल-निश्चित स्थिति के अनुसार पाकिस्तान अथवा हिन्दुस्तान दोनों में से किसी एक से अपना सम्बन्ध जोड़ लें। आपके भीतरी प्रबन्धों मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जायगा। रक्षा आदि जिन तीन विषयों के अधिकार सौंपने के लिये आपसे कहा जा रहा है, वैसे भी स्वतन्त्र होने की अवस्था में आप उनकी यथोचित रक्षा करने में असमर्थ हैं। उन अधिकारों की पूर्ण रक्षा के लिये न तो आपके पास शक्ति है और न साधन। और फिर इन अधिकारों की रक्षा के दायित्व के बदले आप पर कोई आर्थिक बोझ भी नहीं डाला जा रहा। इस प्रकार नरेशों के सन्देहों का समाधान किया गया और केन्द्र के साथ सम्मिलित होने की शर्तों का निश्चय करने के लिये एक समिति बना दी गई।

शिमला-कांफ्रेंस आदि इसी प्रकार के पहले प्रयत्नों की असफलता को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस प्रस्तुत अधिवेशन में आशातीत और आश्चर्यजनक सफलता

प्राप्त हुई। इसका मुख्य कारण था, ब्रिटिश सत्ता के वस्तुतः हटाये जाने का विश्वास। अंग्रेज वास्तव में जा रहा है, इस सत्य की प्रतीति ने नरेशों के दृष्टिकोण को तत्काल बदल दिया। वे राष्ट्रीय नेताओं के अधिक समीप हो गये और देश और अपने हित को भली प्रकार पहचानने लगे। कुछ नरेशों ने इस अवसर पर देश-प्रेम की सराहनीय भावना दिखाई और अपने आचरण से अन्य नरेशों के सङ्कोच को दूर कर दिया। सरदार पटेल की दृढ़ता और दूरदर्शिता तथा लार्ड मौण्टबेटन की निष्कपटता और तल्लीनता ने इस समस्या को सुलझाने में बड़ी सहायता दी। फलतः एक सप्ताह के अन्दर रियासतों के साथ सारी बातचीत समाप्त हो गई और हैदराबाद, काश्मीर और जूनागढ़ को छोड़कर अन्य सब रियासतों ने भारत की डोमिनियन में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया और प्रवेश-पत्र (Instrument of Accession) पर हस्ताक्षर कर दिये। इन तीनों रियासतों ने भी, जब तक इनका दृढ़ निश्चय नहीं हो जाता, तब तक के लिये यथापूर्व प्रबन्ध के समझौतों (Standstill agreement) को स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त एक और बड़ा परिवर्तन हुआ जिसके अनुसार अनेक छोटी-छोटी रियासतों ने जो आमदनी और आबादी की दृष्टि से बहुत छोटी होने के कारण स्वतंत्र शासन की इकाई के रूप में नहीं रह सकती थीं—या तो अपने समीप के प्रान्त में लीन हो जाना स्वीकार किया अथवा परस्पर मिलकर सामूहिक संघ बना लिये।

जिन रियासतों ने भारत के डोमिनियन में सम्मिलित होना स्वीकार किया और जिन्हें विधान-सभा में व्यक्तिगत

जिन रियासतों ने अपनी सत्ता को समीपवर्ती क्षेत्रों में विलीन कर दिया है उनका ब्योरा इस प्रकार है :—

सम्मिलित होने की तिथि	नाम	जिन क्षेत्र में विलीन हुई	क्षेत्रफल	जनसंख्या (लाखों में)
१-१-१९४८	अयगढ़, अथमलिक आदि उड़ीसा की २३ रियासतें	उड़ीसा	२३,६३७	४०.४६
१-१-१९४८	बस्तर, चंगमकर, जशपुर आदि छत्तीसगढ़ की १४ रियासतें	मध्यप्रान्त-बरार	३१,५९८	२८ २०
१-२-१९४८	मकराई	मध्यप्रान्त-बरार	१५१	.१४
२३-२-१९४८	लोहारू	पूर्वी पंजाब	२२६	.२८
२२-२-१९४८	बंगनापल्ले	मद्रास	२५९	.४५
३-३-१९४८	पदुकोट्टा	मद्रास	१,१८५	४.३८

सम्मिलित होने की तिथि	नाम	जिस क्षेत्र में विलीन हुईं	क्षेत्रफल	जनसंख्या (लाखों में)
१०-६-१९४८	बालसिनोर, बन्सदा, बरिया, काम्बे, छोटा उदयपुर आदि गुजरात की १८ रियासतें	बम्बई	१९,३००	२७,०९

जिन रियासतों ने परस्पर मिलकर सामूहिक संघ बना लिये हैं उनका ब्योरा इस प्रकार है :—

तिथि	रियासतों के नाम	संघ का नाम	क्षेत्रफल	जनसंख्या
१५-२-१९४८	काठियावाड़ की २१७ रियासतें	सौराष्ट्र	३१,८८५	३५,२२
१७-३-४८	अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली	मत्स्य	७,५३६	१८,३८

तिथि	रियासतों के नाम	संघ का नाम	क्षेत्रफल	जनसंख्या
२-४-१९४८	अजयगढ़, वयोनी वरौध, विजवाड़ आदि बुंदेलखण्ड और बघेलखण्ड की ३५ रियासते	विन्ध्य प्रदेश	२४,६१०	३५ ६९
१८-४-१९४८	बांसवाड़ा, बूंदी, डूंगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुर और टौंक और उदयपुर	राजस्थान	२९,९७७	४२.६१
१५-५-१९४८	ग्वालियर, इन्दौर, राजगढ़, रतलाम पिपलौदा आदि मध्य-भारत की २० रियासतें	ग्वालियर;इन्दौर मालवा संघ या मध्यभारत संघ	४६,२७३	७१.५०
१५-७-१९४८	पटियाला, कपूर्थला नाभा, जींद, फरीदकोट मालेरकोटला, वालागढ़ और कलसिया	पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासती संघ	१०,११९	३५ २४

कुछ रियासतें अभी ऐसी हैं जिनके बारे में सामूहिक क्षेत्रों में सम्मिलित होने अथवा पृथक् संघ बनाने का निश्चय नहीं हुआ। ये रियासतें निम्नलिखित हैं:—

		क्षेत्रफल	जनसंख्या
१	बनारस	८६६	४५१,४२८
२	कूचबिहार	१,३२८	६४०,८४२
३	जैसलमेर	१५,६८०	६३,२४६
४	खासी रियासतें	३,७८८	२१३,५८६
५	मणिपुर	८,६२०	५१२,०६६
६	रामपुर	८,६४	४७७,०४२
७	सन्दूर	१५८	१५,८१६
८	टिहरीगढ़वाल	४,५१६	३६७,३६६
६	त्रिपुरा	४,११६	५१३,०१०

जूनागढ़

यह हम पहले लिख चुके हैं कि जूनागढ़, हैदराबाद और काश्मीर ये तीन रियासतें ऐसी थीं जिन्होंने शेष रियासतों के साथ भारत में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया था। स्थितियों से विवश होकर हाल में ये तीनों रियासतें भारत के समीप आ चुकी हैं।

रियासत जूनागढ़ का क्षेत्रफल ३३३७ वर्गमील और आबादी ६,७०,७१६ है। यह रियासत चारों ओर से ऐसी रिया-

सतों से घिरी हुई है जो बहुत पहले ही भारत में सम्मिलित हो चुकी थीं। इसकी आबादी में बहुसंख्या-८१ प्रतिशत हिन्दुओं की थी। इसका रेल, डाक व तार का प्रबन्ध भारत से सम्बन्धित था। इसके कुछ अपने प्रदेश भारत में सम्मिलित होने की घोषणा कर चुके थे। इन सबके होते हुए भी जूनागढ़ के नवाब ने पाकिस्तान से सम्बन्ध जोड़ने की घोषणा की। यह केवल उसकी शरारत थी। नहीं तो कोई रियासत जिसका शरीर हिन्दुस्तान में किन्तु हृदय पाकिस्तान में हो जीवित ही कैसे रह सकती है ? रियासत के इस निश्चय से प्रजा में बड़ी नाराजगी फैल गई और सारी रियासत में एक जबरदस्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इस स्थिति से निकटवर्त्ती सीमा-प्रदेशों में शान्ति भङ्ग होने का भय था। जब स्थिति बहुत अधिक संकटमय हो गई तो भारत सरकार ने रियासत के दीवान सर शाहनवाज़ भुट्टो के निमन्त्रण पर रियासत का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया, और यह घोषणा की कि रियासत पाकिस्तान से सम्बन्धित हो अथवा हिन्दुस्तान से, इस बात का निर्णय प्रजा स्वयं करेगी। रियासत में शान्ति हो जाने पर जनमत लिया गया और जनता ने बहुसंख्या से हिन्दुस्तान के पक्ष में निर्णय दिया। इस प्रकार जूनागढ़ की समस्या का हल हुआ।

हैदराबाद

यह रियासत धन-जन की दृष्टि से भारत की सभी रियासतों में एक नम्बर पर है। इस का क्षेत्रफल ८२,३१३ वर्गमील और आबादी १,६३,३८,५३४ है। जनता में ८६.५ प्रतिशत

हिन्दू हैं और १२.५ प्रतिशत मुसलमान और १ प्रतिशत शेष जातियां। किन्तु सरकारी नौकरियों तथा अन्य शासन सम्बन्धी अधिकारों में यहाँ स्थिति बिलकुल उलटी थी। हिन्दुओं को केवल २० प्रतिशत और मुसलमानों को ७५ प्रतिशत और शेष को ५ प्रतिशत अधिकार प्राप्त थे। रियासत में दायित्व के स्थान प्रायः सभी अल्पसंख्यक मुसलमानों के अधिकार में थे। आबादी में थोड़े होते हुए भी पुलिस, फ़ौज आदि सभी जगह उन्हीं का अधिकार था, धारा-सभा में भी उन्हीं का बहुमत था। इस प्रकार अल्पसंख्या ने बहुसंख्या के अधिकार हथिया लिये थे। बहुसंख्या को कहीं भी अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिकार प्राप्त नही थे। उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये जाते थे। रियासत में इत्तहादुल-मुसलमीन के नाम से मुसलमानों की एक संस्था थी, जिसके स्वयंसेवक रज़ाकार कहलाते थे। इन्हें सैनिक शिक्षा की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं। इनके पास सब तरह के अस्त्र-शस्त्र थे। यह सशस्त्र दल निज़ाम की सत्ता को सारे दक्षिण भारत में प्रसारित करने के प्रयत्न में था। रियासत में इनके कारण हिन्दू जनता में आतंक छाया हुआ था। इनके अत्याचार रियासत के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थे वरन् सीमा के साथ के भारत के प्रान्तीय प्रदेशों में भी ये लोग लूटमार करते थे। इस प्रकार दक्षिण में शान्ति-भंग का बड़ा भारी ख़तरा पदा हो गया था। संभवतः इन्हीं के बल पर निज़ाम अपनी स्वतन्त्रता को स्थिर रखने अथवा अपनी राज्य-सत्ता का विस्तार करने का स्वप्न देख रहा था। उसने भारत में सम्मिलित होने से इनकार कर दिया था। २६ नवम्बर १९४७ को भारत के साथ उसने

एक समझौता किया जिसके अनुसार एक वर्ष के लिए केन्द्र और रियासत का परस्पर सम्बन्ध यथापूर्व-भारत के स्वतन्त्र होने से पहले की तरह-कल्पित किया गया था।

इसी समझौते के अनुसार भारत-सरकार ने सिकन्दराबाद की छावनी से अपने फौजी दस्ते हटा लिये, परन्तु समझौते की शर्तों का निजाम सरकार ने पालन नहीं किया। इसके विरुद्ध उसने पाकिस्तान को २० करोड़ रुपया उधार दिया, अस्त्र-शस्त्रों का संग्रह करना शुरू कर दिया। सेना की संख्या बढ़ाई और रियासत में हिन्दुस्तानी मुद्रा (Currency) पर प्रतिबन्ध लगा दिया। भारत-सरकार ने अनेक बार निज़ाम सरकार से शान्ति-पूर्वक स्थिर-समझौता करने का यत्न किया किन्तु निजाम सरकार टालमटोल करती रही। प्रायः कई बार ऐसा हुआ कि रियासत के प्रतिनिधि देहली आये और सारी बातचीत तय करके निजाम के हस्ताक्षरों के लिये वापिस गये और वहाँ निज़ाम ने स्वीकृति देने से इनकार कर दिया। उधर रियासत और प्रान्तों की सीमाओं पर आए-दिन रज़ाकारों और भारतीय सैनिकों की झड़प होती थी। वार-बार कहने पर भी निज़ाम सरकार ने इसकी रोक-थाम के लिए कुछ नहीं किया, वरन् इसके विरुद्ध भारत-सरकार पर समझौता तोड़ने के आरोप लगाए, और अन्त मे विवश होकर भारत-सरकार को शान्ति की रक्षा के लिये सैनिक कार्रवाई करनी पड़ी। १३ सितम्बर १६४८ को भारतीय सेना ने चारों ओर से रियासत में प्रवेश किया। युद्ध के पाँचवें दिन ही रियासत की सेनाओं ने हथियार डाल दिये। रज़ाकारों की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई और उसके साथ

ही निज़ाम सरकार का स्वतन्त्रता का स्वप्न भी। तब से हैदराबाद मे सैनिक शासन है। शासन की बागडोर सैनिक शासक (Military Governor) के हाथ मे है। रज़ाकारों की संस्था समाप्त की जा चुकी है। अब शीघ्र ही अन्तर्कालीन मन्त्रि-मण्डल की स्थापना की जायगी। भविष्य मे रियासत के शासन की रूप-रेखा कैसी हो—इसका निर्णय प्रजा स्वयं करेगी। आशा है बहुत शीघ्र रियासत मे प्रजासत्तात्मक शासन स्थापित हो जायगा।

काश्मीर

काश्मीर का सुन्दर प्रदेश भारत के उत्तर में स्थित है। इस का क्षेत्रफल ८४४७१ वर्गमील और आबादी ४०,२१६१६ है। जनसंख्या में मुसलमानों का बहुमत है। हिन्दू २०.१२ प्रतिशत सिख आदि दूसरी जातियां २.७० प्रतिशत है, शेष सब मुसलमान हैं। कायामे काश्मीर की रियासत भारत की दूसरी सभी रियासतों से बड़ी है। इसकी सीमाएँ तिब्बत, चीनी तुर्किस्तान, रूसी तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और हिन्दुस्तान की सीमाओं को स्पर्श करती हैं। भूगोल की दृष्टि से इसकी स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है।

मन्त्रि-मिशन की योजना के अनुसार भारत से ब्रिटिश सत्ता के हटा लिये जाने पर प्रत्येक रियासत सिद्धान्त मे स्वतन्त्र हो जाती थी। दोनों डोमिनियनों मे से किसी के साथ भी सम्बन्ध जोड़ लेने का उसे पूर्ण अधिकार था। सिद्धान्त की दृष्टि से इस अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध न था, हाँ! इसके प्रयोग को व्यवहार मे अवश्य सीमित कर देना था। किसी रियासतके लिये उसी डोमिनियन में सम्मिलित होना हितकर था जिसके साथ उसकी

सीमा का सम्बन्ध हो। दुर्भाग्य से काश्मीर की सीमाएँ पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों को स्पर्श करती हैं। अतः इसके प्रति दोनों की गहरी दिलचस्पी का होना स्वाभाविक है।

पाकिस्तान इसे मुस्लिम बहुमत-क्षेत्र होने के कारण अपनी छत्र-छाया में लेना चाहता है; परन्तु जनता के आदर्श पाकिस्तानी आदर्शों से मेल नहीं खाते। काश्मीर ने आज तक मिस्टर जिन्ना के दो जातियों के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया और न ही इसने घृणा का उपदेश देने वाली साम्प्रदायिकता को अपनी नीति में स्थान दिया है। काश्मीर वह प्रदेश है जहाँ नेशनल कांफ्रेंस के मुसलमान स्वयसेवकों ने अल्पसंख्यक हिन्दुओं और सिक्खों के धन और मान की आक्रमणकारियों से उन दिनों रक्षा की है जब कि सारा पंजाब मानवता को तिलांजलि देकर पशुता और बर्बरता की हिंसक ज्वाला में जल रहा था।

एक और चीज है जो काश्मीर को भारत के अधिक समीप ला देती है। रियासत में राष्ट्रीय नेता शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में अधिकारियों के विरुद्ध बरसों से एक सार्वजनिक आन्दोलन चल रहा था। जिस प्रकार ब्रिटिश भारत में जनता के अधिकारों के लिये कांग्रेस लड़ रही थी, उसी प्रकार रियासतों में भी नरेशों की धान्धली के विरुद्ध प्रजासत्तात्मक शक्तियां जोर पकड़ रही थीं। ब्रिटिश सरकार इस आन्दोलन को दबाने के लिये एडी-चोटी का जोर लगा रही थी और उसके पिट्ठू राजे और नवाब नमक-हलाली का प्रमाण देने के लिये रियासतों में स्वतन्त्रता की मांग को दबाने के लिये ब्रिटिश सरकार से बढ़ कर अत्याचार कर रहे थे। रियासतों के ये आन्दोलन कांग्रेस के अखिल

भारतीय आन्दोलन का एक अंग थे। काश्मीर के मोर्चे पर नैशनल कांफ्रेंस उन्हीं आदर्शों को लेकर प्रजा के अधिकारों के लिए लड़ रही थी जिनकी रक्षा के लिये ब्रिटिश भारत में कांग्रेस ने असंख्य बलिदान दिये थे। काश्मीर के मुसलमानों को हिन्दू एकस्थ सत्ता के विरुद्ध लड़ने में कॉंग्रेस की हमेशा हिमायत रही है। उसने प्रजा के अधिकारों के लिये हमेशा लड़ाई की है, चाहे वह प्रजा मुस्लिम हो या हिन्दू। इसके विरुद्ध मुस्लिम लीग ने हमेशा नवाबों और राजाओं का पक्ष लिया है और प्रतिगामी शक्तियों का साथ दिया है। प्रजा के अधिकारों की अपेक्षा उसने सदा नरेशों के अधिकारों की हिमायत की है। अतः भारतीय कांग्रेस और काश्मीर नेशनल कांफ्रेंस सदा एक दूसरे के समीप रहे हैं।

अगस्त १९४७ में नैशनल कांफ्रेंस के कार्यकर्त्ता जेलों की यातना भुगत रहे थे। ब्रिटिश भारत आज़ाद होने जा रहा था किन्तु रियासतें अभी तक तेज़ी से बदल रहे युग को ठीक नहीं समझ रही थीं। अतः काश्मीर में पूर्ववत् प्रजा के अधिकारों की मांग करनेवालों को दबाया जा रहा था। शेख़ अब्दुल्ला और उसके साथी कारागृहों मे बन्द थे। इन्हीं दिनों तेज़ी के साथ काश्मीर के इतिहास ने पलटा खाया।

१२ अगस्त १९४७ को पाकिस्तान और काश्मीर के बीच यथापूर्व प्रबन्ध (Standstill agreement) का समझौता हो गया था। पाकिस्तान इतने से ही संतुष्ट नहीं हुआ। वह चाहता था कि काश्मीर शीघ्र पाकिस्तान से सम्मिलित हो जाने का निर्णय करे। रियासत के अधिकारी इस विषय में किसी निर्णय

पर पहुँचने के लिये और समय चाहते थे। पाकिस्तान ने अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये बहुत कुछ अनुचित दबाव डालना शुरू किया। समझौते की शरतों के अनुसार खाद्यान्न, कपड़ा, नमक, पेट्रोल आदि जो वस्तुएँ काश्मीर भेजनी थीं वे सब रोकली गईं। इससे काश्मीर की जनता को बहुत कष्ट हुआ। विरोध करने पर पाकिस्तान सरकार ने यह कह कर टाल दिया कि पंजाब मे गड़-बड़ होन के कारण ही उक्त पदार्थ भेजे नहीं जा सके।

आर्थिक प्रतिबन्धों के साथ-साथ काश्मीर की सीमाओं पर लूटमार शुरू कर दी गई। आये-दिन कत्ल, लूटमार और बलात्कार के समाचार आने लगे। दिन-प्रति-दिन अशांति बढ़ने लगी। सीमा प्रान्त के कबायली लोगों को इसलाम के नाम पर काश्मीर पर आक्रमण करने के लिए उकसाया गया और वे लोग हजारों की संख्या मे काश्मीर की सीमा पर जमा होने शुरू हुए। रावलपिंडी, एबटाबाद, जेहलम, वजीराबाद आदि अनेक स्थानों पर उनके लिये प्रबन्ध किया गया। पाकिस्तान ने उन्हें हर प्रकार की सहायता दी और हर उचित व अनुचित रीति से उनकी साम्प्रदायिकता की संकुचित भावनाओं को उभारा। अक्टूबर मास तक आक्रमणकारियों का बड़ा भारी सैनिक दल जमा हो गया था। पाकिस्तान की कृपा से इनके पास टैंक थे; तोपें थीं, लारियां थीं, पेट्रोल और बारूद और हर प्रकार का नवीनतम फौजी सामान था। अक्टूबर मे ही स्थिति बड़ी भयंकर हो गई। आक्रमणकारियों के दल-के-दल रियासती सीमा के अनेक स्थानों पर चोट कर रहे थे। कोटली में भयंकर युद्ध हो रहा था। कोटली-पुंछ की सड़क तोड़ दी जा चुकी थी। २४ तारीख को कबायलियों ने मुजफ्फराबाद पर अधिकार कर लिया

और वे बड़ी तेज़ी से बारामूला की ओर बढ़ने लगे। स्थिति प्रति क्षण काबू से बाहर होती जा रही थी। विवश होकर २५ तारीख़ को काश्मीर सरकार ने भारत सरकार से सहायता की मांग की। शेख़ अब्दुल्ला जो जेल से रिहा हो चुके थे हवाई जहाज़ द्वारा देहली पहुँचे और उन्होंने प्रजा की ओर से भारत सरकार से आक्रमणकारियों से काश्मीर की रक्षा के लिये प्रार्थना की। २६ अक्टूबर को भारत सरकार ने भारत में सम्मिलित होने की काश्मीर की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और २७ तारीख़ को भारतीय सेना का पहला दस्ता हवाई जहाज़ों द्वारा श्रीनगर पहुँचा। कबायली लोग इस समय तक बारामूला पर अधिकार कर चुके थे और बिजली की तरह श्रीनगर की ओर बढ़ रहे थे। आक्रमणकारियों ने मुज़फ्फराबाद, बारामूला व उड़ी में घोर अत्याचार किये जिनके स्मरण मात्र से मानव हृदय काँप उठता है और जिन्हें लिखने की सभ्यता आज्ञा नहीं देती। इन अत्याचारों के समाचार श्रीनगर पहुँच चुके थे। सारी रियासत में आतंक छाया हुआ था। चारों ओर प्रजा में बेचैनी, चिंता और निराशा फैल रही थी। संकट के इस अवसर पर नैशनल कान्फ्रेंस के स्वयंसेवकों ने जिस त्याग, वीरता और निस्वार्थता का परिचय दिया वह वर्णन-सामर्थ्य से बाहर है। राष्ट्रीय मुसलमानों ने जान की बाजी लगा कर एक ओर अल्पसंख्यक हिन्दुओं और सिक्खों के जान, माल और इज्जत की रक्षा की और दूसरी ओर जनता को लुटेरों के विरुद्ध जहाद करने के लिये कटिबद्ध किया। घर में शान्ति रखना उस समय उतना ही ज़रूरी था जितना बाहर मोर्चे पर शत्रु से लड़ना। यह श्रेय केवल काश्मीर को ही प्राप्त है कि वहां एक भी ऐसी घटना नहीं हुई

जिसमें मुसलमानों ने अल्पसंख्यकों के विरुद्ध अपने बहुमत का दुरुपयोग किया हो। यह सब नेशनल कान्फ्रेंस के ही निरन्तर प्रयासों का फल था कि वहाँ लीग का प्रचार सफल नहीं हो सका।

जब तक भारतीय सेना नहीं पहुंची तब तक नेशनल कान्फ्रेंस ने जैसे-तैसे स्थिति को संभाले रखा। लोगों के उत्साह को स्थिर किया और साम्प्रदायिकता के पागलपन की आग में कूदने से बचाया। भारतीय सेनाओं के पहुँचने तक शत्रु श्रीनगर के बहुत समीप आ चुका था। यदि थोड़ा और विलम्ब हो जाता तो संभव था कारमीर की रक्षा का प्रश्न बहुत जटिल हो जाता।

कारमीर पहुँचते ही भारतीय सैनिकों ने शत्रु से लोहा लिया और उनकी प्रगति को रोक दिया। इस बीच और सेना हवाई जहाजों द्वारा तथा बानिहाल के रास्ते पहुँचने लगी। शत्रु को पीछे धकेल दिया गया। ८ नवंबर को बारामूला तथा १५ नवम्बर को उड़ी पर फिर से कब्जा कर लिया गया। कबायली लुटेरों के स्वप्न भङ्ग हो गये। तब से लेकर ३१ दिसम्बर १९४८ तक युद्ध होता रहा है और धीरे-धीरे हमारी सेनाओं ने काश्मीर का अधिकांश भाग कबायली लुटेरों के हाथों से छीन लिया है। इस समय कारमीर में दायित्वपूर्ण शासन है। प्रधान मन्त्री शेख़ अब्दुल्ला के नेतृत्व में शासन-कार्य हो रहा है।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि कबायली पठानों को पाकिस्तान की पूरी पूरी मदद प्राप्त थी। ये लोग पाकिस्तान में से होकर ही कारमीर आते थे। इनकी सैनिक-शिक्षा और दूसरे प्रबन्धों के

केन्द्र सभी पाकिस्तान में थे। इसके अतिरिक्त इनकी कमान पाकिस्तान के फ़ौजी अफसरों के अधीन थी। यही नहीं, पाकिस्तानी सेना के अनेकों फौजी भी इनके साथ शामिल थे। भारत ने इस स्थिति की ओर पाकिस्तान का ध्यान खींचा और कबायली लुटेरों को मार्ग और सुविधाएँ न देने के लिए कहा। परन्तु पाकिस्तान सरकार टालमटोल करती रही। अन्त में मामला राष्ट्रसंघ (U. N. O.) के पास ले जाया गया। वहां बहुत दाव-पेच के बाद एक जाँच-कमीशन भारत भेजा गया जिसने भारत और पाकिस्तान दोनों की युद्ध सम्बन्धी स्थिति का निरीक्षण कर परस्पर समझौता कराने के लिए अपने सुझाव दिये। कमीशन के इस प्रस्ताव को भारत-सरकार ने तत्काल स्वीकार कर लिया था किन्तु पाकिस्तान-सरकार ने उसकी स्वीकृति हाल मे ही दी है। इस प्रस्ताव के अनुसार दोनों ओर से युद्ध स्थगित कर दिया गया है। कबायली और पाकिस्तानी सेना काश्मीर की सीमाओं से बाहर चली जायगी और काश्मीर में अब्दुल्ला-हकूमत का शासन होगा। जब रियासत में पूर्ण रूप से शान्ति स्थापित हो जायगी तब जनमत लिया जायगा कि रियासत पाकिस्तान से सम्मिलित हो अथवा हिन्दुस्तान से। इस समस्या का अन्तिम निर्णय प्रजा स्वयं करेगी। उक्त प्रस्ताव के अनुसार १ जनवरी १९४९ को दोनों सरकारों ने युद्ध बन्द कर दिया है। आशा है कि काश्मीर के भाग्य का निर्णय अब शान्तिपूर्वक हो जायगा।

वर्तमान भारत-सरकार का मन्त्रि-मण्डल

श्री पं० जवाहरलाल नेहरू—प्रधान मंत्री–विदेशी मामले, कॉमनवेल्थ सम्बन्धी मामले तथा विज्ञान-उन्नति-विभाग

श्री सरदार वल्लभ भाई पटेल—उपप्रधान मन्त्री—देश के आन्तरिक मामले, रियासतें तथा रेडियो-विभाग

श्री सरदार बलदेवसिंह—रक्षा-विभाग

श्री मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद—शिक्षा और कला-विभाग

श्री जगजीवनराम—श्रम-विभाग

श्री रफ़ी अहमद किदवाई—डाक, तार तथा हवाई यातायात-विभाग

श्री जयरामदास दौलतराम—कृषि तथा खाद्य-विभाग

श्री के० सी० नियोगी—व्यापार-विभाग

श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर—स्वास्थ्य-विभाग

श्री डा० श्याम प्रसाद मुकर्जी—शिल्प तथा उद्योग-विभाग

श्री डा० जान मैथाई—अर्थ-विभाग

श्री डा० बी० आर० अम्बेदकर—कानून-विभाग

श्री एन० वी० गेडगिल—खनिज-विभाग

श्री मोहन लाल सक्सेना—शरणार्थी-विभाग

श्री सत्यनारायण सिन्हा—उपमन्त्री—विदेशी मामले

श्री के० सन्थानम—उपमन्त्री—रेलवे-विभाग

श्री खुरशीद लाल—उपमन्त्री—यातायात-विभाग

परिशिष्ट

पारिभाषिक शब्द

अ

अकाल, दुर्भिक्ष Famine
अखिल भारतवर्षीय विषय All India subjects
अचल पूंजी Fixed Capital
अदालत Court
,, दीवानी Civil Court
,, दौरा Session Court
,, फौजदारी Criminal Court
अधिकार Authority, Right
अधिकार-पत्र Charter
अधिकार क्षेत्र Jurisdiction
अधिकार, जन्मसिद्ध Birth-right
अधिवेशन Session
अधीन Dependent, subordinate.
अध्यक्ष Chairman, President
अनिवार्य सैनिकशिक्षा Conscription
अनिवार्य शिक्षा Compulsary Education
अनुदार दल Conservative party
अनुमोदन करना Second
अनुसन्धान Research
अन्तर्कालीनसरकार Interim Government
अन्तर्राष्ट्रीय International
अपराध Crime, Offence
अपरिमित देनदारी Unlimited Liability
अप्रत्यक्ष कर Indirect tax
अभियुक्त Accused
अभियोग चलाना Prosecute
अराजकता Anarchy
अर्थशास्त्र Economics
अल्पमत Minority
अल्पसंख्यक जाति Minority Community

अल्पवयस्क,नाबालिग Minor
अवधि Limit, Duration
अवैध Unconstitutional
असहयोग Non-cooperation
असैनिक Civil
अस्त्र, शस्त्र, हथियार Arms, Weapons
अहिंसा Non-Violence

आ

आकाश-सेना, वायु सेना Air Force
आजन्म कैद Life-imprisonment
आत्म-निर्णय,स्वभाग्य-निर्णय Self-determination
आत्म-समर्पण–Surrender
आदर्श–Ideal
आदिम–Primitive
आदेश–Mandate
आधारभूत, बुनियादी Basic
आन्दोलन Movement
आबकारी Excise
आबपाशी Irrigation
आबादी, जनसंख्या–Population
आय-कर Income-tax
आय की मदें Heads of Revenue
आय-व्यय-अनुमान-पत्र–Budget
आय-व्यय-परीक्षक Auditor
आयात Imports
आयात-निर्यात कर Customs
आर्डिनेन्स, अस्थायी कानून, फरमान–Ordinance
आर्थिक Economic, Financial
आविष्कार Discovery, Invention
आसामी Tenant

इ

इकाई Unit

ई

ईश्वरदत्त अधिकार, दैवी अधिकार Divine right

उ

उच्च जनतंत्र, कुलीन तंत्र–Aristocracy
उच्च शिक्षा Higher Education
उत्तरदायी Responsible
उत्तराधिकार Inheritance
उत्तराधिकारी Heir,successro

उत्पादक Producer, Productive
उदार दल Liberal Party
उद्धार Emancipation
उद्योग Industry
उपनियम By-law
उपनिवेश Colony
उपभोग Consumption
उपयोगिता Utility
उपसभापति Vice-Chairman, Vice-president
उपाधि Title, Degree
उम्मेदवार Candidate

ऋ

ऋण Debt, Loan
,, राष्ट्रीय National debt
,, सार्वजनिक Public debt
एकतंत्र शासन, स्वेच्छाचारी शासन Monarchy
एकाधिकार Monopoly

औ

औद्योगिक Industrial
औपनिवेशिक Colonial
औसत Average

क

कर Tax
,, वसूल करने का खर्च Direct demands on revenue
,, परोक्ष Indirect tax
,, प्रत्यक्ष Direct tax
,, हैसियत Tax on circumstances & property
कम्प, कम्पन Vibration
कर्त्तव्य Duty
कल, यंत्र Machine
काञ्जीहौस Kinehouse
कानून Law, Act
कागजात Record
कारखाना Factory
कारबार Business
कार्यक्रम Agenda
कार्यकारिणी सभा, प्रबंधकारिणी परिषद् Executive Council
काश्तकार Agriculturist
कुलीन तंत्र, उच्च जनतंत्र Aristocracy
कूटनीति Diplomacy
केन्द्रीय सरकार Central Government
कैद, सादी Simple Imprisonment
,, सख्त Rigorous Imprisonment

कैदी, राजनैतिक Political prisoner

कौंसिलयुक्त गवर्नर, सपरिषद् गवर्नर Governor-in-Council

क्रान्ति Revolution

ख

खजाना Treasury

खर्च Expenditure

खिराज Tribute

खुफिया विभाग, खुफिया पुलिस C.I.D. (Criminal Investigation Department)

खोज Discovery

ग

गणना, मनुष्य-गणना मर्दुमशुमारी Census

गति Motion

गति-अवरोध Deadlock

गदर, विद्रोह, विप्लव Mutiny, Rebellion, Revolt, Insurrection

गृह-उद्योग Home-Industry

गृह-मंत्री Home-Secretary

गृह-युद्ध Civil War

गुटबन्दी; प्रान्तों की Grouping of Provinces

गुलामी, दासता Slavery

ग़ैर सरकारी Non-official

ग्रामोद्धार Rural Uplift, Village Uplift

ग्राम्य, देहाती Rural

ग्राम्य समुदाय Village-Community

घ

घूंस, रिश्वत Bribe

घोषणा Proclamation, Announcement

च

चल-पूंजी Floating Capital, Working Capital

चालक Conductor

चिकित्सा सम्बन्धी Medical

चुंगी Octroi

चुनाव, निर्वाचन Election

चौकी Outpost

छ

छावनी Cantonment

छोटे अपराधी Juvenile offenders

ज

जंगी लाट, प्रधान सेनापति Commander-in-chief

जज, दौरा Session Judge

जनता People
जन-संख्या, आबादी Population
जन्म-भूमि Motherland, Birthplace
जलवायु, आबोहवा Climate
जल-सेना Navy
जहाजरानी, जहाजी विद्या Navigation
जांच कमीशन Enquiry Commission
जागृति Awakening
जाति People, Race
जिम्मेदारी Responsibility
जिला District
जीव-विज्ञान Biology
जेल, सेन्ट्रल Central Jail
ज्योतिष शास्त्र, सौर-मंडल-विज्ञान Astronomy

त

तटस्थ Neutral
तापमान, हरारत-Temperature
तोपखाना Artillery
त्यागपत्र,इस्तीफा-Resignation

थ

थाना Police Station

द

दण्ड Punishment, Penalty
दबाव Pressure
दमन Repression
दल Party
दलबन्दी नीति Party politics
दायित्व, देनदारी Liability
दासता, गुलामी Slavery
दासोद्धार Emancipation
दीवानी Civil
दूरदर्शक यंत्र, दूरबीन Telescope
देश Country
देश-निकाला Transportation
देश-भक्ति Patriotism
देश-रक्षा Defence, National defence
देशी माल पर कर Excise
देशी रियासतें, देशी राज्य Native States
देहाती, ग्रामीण Rural

ध

धर्म, मत मजहब Religion
धर्म सम्बन्धी विभाग Ecclesiastical Department

धुरी-राष्ट्र Axis Powers

न

नगर City
नजरबन्दी Internment
नागरिक Citizen
नागरिकशास्त्र, नागरिकज्ञान Civics
नामजद सदस्य Nominated Member
नियम Rule, Regulation
नियंत्रण Control
निरंकुश Despotic
निरीक्षण Observation
निर्माणकार्य P. W. D. (Public Works Department)
निर्यात Export
निर्वाचक Elector
,, संघ Constituency
निर्वाचन-पत्र Ballot paper
निःशुल्क Free
निःशस्त्रीकरण Disarmament
नीति Policy
नौकरशाही Bureaucracy
न्याय Justice

प

पट्टा Lease
पट्टीदारी Land-tenure, Tenure
पद Designation, Office
पदाधिकारी Officer
पदार्थ Matter, Object
पद्धति System, Method
परिमाण Dimension, Quantity
परिशिष्ट Appendix, Supplement
परिषद् Council
परोक्ष Indirect
पारदर्शक Transparent
पारिभाषिक Technical
पूरक प्रश्न Supplementary question
पूंजी, मूलधन Capital
पूंजीवाद Capitalism
पूर्ति, रसद Supply
पेश करना, बिल To introduce a bill
पेशा Occupation, Profession
पैदल सेना Infantry
पैत्रिक Hereditary
पृथक् निर्वाचन Separate Election

प्रजा Subjects. Ryots
प्रजातंत्र Democracy
प्रतिनिधि Representative, Delegate, Proxy
प्रत्यक्ष Direct
प्रधान-मंत्री Prime Minister, Premier
प्रधान सेनापति Commander-in-chief
प्रबन्ध Management
प्रबन्धकारिणी परिषद् Executive Council
प्रभुता Sovereignty
प्रयोग Experiment
प्राणदंड, मृत्युदंड, फांसी Capital punishment, Death sentence
प्रादेशिक Territorial
प्रान्त Province
प्रारम्भिक शिक्षा Elementary Education

फ

फांसी, प्राणदंड Capital punishment, Hanging
फैसला Judgement
फौज, सेना Military, Army

ब

बन्दी Prisoner
बड़े पैमाने पर On a large scale
बहिर्भूत प्रदेश Excluded area
बहिष्कार Boycott
बहुमत Majority
बहुसंख्यक जाति Majority community
बालिग़ Adult, Major
बिजली, विद्युत् Electricity
बीमा Insurance
बैठक Meeting, Sitting
बन्दोबस्त Settlement
ब्रिटिश संयुक्तराज्य United Kingdom (Great Britain & Ireland)

भ

भत्ता Allowance
भर्ती Recruitment
भाईचारा Fraternity
भाप Steam
भारत मंत्री Secretary of state for India
भारत-रक्षा-कानून Defence of India Act

भारतीय व्यवस्थापक-सभा Indian Legislative Assembly
भारतीयकरण Indianisation
भूगर्भशास्त्र Geology
भौतिकशास्त्र, भौतिक विज्ञान Physical Science
भ्रातृत्व, भ्रातृभाव Brotherhood

म

मंडल Chamber, Federation
मंत्री Minister
मन्त्रि-मिशन Cabinet mission
मंत्रि-मंडल Cabinet
मकान-किराया House-rent
मजदूर-दल Labour Party
मत Vote
मताधिकार Franchise, Sufferage
मनुष्यगणना, मर्दुमशुमारी Census
मसविदा (कानून का) Bill
महायुद्ध Great War
मातृभूमि Motherland
माध्यम Medium
माध्यमिक शिक्षा Secondary Education
माल, मालगुजारी Revenue
मित्रराष्ट्र Allies
मुकद्दमा Case
मुखिया Headman
मुल्की, सिविल Civil
मौरूसी Hereditary
मौलिक Fundamental, Original

य

यंत्र Machine
यातायात के साधन Means of Transport
युद्ध-परिषद् War conference
योग्यता Qualification
योजना Scheme

र

रचनात्मक Constructive
रहन-सहन का दर्जा Standard of living
राजतत्र; एकत्र Monarchy
राजपरिषद् Council of state
राजद्रोह Sedition, Treason
राजनीति Politics

राजनीतिज्ञ Politician, Statesman
राजबन्दी State prisoner
राजभक्ति Loyalty
राजस्व Finance
राजा, बादशाह King, Monarch, Ruler, Crown
राज्य State
राजक्रान्ति Revolution
राष्ट्र Nation
राष्ट्र-संघ League of Nations
राष्ट्रपति Congress President
राष्ट्र-मंडल, राष्ट्र-समूह, जनपद Commonwealth
राष्ट्रीकरण Nationalisation
राष्ट्रीय आन्दोलन National Movement
रियासत State, Native state

ल

लगान Rent
लेखा परीक्षक Auditor
लोकमत Public opinion

व

वयस्क, बालिग Adult, Major
विकास Evolution
विक्रय Sale
विद्रोह Mutiny, Rebellion, Revolt
विधान Act, Constitution
विभाग Department
वैध शासक Constitutional ruler
व्यवस्थापक-परिषद् Legislative Council
व्यवस्थापक-मंडल Legislature
व्यापार, मुक्तद्वार Free trade
व्यावहारिक Applied, Practical

श

शक्ति Force, Power, Energy
शस्त्र Arms, Weapon
शहरी Urban
शान्ति Peace
शासन Administration
शिक्षा, तालीम Education
शुल्क Fee
श्रमजीवी, मजदूर Labour

स

संगठन Organisation

संक्रान्तिकाल Transition period
संघ League, Union, Federation
संधि Treaty
संयुक्त Joint
संशोधन Amendment
सस्कृति Culture
संस्था Institution
सदरमुकाम Head quarter
सदस्य Member
सनद Certificate, Charter
सपरिषद् गवर्नर Governor-in-Council
सभा, समिति Association, Society, Assembly
सभापति Chairman, President
सभ्यता Civilisation
समाज Society
समाजवाद Socialism
सम्मेलन Conference
सम्वाद Communication
सम्राट Emperor
सरकार Government
सरकारी Official, Public
सहकारिता Co-operation
साख Credit
साम्राज्य Empire
साम्राज्यवाद Imperialism
सुधार Reform
सिद्धान्त Principle, Theory
सेना Army
सैनिक Military, Soldier
स्वेच्छाचारी Absolute, Despotic
साम्प्रदायिक Communal, Sectarian
सार्वजनिक Public
स्थगित Adjourn, Postpone
स्थानीय Local
स्वतंत्रता Freedom
स्वराज्य Self-government
स्वाधीनता Independence, Liberty
स्वास्थ्य Health

ह

हड़ताल Strike
हरजाना, क्षतिपूर्ति Indemnity
हवाई शक्ति, हवाई सेना Air force
हवालात Lock-up
हित Interest